

रसूल हमज़ातोव

मेरा दागिस्तान


रादुगा प्रकाशन
मास्को


पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा) लिमिटेड
५ ई रानी झांसी रोड नई दिल्ली ११ ५५


राजस्थान पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा) लि
चमेलीवाला मार्केट एम आई रोड जयपुर ३

अनुवादक — मदनलाल 'मधु'

Расул Гамзатов
МОЙ ДАГЕСТАН
Часть I
[illegible]

R. Gamzatov
MY DAGHESTAN
In Hindi

[illegible]
[illegible] • रादुगा प्रकाशन • मास्को १९८८
[illegible]
ISBN [illegible]

अनुक्रम

"मेरा दागिस्तान" और उसके लेखक

दागिस्तानी पहाड़ो की गहराई मे, विस्तृत वन प्रागन मे छोर पर त्सादा नामक एक अवार पहाड़ी गाव है। इस गाव म एक घर है, जो अपने दायें-बायें के पड़ोसी घरो से किसी प्रकार भिन्न नही है। उसकी वसी ही समतल छत है, छत पर वसा ही छत को समतल करने के लिये पत्थर का रोलर है, वसा ही फाटक है और वैसा ही छोटा-सा आगन है। मगर इसी छोटे-से पहाड़ी घर इसी कठोर, यानी पाषाणी नीड स दो कवियो के नाम उड़कर ससार म बहुत दूर-दूर तक जा पहुचे। पहला नाम है दागिस्तान के जन-कवि हमज़ात त्सादासा का और दूसरा दागिस्तान के जन-कवि रसूल हमज़ातोव का।

इसमे आश्चर्य की तो कोई बात नही कि बुज़ुर्ग पहाड़ी कवि के परिवार मे पनपते हुए लड़के को कविता से प्यार हो गया और वह खुद भी कविता रचने लगा। मगर कवि बन जानेवाले कवि के बेटे ने अपनी ख्याति की सीमा बहुत दूर-दूर तक फैला दी। बुज़ुर्ग हमज़ात ने अपने जीवन मे जो सबसे लम्बी यात्रा की, वह थी दागिस्तान से मास्को तक। मगर रसूल हमज़ातोव, जो बहुजातीय सोवियत सस्कृति के प्रमुख प्रतिनिधि हैं, दुनिया के लगभग सभी देशो मे हो आये हैं।

या तो रसूल हमज़ातोव की जीवनी म कोई खास बात नही है। दागिस्तानी स्वायत्त सोवियत समाजवादी जनतन्त्र के त्सादा गाव मे १९२३ मे रसूल हमज़ातोव का जन्म हुआ। अरानी के हाई स्कूल और बुयनाक्स्क के अवार अध्यापक प्रशिक्षण विद्यालय म शिक्षा पाई। वे अध्यापक रहे, अवार थियेटर और जनतन्त्रीय समाचारपत्र के सम्पादकमण्डल म उन्होने काम किया। रसूल हमज़ातोव की पहली कविता १९३७ मे प्रकाशित हुई।

मास्को के साहित्य-सस्थान मे रसूल हमजातोव के प्रवेश को उनके सृजनात्मक जीवन का नव युगारम्भ मानना चाहिये। वहा उन्हे न केवल मास्को के प्रमुखतम कवि अध्यापकों के रूप म मिले, बल्कि मित्र, कर्ता पथ के सगी-साथी भी प्राप्त हुए। इसी सस्थान म उन्होंने अपने पहले अनुवादक पाये या शायद यह कहना अधिक सही होगा कि अनुवादकों ने उन्हें पा लिया। यही उनकी अवार कवितायें रूसी काव्य मे भी एक तथ्य बनी।

तब से अब तक मखचकला मे मातृभाषा म और मास्को म रूसी मे उनके लगभग चालीस कविता-सग्रह निकल चुके ह। अब बहुत दूर-दूर तक उनका नाम रोशन हो चुका है, वे लेनिन पुरस्कार और दागिस्तान के जन-कवि की उपाधि से सम्मानित हो चुके ह और दुनिया की अनेक भाषाओं मे उनकी कवितायें अनूदित हो चुकी हैं।

हा अब रसूल हमजातोव ने पहली गद्य-पुस्तक लिखी है। पहले से यह माना जा सकता था कि इस क्षेत्र मे भी रसूल की प्रतिभा अपनी मौलिकता लिये हुए ही सामने आयेगी और उनका गद्य सामान्य उपन्यास या लघु-उपन्यास जसा नही होगा। वास्तव मे ऐसा ही हुआ। फिर भी इस गद्य की विशिष्टताओं का कुछ स्पष्टीकरण जरूरी है।

रसूल हमजातोव तो मानो अपनी भावी पुस्तक की प्रस्तावना लिखते ह। वे बताते ह कि यह पुस्तक कसी होनी चाहिये, किस विधा म लिखी जाये इसका क्या शीर्षक होगा इसकी भाषा, शली, रूपक प्रणाली और विषय-वस्तु क्या हो। रसूल हमजातोव की यह पुस्तक पढकर कोई भी पाठक निश्चय ही यह पूछ सकता है– यह तो प्रस्तावना हुई और स्वय पुस्तक कहा है? मगर पाठक का ऐसा पूछना ठीक नही होगा। बहुत आसानी से ही यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भावी पुस्तक के बारे में चिन्तन वास्तव मे लिखने का एक ढग ही है। धीरे धीरे और अनजाने ही पुस्तक की प्रस्तावना मातभूमि उसे प्यार करनेवाले बेटे के रवये, कवि के दिलचस्प और कठिन कत्तव्य, उससे कुछ कम कठिन और कम दिलचस्प न होनेवाले नागरिक के कत्तव्य से सम्बन्धित अपने म सपूर्ण और सार-गर्भित पुस्तक का रूप ले लेती है।

पुस्तक आत्म-कथ्यात्मक है। कही-कही तो वह आत्म-स्वीकृति का रूप ले लेती है। उसम निश्छलता है, काव्यात्मक सरसता है। इसमे जहा-तहा

लेखक का प्यारा-प्यारा मजाक, मैं तो कहूगा, शरारतीपन बिखरा हुआ है। सक्षेप मे, वह बिल्कुल वसी ही है, जैसा उसका लेखक। इस पुस्तक के बारे म केन्द्रीय समाचारपत्र मे प्रकाशित एक लेख को बहुत उचित ही "जीवन की प्रस्तावना" शीपक दिया गया था।

"मेरा दागिस्तान" पुस्तक मे पाठक को अनेक अवार कहावते और मुहावरे मिलेगे, खुशी से उमगते या गम मे डूबे हुए बहुत-से ऐसे किस्से मिलेगे, जिनका लेखक को या तो स्वय अनुभव हुआ, या जो जन-स्मृति के भण्डार मे सुरक्षित है, और इसी भाति जीवन और कला के बारे म वे परिपक्व चिन्तन भी पा सकेंगे। इस किताब मे भलाई की बहुत-सी बातें है, जनसाधारण और मातभूमि के प्रति प्रेम से ओत प्रोत है यह।

पाठको को सम्बोधित करते हुए रसूल हमजातोव ने अपने कृतित्व के बारे मे यह लिखा है—"ऐसे भी लोग है, जिनकी अतीत-सम्बधी स्मृतिया बडी दुखद और कटु है। ऐसे लोग वतमान और भविष्य की भी इसी रूप मे कल्पना करते है। ऐसे भी लोग है, जिनकी अतीत-सम्बधी स्मृतिया बडी मधुर और सुखद ह। उनकी कल्पना मे वतमान और भविष्य भी मधुर होते हैं। तीसरी क़िस्म के लोगो की स्मृतिया सुखद और दुखद, मधुर और कटु भी होनी है। वतमान और भविष्य-सम्बधी उनके विचारा म विभिन भावनायें, स्वर लहरिया और रग घुले मिले रहते ह। मैं ऐसे ही लोगो मे से हू।

"मेरी राहे हमेशा ही सीधी-साधी नही रही, हमेशा ही मेरे वष चिन्तामुक्त नही रहे। मेरे समकालीन, तुम्हारी ही तरह म भी अपने युग की हलचल, दुनिया की उथल-पुथल और बडी महत्वपूण घटनाओ के भवर मे रहा हू। हर ऐसी घटना लेखक के दिल को मानो झकझोर डालती है। लेखक किसी घटना की खुशी और गम के प्रति उदासीन नही रह सकता। वे बफ पर उभरनेवाले पद चिह्न नही, बल्कि पत्थर पर की गयी नक्काशी होते ह। अब म अतीत के बारे मे अपनी सारी जानकारी और भविष्य के बारे म अपने सभी ख्यालो को एक तार म पिरोकर तुम्हारे पास आ रहा हू, तुम्हारे दरवाजे पर दस्तक देता हू और कहता हू—मेरे अच्छे दोस्त, यह म हू। मुझे अदर आने दो।"

व्लादीमिर सोलोऊखिन

मरे घर की अगर उपेक्षा, कर तू जाये राही,
तुम पर बादल बिजली टूटे, तुझ पर बादल बिजली!
मरे घर से अगर दुखी मन, हो तू जाय राही,
मुझ पर बादल बिजली टूटें, मुझ पर बादल बिजली!

द्वार पर आलेख

अगर तुम अतीत पर पिस्तौल से गोली चलाओगे,
तो भविष्य तुम पर तोप से गोले बरसायेगा।

अबूतालिब

भूमिका के स्थान पर और भूमिकाओं के बारे में

जब आंख खुलती है,
तो बिस्तर से ऐसे लपककर मत उठो
मानो तुम्हें किसी ने डंक मार दिया हो।
तुमने जो कुछ सपने मे देखा है,
पहले उस पर विचार कर लो।

मेरे ख्याल मे तो यार-दोस्तों को कोई दिलचस्प क़िस्सा सुनाने या नया उपदेश देने के पहले खूब अल्लाह भी सिगरेट जलाता होगा, लम्बे लम्बे कश खींचता और कुछ सोचता विचारता होगा।

हवाई जहाज उडने से पहले देर तक शोर मचाता है, फिर सारा हवाई अड्डा लांघकर उसे उडान भरने के मार्ग पर लाया जाता है, इसके बाद वह और भी जोर से शोर मचाता है, फिर खूब तेजी से दौडता है और यह सब करने के बाद ही उडता है।

हेलीकाप्टर दौड तो नहीं लगाता, मगर जमीन से ऊपर उठने के पहले वह भी देर तक शोर मचाता है, गडगडाता है और तनावपूर्ण कपकपाहट के साथ देर तक खूब कांपता है।

केवल पहाडी उक़ाब ही चट्टान से एकबारगी आसमान मे उड जाता है और आसानी से अधिकाधिक ऊपर चढ़ता हुआ छोटे-से बिन्दु मे बदल जाता है।

हर अच्छी किताब का ऐसा ही आरम्भ होना चाहिये, लम्बी-लम्बी और ऊबभरी भूमिका के बिना। जाहिर है कि पास से भागे जाते साड को अगर सींगों से पकडकर हम क़ाबू नहीं कर पाते, तो पूछ से तो वह क़ाबू मे आने से रहा।

लीजिये, गायक ने पन्दूर (तीन तारा) हाथ मे लिया। मुझे मालूम है कि उसकी आवाज सुरीली है। मगर किसलिये वह गीत शुरू करने से पहले इतनी देर तक योही तारो को झनझनाता रहता है? संसद से पहले वक्तव्य, नाटक के पहले भाषण और उन ऊबभरी नसीहतों के बारे में भी म ऐसा ही कहूगा, जो ससुर अपने दामाद को मेज पर बुलाकर फौरन जाम भरने के बजाय देता रहता है।

एक बार मुरीद अपनी अपनी तलवारों की डींग हाकने लगे। उन्होंने यह कहा कि कसे बढ़िया इस्पात की बनी हुई ह उनकी तलवारें और क़रान की कसी बढ़िया-बढ़िया कवितायें उन पर खुदी हुई ह। महान शामिल का नायब हाजी मुराद भी मुरीदों के बीच उपस्थित था। वह बोला—

"चिनारों की ठण्डी छाया मे तुम किसलिये यह बहस कर रहे हो? कल पौ फटते ही लडाई होगी और तब तुम्हारी तलवारें खुद ही यह फसला कर देंगी कि उनमे से कौन-सी बेहतर है।"

फिर भी मेरा यह ख्याल है कि अपनी कहानी शुरू करने से पहले अल्लाह मजे से सिगरेट के कश लगाता है।

फिर भी हमारे पहाडो मे यह प्रथा है कि घुडसवार अपने पहाडी घर की दहलीज के पास ही घोडे पर सवार नहीं होता। उसे घोडे को गाव से बाहर ले जाना होता है। शायद इसलिये ऐसा करना जरूरी होता है कि वह एक बार फिर इस बात पर गौर कर ले कि वह यहा क्या छोड़े जा रहा है और रास्ते मे उसके साथ क्या बीतनेवाली है। काम काज चाहे उसे कितनी ही जल्दी करने को मजबूर क्यों न करें, वह इतमीनान से सोचते हुए अपने घोडे को सारे गाव के छोर तक ले जाता है और तभी रकाबों को छुए बिना ही उछलकर जीन पर जा बठता है, आगे को झुकता है और धूल के बादल मे खो जाता है।

तो इसी तरह अपनी किताब के जीन पर सवार होने के पहले म सोचता हुआ धीरे धीरे चल रहा हू। म घोडे की लगाम थामे हुए उसके साथ साथ जा रहा हू। म सोच रहा हू, मुह से शब्द निकालने मे देर कर रहा हू।

हकलानेवाले की जबान से ही नहीं, बल्कि ऐसे व्यक्ति की जबान से भी शब्द रुक-रुककर निकल सकते ह, जो अधिक उचित, अधिक आवश्यक और बुद्धिमत्तापूर्ण शब्दों की खोज करता है। अपनी बुद्धिमत्ता से आश्चर्यचकित

करने की तो म आशा नहीं करता, मगर हकला भी नहीं हू। म शब्द खोज रहा हू।

अबूतालिब ने कहा है कि पुस्तक की भूमिका तो वही तिनका है, जो अंधविश्वासी पहाड़िन पति का भेड का खाल का कोट ठीक करते हुए दांतों तले दबाये रहती है। अगर वह तिनका दांतों तले न दबाये रखे, तो जसा कि माना जाता है, भेड की खाल का कोट कफन मे बदल सकता है।

अबूतालिब ने यह भी कहा है कि म उस आदमी के समान हू, जो अंधेरे मे ऐसे दरवाजे को खोज रहा है, जिसमे दाखिल हुआ जा सके, या उस आदमी के समान हू, जिसे दरवाजा तो मिल गया है, मगर जिसे यह विश्वास नहीं कि वह उसमे दाखिल हो सकता है या उसे उसमें दाखिल होना भी चाहिये या नहीं। यह दरवाजे पर दस्तक देता है—ठक, ठक।

"ए घरवालो, अगर तुम मास उबालना चाहते हो, तो तुम्हारे उठने का वक्त हो गया!"

"ए घरवालो, अगर तुम्हें जई पीसनी है, तो मजे से सोये रहो, जल्दी करने की जरूरत नहीं है।"

"ए घरवालो, अगर तुम बूजा (एक तरह की बीयर) पीने का इरादा रखते हो, तो पडोसी को बुलाना मत भूल जाना!"

ठक-ठक, ठक-ठक!

"तो क्या म अन्दर आ जाऊ, या मेरे बिना ही तुम्हारा काम चल जायेगा?"

बोलना सीखने के लिये आदमी को दो साल की जरूरत होती है, मगर यह सीखने के लिये कि जबान को बस मे कसे रखा जाये, साठ सालों की आवश्यकता होती है।

म न तो दो साल का हू और न साठ साल का। म दोनों के बीच मे हू। फिर भी म शायद दूसरे बिन्दु के अधिक निकट हू, क्योंकि मुझे अनकहे शब्द कहे जा चुके सभी शब्दो से अधिक प्यारे ह।

वह पुस्तक जो मने अभी तक नहीं लिखी, लिखी जा चुकी सभी पुस्तको से अधिक प्रिय है। वह सबसे ज्यादा प्यारी, वांछित और कठिन है।

नयी किताब – यह तो वह दर्रा है, जिसमे म कभी नहीं गया, मगर जो मेरे सामने खुल चुका है, मुझे अपनी धुधली दूरी की तरफ खींचता है। नयी पुस्तक – यह तो वह घोडा है, जिसपर मने अब तक कभी सवारी नहीं की, वह खजर है, जिसे मने म्यान से नहीं निकाला।

पहाडी लोगो मे कहा जाता है – "जरूरत के बिना खजर को बाहर नहीं निकालो। अगर निकाल लिया है, तो मारो! ऐसे मारो कि घुडसवार और घोडा, दोनो ही फौरन दूसरी दुनिया मे पहुच जायें।"

तुम्हारा कहना ठीक है, पहाडी लोगो!

फिर भी खजर निकालने से पहले आपको इस बात का यकीन होना चाहिये कि उसकी धार खूब तेज है।

मेरी पुस्तक, बहुत सालो तक तुम मेरी आत्मा मे जीती रही हो! तुम उस औरत, दिल की उस रानी के समान हो, जिसे उसका प्रेमी दूर से देखा करता है, जिसके सपने देखता है, मगर जिसे छूने का उसे सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ। कभी-कभी ऐसा भी हुआ है कि वह बिल्कुल नजदीक ही खडी रही है – बस, हाथ बढ़ाने की ही जरूरत थी, मगर मेरी हिम्मत न हुई, म झेंप गया, मेरे मुह पर लाली दौड गयी और म दूर हट गया।

पर अब यह सब खत्म हो चुका है। मने साहसपूर्वक उसके पास जाने और उसका हाथ अपने हाथ मे लेने का निर्णय कर लिया है। झेंपू प्रेमी की जगह म साहसी और अनुभवी मर्द बनना चाहता हू। म घोडे पर सवार होता हू, तीन बार चाबुक सटकारता हू – जो भी होना हो, सो हो!

फिर भी म अपने कड़वे देसी तम्बाकू को कागज पर डालता हू, इतमीनान से सिगरेट लपेटता हू। अगर सिगरेट लपेटने मे ही इतना मजा है, तो कश लगाने मे कितना मजा होगा!

मेरी पुस्तक, तुम्हे शुरू करने से पहले म यह बताना चाहता हू कि कसे तुमने मेरी आत्मा मे रूप धारण किया। कसे मने तुम्हारा नाम चुना। किसलिये म तुम्हें लिखना चाहता हू। जीवन मे मेरे क्या उद्देश्य-लक्ष्य ह।

मेहमान को म रसोईघर मे जाने देता हू, जहां अभी भेड का धड साफ किया जा रहा है और अभी सीख-कबाब की नहीं, लहू और गर्म मांस की गध आ रही है।

दोस्तों को मैं अपने पावन काय-कक्ष में ले जाता हूं, जहां मेरी पाण्डुलिपियां रखी हैं, और मैं उन्हें उनको पढ़ने की इजाज़त देता हूं।

मेरे पिता जी चाहे यह कहा करते थे कि जो कोई परायी पाण्डुलिपियां पढ़ता है, वह दूसरों की जेब में हाथ डालनेवाले के समान है।

पिता जी यह भी कहा करते थे कि भूमिका थियेटर में तुम्हारे सामने बैठे चौड़े चकले कंधों और साथ ही बड़ी टोपीवाले आदमी की याद दिलाती है। अगर वह टिककर बैठा रहे, दायें-बायें न हिले, तो भी ग़नीमत समझिये। दर्शक के नाते ऐसे आदमी से मुझे बड़ी असुविधा और आखिर झल्लाहट होने लगती है।

नोटबुक से। मुझे मास्को या रूस के दूसरे शहरों में अक्सर कवि सम्मेलनों में हिस्सा लेना पड़ता है। हॉल में बैठे लोग अवार भाषा नहीं जानते होते। शुरू में अशुद्ध उच्चारण के साथ मैं जैसे-तैसे रूसी भाषा में अपने बारे में कुछ बताता हूं। इसके बाद मेरे दोस्त, रूसी कवि, मेरी कविताओं का अनुवाद सुनाते हैं। मगर उनके शुरू करने के पहले आम तौर पर मुझसे मेरी मातृभाषा में एक कविता सुनाने का अनुरोध किया जाता है—"हम अवार भाषा और कविता के संगीत का रस लेना चाहते हैं।" मैं सुनाता हूं, मगर मेरा कविता-पाठ गाना शुरू होने के पहले पंडूर की झनझनाहट के सिवा और कुछ नहीं होता।

तो क्या मेरी किताब की भूमिका भी ऐसी ही नहीं है?

नोटबुक से। मैं जब विद्यार्थी था, तो जाड़े का ओवरकोट खरीदने के लिये पिता जी ने मुझे पैसे भेजे। पैसे तो मैंने खर्च कर डाले और ओवरकोट नहीं खरीदा। जाड़े की छुट्टियों में वही हल्का-सा ओवरकोट पहने हुए, जिसे गर्मियों में पहनकर मैं मास्को पढ़ने आया था, दाग़िस्तान जाना पड़ा।

घर पर पिता जी के सामने मैं अपनी सफ़ाई पेश करने लगा—तुरत फुरत एक से एक बेतुका और बे सिर-पैर का क़िस्सा गढ़कर सुनाने लगा। जब मैं अपने ही ताने बाने में पूरी तरह उलझ गया, तो पिता जी ने मुझे टोकते हुए कहा—

"रुको, रसूल। मैं तुमसे दो सवाल पूछना चाहता हूं।"

"पूछिये।"

"ओवरकोट खरीदा?"

"नहीं।"

"पसे खच कर दिये?"

"हां।"

"बस, अब सारी बात साफ हो गयी। अगर दो लफ्जों मे ही मामले का निचोड निकल सकता है, तो किसलिये तुमने इतने बेकार शब्द कहे, इतनी लम्बी चौडी भूमिका बाधी?"

मेरे पिता जी ने मुझे ऐसी शिक्षा दी थी।

फिर भी बच्चा पदा होते ही नहीं बोलने लगता। शब्द कहने से पहले वह अपनी तुतली भाषा मे कुछ ऐसा बोलता है, जो किसी के पल्ले नहीं पडता। ऐसा भी होता है कि जब वह दद से रोता चिल्लाता है, तो मा के लिये भी यह जानना मुश्किल हो जाता है कि उसे किस जगह पर दद हो रहा है।

क्या कवि की आत्मा बच्चे की आत्मा जसी नहीं होती?

पिता जी कहा करते थे कि लोग जब पहाडो से भेडो के रेवड के आने का इन्तजार करते ह, तो सबसे पहले उन्हें हमेशा आगे आगे आनेवाले बकरे के सींग दिखाई देते हैं, फिर पूरा बकरा नजर आता है और इसके बाद ही वे रेवड को देख पाते ह।

लोग जब शादी के या मातमी जुलूस की राह देखते ह, तो पहले तो उन्हें हरकारा दिखाई देता है।

गाव के लोग जब हरकारे के इन्तजार मे होते ह, तो पहले तो उन्हें धूल का बादल, फिर घोडा और उसके बाद ही घुडसवार नजर आता है।

लोग जब शिकारी के लौटने की प्रतीक्षा मे होते ह, तो पहले तो उन्हे उसका कुत्ता ही दिखाई देता है।

इस पुस्तक का कैसे जन्म हुआ और यह कहा लिखी गयी

छोटे बच्चे भी बड़े सपन देखते हैं।

पालने पर आलेख

अस्त्र, जिसकी केवल एक बार ही आवश्यकता पड़े,
जीवन भर अपने साथ रखना पड़ता है।

कवितायें, जिन्हें जीवन भर दोहराया जाता है,
एक बार ही लिखी जाती हैं।

वसन्त के दिनों में वसन्त का एक पक्षी किसी गांव मे उड़ता हुआ आया। लगा सोचने कि बैठकर आराम करे। एक पहाड़ी घर की चौड़ी, समतल और साफ छत पर नजर पड़ी। छत पर उसे समतल करने के लिये पत्थर का रोलर है। पक्षी आसमान से नीचे उतरा और रोलर पर आराम करने बैठ गया। चुस्त पहाड़िन पक्षी को पकड़कर घर में ले गयी। पक्षी ने देखा कि घर के सभी लोग उसके साथ अच्छे ढग से पेश आते हैं और इसलिये वहीं रहने लगा। उसने धुए से काले हुए पुराने शहतीर पर ठोके गये नाल मे अपना घोंसला बना लिया।

क्या मेरी किताब के बारे मे भी यही बात नहीं है?

कितनी ही बार मने अपने काव्य गगन से नीचे, गद्य के समतल मदान पर यह ढूढ़ते हुए नजर डाली कि कहा बैठकर आराम करू

नहीं, इस सिलसिले मे उस हवाई जहाज़ से तुलना करना ज्यादा ठीक होगा, जिसे हवाई अड्डे पर उतरना है। लीजिये, म चक्कर काटता हू ताकि नीचे उतरने लगू। मगर बुरे मौसम के कारण हवाई अड्डे वाले मुझे ऐसा करने की इजाजत नहीं देते। बहुत बडा चक्कर काटने के बजाय म फिर से सीधी उडान भरता हुआ आगे उडने लगता हू और वाछित पृथ्वी फिर नीचे ही रह जाती है अनेक बार ऐसा ही हो चुका है।

तो मने सोचा, इसका तो यही मतलब निकलता है कि कंकरीट का मजबूत आधार मेरी क़िस्मत मे नहीं लिखा है। इसका तो यही अथ है कि मेरे परो को धरती पर अविराम चलते ही जाना होगा, मेरी आखो को निरतर पृथ्वी की नई जगहो को खोजते रहना होगा, मेरे हृदय को लगातार नये गीत रचने होगे।

जिस तरह कोई हलवाहा आसमान मे तरते दूधिया बादल या तिकोन बनाकर उडे जाते सारसो को देखते हुए अपनी सुध-बुध भूल जाता है, मगर कुछ ही क्षण बाद इस जादू से मुक्त हो अधिक उत्साह के साथ हल चलाने लगता है, उसी तरह म अधूरी छोडी गयी अपनी लम्बी कविता की ओर लौटा हू।

हा, मेरी कविता, म अन्तरिक्ष से उसकी चाहे कितनी भी तुलना क्यो न करूं, मेरे लिये वह मेरी ठोस जमीन थी, मेरा खेत थी, मेरा गाढ़ा पसीना थी। अब तक गद्य तो मने बिल्कुल ही नहीं लिखा था।

तो एक दिन मुझे एक पकेट मिला। पकेट मे उस पत्रिका के सम्पादक का पत्र था, जिसका म बहुत आदर करता हू। वसे, आदर तो म सम्पादक का भी बहुत करता हू। हा, सम्पादक ने भी अपना पत्र "आदरणीय रसूल" शब्दों के साथ शुरू किया था। कुल मिलाकर, गहरी पारस्परिक आदर भावना सामने आई।

पत्र को जब मने खोला, तो वह मुझे भस की उस खाल का सा प्रतीत हुआ, जिसे पहाडी लोग अच्छी तरह सुखाने के लिये अपने घर की सपाट छत पर फला देते ह। अच्छी तरह सूख चुकी भस की खाल को घर मे ले जाने के लिये जब तह लगायी जाती है, तो वह जितनी आवाज करती है, इसी तरह उस पत्र को पढ़ते समय उसके काग़ज़ो ने भी कुछ कम सर सराहट नहीं की। सिफ खाल की तेज, नाक मे खुजली-सी पदा करनेवाली गध नहीं थी। पत्र से किसी भी तरह की गध नहीं आ रही थी।

खर, तो सम्पादक ने यह लिखा था—"हमारे सम्पादकमण्डल ने अपनी पत्रिका के अगले कुछ अको मे दागिस्तान की उपलब्धियों, शुभ कार्यों और सामान्य श्रम दिवसो के बारे मे सामग्री छापने का निणय किया है। यह आम मेहनतकशो, उनके साहसपूण कार्यों, उनकी आशाओं-आकाक्षाओ की कहानी होनी चाहिए। यह कहानी होनी चाहिये तुम्हारे पहाडी प्रदेश के उज्ज्वल 'भविष्य', उसकी सदियो पुरानी परम्पराओं की, मगर मुख्यत यह कहानी होनी चाहिये उसके भव्य 'वत्तमान' की। हमने तय किया है कि ऐसी कहानी तुम ही सबसे बेहतर लिख सकते हो। इसके लिये विधा तुम अपनी पसन्द के अनुसार चुन सकते हो—कहानी, लेख, रेखाचित्र, कुछ लघु शब्द चित्र—किसी भी रूप मे लिख सक्ते हो। सामग्री—६ १० टाइप पृष्ठो की हो और २०–२५ दिनों में पहुच जाये। हमे तुम्हारे सहयोग की पूरी आशा है और तुम्हें पहले से ही धन्यवाद देते ह "

कभी वह जमाना था कि लडकी की शादी करते हुए उसकी सहमति नहीं ली जाती थी। बस, शादी कर दी जाती थी। या जसे कि आजकल कहा जाता है, शादी का तथ्य उसके सामने रख दिया जाता था। मगर उन वक्तों मे भी हमारे पहाडो मे बेटे की रजामन्दी के बिना कोई उसकी शादी करने की हिम्मत नहीं कर सकता था। सुनने मे आया है कि किसी होदातलीवासी ने एक बार ऐसा किया था। मगर मेरा सम्मानित सम्पादक क्या होदातली गाव का रहनेवाला है? मेरे लिये उसने ही सब कुछ तय कर लिया मगर क्या मने नौ पृष्ठों और बाईस दिन की अवधि मे अपने दागिस्तान के बारे मे बताने का निणय किया है?

अपने लिये अपमानजनक इस पत्र को मने झल्लाहट मे कहीं दूर फेंक दिया। मगर कुछ दिन बाद मेरे टेलीफोन की घटी ऐसे लगातार बजने लगी, मानो वह टेलीफोन की घटी न होकर अडा देनेवाली मुर्गी हो। जाहिर है कि पत्रिका के सम्पादकीय कार्यालय का ही यह टेलीफोन था।

"सलाम, रसूल! हमारा खत मिला?"

"हां।"

"सामग्री का क्या हुआ?"

"सामग्री म काम-काज मे उलझा रहा फुरसत नहीं मिली।"

"यह तुम क्या कह रहे हो, रसूल! भला ऐसा कसे हो सकता है! हमारी पत्रिका की तो लगभग दस लाख प्रतियां छपती ह। विदेशों में भी

उसके पाठक है। पर यदि तुम सचमुच ही बहुत व्यस्त हो, तो हम कोई आदमी तुम्हारे पास भेज देते है। तुम अपने कुछ विचार और तफ़सील उसे बता देना, बाक़ी वह सब कुछ खुद ही कर लेगा। तुम उसे पढकर, ठीक ठाक करके उसपर अपने हस्ताक्षर कर देना। हमारे लिये तो मुख्य चीज़ तुम्हारा नाम है।"

"मेहमान को देखकर जो नाखुश हो, उसकी सारी हड्डिया टूट जायें। अगर कोई मेहमान के आने पर रोनी सूरत बनाये या नाक भौंह चढ़ाये, तो उसके घर मे न तो बडे ही रहें, जो अक्लमन्द नसीहत दे सके और न छोटे ही रहें, जो उन नसीहतों को सुन सके! ऐसा है मेहमानो के बारे मे हम पहाडी लोगो का दृष्टिकोण। मगर खुदा के लिये कोई मददगार नहीं भेजियेगा। अपना साज म उसके बिना ही सुर मे कर लूगा। अपनी गागर का हत्था भी म खुद ही तयार कर लूगा। अगर पीठ पर खुजली होगी, तो खुद मुझसे बेहतर तो कोई उसे नहीं खुजा सकेगा।"

बस, यहा हमारी बातचीत का अन्त हो गया। वा सलाम, वा कलाम[1]

मने एक महीने की छुट्टी ली और अपने जन्म गाव त्सादा चला गया।

त्सादा   सत्तर गम चूल्हे। निमल और ऊचे आकाश मे सत्तर चिमनियो से नीला धुआ उठा करता है। काली धरती पर सफेद पहाडी घर है। गाव, सफेद घरो के सामने हरे, समतल मदान है। गाव के पीछे चट्टानें ऊपर को उठती चली गयी है। हमारे गाव के ऊपर भूरी चट्टानों का ऐसा जमघट है मानो बालक नीचे, शादीवाले अहाते मे झाकने के लिये समतल छत पर इकट्ठे हुए हों।

त्सादा गाव मे आने पर मुझे पिता जी का वह खत याद हो आया, जो पहली बार मास्को देखने पर उन्होने हमे लिखा था। यह समझ पाना मुश्किल था कि पिता जी ने अपने खत मे किस जगह पर मजाक किया है और कहा संजीदगी से बात लिखी है। मास्को देखकर उन्हे बडी हैरानी हुई थी—

"ऐसा लगता है कि यहा मास्को मे खाना पकाने के लिये आग नहीं जलाई जाती, क्योंकि मुझे यहा अपने घरों की दीवारो पर उपले पाथने वाली औरतें नजर नहीं आतीं, घरो की छतों के ऊपर अबूतालिब की

बडी टोपी जसा धुआं नहीं दिखाई देता। छत को समतल करने के लिये रोलर भी नजर नहीं आते। मास्कोवासी अपनी छतों पर घास सुखाते हो, ऐसा भी नहीं लगता। पर यदि घास नहीं सुखाते, तो अपनी गायो को क्या खिलाते ह ? सूखी टहनियो या घास का गट्ठा उठाये एक भी औरत कहीं नजर नहीं आई। न तो कभी जुरने की झनक और न खजडी की ढमक ही सुनाई दी है। ऐसा लग सकता है मानो जवान लोग यहा शादिया ही नहीं करते और ब्याह का धूम धडाका ही नहीं होता। इस अजीब शहर की गलियों-सडकों पर मैंने कितने भी चक्कर क्यो न लगाये, कभी एक बार भी कोई भेड नजर नहीं आई। तो सवाल पदा होता है कि जब कोई मेहमान आता है, तो मास्कोवाले क्या जिबह करते ह ? अगर भेड को जिबह करके नहीं, तो यार-दोस्त के आने पर वे कसे उसकी खातिरदारी करते ह ? नहीं, ऐसी जिन्दगी मुझे नहीं चाहिये। म तो अपने त्सादा गाव मे ही रहना चाहता हू, जहा बीवी से यह कहकर कि वह कुछ ज्यादा लहसुन डालकर खीनकाल बनाये, उन्हें जी भरकर खाया जा सकता है "

मेरे पिता जी ने अपने जन्म गाव के मुकाबले मे मास्को मे और भी बहुत-सी खामिया खोज निकालीं। जाहिर है कि जब उन्होंने इस बात की हैरानी जाहिर की थी कि मास्को के घरो पर उपले नहीं पाथे हुए थे, तो मजाक किया था, मगर जब बडे शहर के मुकाबले मे अपने जन्म गाव को तरजीह दी थी, तो उसमे मजाक नहीं था। वे अपने त्सादा को प्यार करते थे और उसके मुकाबले मे दुनिया की सभी राजधानियों को ठुकरा देते।

प्यारे त्सादा! तो लो उस बहुत बडी दुनिया से म तुम्हारे पास आ गया हू, जिसमे मेरे पिता जी को ही इतनी ज्यादा खामिया नजर आई थीं। म घूम आया हू इस दुनिया मे और बहुत-से अजूबे देखे ह मने। इतनी ज्यादा खूबसूरती देखने को मिली कि आखें यही तय न कर पायीं कि वे कहा टिकें। एक सुन्दर मन्दिर-मसजिद से मेरी नजर दूसरे मन्दिर-मसजिद की तरफ भागती रही, एक खूबसूरत चेहरे से दूसरे खूबसूरत चेहरे की तरफ खिचती रही। मगर म जानता था कि जो कुछ इस वक्त देख रहा हू, वह चाहे कितना ही खूबसूरत क्यो न हो, कल मुझे उससे भी ज्यादा खूबसूरती देखने को मिलेगी दुनिया का तो कोई ओर छोर ही न ठहरा।

भारत के पगोडा, मिस्र के पिरामिड, इटली के वास्तुशिल्प मुझे माफ़ करें, अमरीका के राजमार्ग, पेरिस के बुलवार, इंगलैंड के पार्क और स्विटज़रलैंड के पहाड़ मुझे क्षमा करें, पोलैंड, जापान और रोम की औरतों से मैं माफ़ी चाहता हूं – मैं तुम सब पर मुग्ध हुआ, मगर मेरा दिल चैन से धड़कता रहा। अगर उसकी धड़कन बढ़ी भी, तो इतनी नहीं कि गला सूख जाता और सिर चकराने लगता।

पर अब जब मैंने चट्टान के दामन में बसे हुए इन सत्तर घरों को फिर से देखा है, तो मेरा दिल ऐसे क्यों उछल रहा है कि पसलियों में दर्द होने लगा है, आंखों के सामने अंधेरा छा गया है और सिर ऐसे चकराने लगा है मानो मैं बीमार या नशे में धुत्त होऊं!

क्या दाग़िस्तान का छोटा-सा गांव वेनिस, क़ाहिरा या कलकत्ते से बढ़कर है? क्या लकड़ियों का गट्ठा उठाये पगडंडी पर जानेवाली अवार औरत स्कैंडिनेविया की ऊंचे क़द और सुनहरे बालोंवाली सुंदरी से बढ़कर है?

त्सादा! मैं तुम्हारे खेतों में घूम रहा हूं और सुबह की ठण्डी शबनम मेरे थके हुए पैरों को धो रही है। पहाड़ी नदियों से भी नहीं चश्मों के पानी से मैं अपना मुंह धोता हूं। कहा जाता है कि अगर पीना ही है, तो चश्मे से पियो। यह भी कहा जाता है – मेरे पिता जी ऐसा कहा करते थे – कि मर्द केवल दो ही हालतों में घुटनों के बल खड़ा हो सकता है – चश्मे से पानी पीने और फूल तोड़ने के लिये। त्सादा, तुम मेरे लिये चश्मे के समान हो। मैं घुटनों के बल होकर तुमसे अपनी प्यास बुझाता हूं।

मैं एक पत्थर देखता हूं और उस पर मुझे मानो पारदर्शी सी एक छाया नज़र आती है। यह मैं ख़ुद ही हूं, जैसा कि तीस साल पहले था। पत्थर पर बैठा हूं और भेड़ें चरा रहा हूं। मेरे सिर पर झबरीली टोपी है, हाथ में लम्बा डंडा और पैरों पर धूल है।

पगडंडी देखता हूं और उस पर भी मानो पारदर्शी छाया नज़र आती है। यह भी मैं ही हूं, जैसा कि तीस साल पहले था। किसी कारण पड़ोस के गांव में गया था। शायद पिता जी ने मुझे भेजा था।

हर क़दम पर ख़ुद अपने से ही, अपने बचपन, अपने वसन्तों, अपनी बरसातों, फूलों, पतझर में झड़े हुए पत्तों से मेरी मुलाक़ात होती है।

मैं कपड़े उतारकर चमकते हुए जल प्रपात के नीचे खड़ा हो जाता हूं। चट्टान के आठ उभरे भागों पर से उछलता हुआ यह टूट जाता है, फिर से अपने जलकणों को एकत्रित करता है और आखिर मेरे कंधों, हाथों, और सिर से टकराकर बिखर जाता है। पेरिस के "शाही महल" होटल का नहाने का फव्वारा मेरे ठण्डे जल प्रपात की तुलना मे प्लास्टिक का तुच्छ खिलौना-सा लगता है।

पहाड़ी नदी की बग़लवाली धारा से बहकर आनेवाला पानी गर्म पत्थरों के बीच दिन भर मे गर्म हो जाता है। लन्दन के "मेट्रोपोल" होटल का नीला-सा ग़ुसलखाना मेरे पहाड़ी ग़ुसलखाने के मुक़ाबले में मामूली तश्तरी सी प्रतीत होता है।

हां, मुझे बड़े शहरों मे पदल घूमना पसन्द है। मगर पांच छः लम्बी सरों के बाद शहर जाना-पहचाना-सा महसूस होने लगता है और वहां लगातार घूमते रहने की इच्छा जाती रहती है।

मगर अपने गांव की छोटी-सी सड़क पर म हजारवीं बार जा रहा हू, लेकिन मन नहीं भरा, उस पर जाने की इच्छा का अन्त नहीं हुआ।

इस बार यहा आने पर म हर घर मे गया। हर चूल्हे के पास, जहां आग जलती है, जहा अगारे दहक रहे ह या जहां कभी की राख ठण्डी हो चुकी है, मने वक्त की ठण्डी, सफ़ेद राख से ढका हुआ अपना सिर झुकाया।

म उन पालनों के पास खड़ा रहा, जहां भावी पहाड़ी-पहाड़िनें हाथ पांव पटकते थे या जो खाली थे, मगर उनमे अभी गर्मी बाक़ी थी या जिनके कम्बल और तकिये कभी के ठण्डे हो चुके थे।

हर पालने के पास मुझे ऐसा लगा मानो म खुद ही उसमे लेटा हुआ हू और पहाड़ी पगडंडिया, रूस के चौड़े रास्ते और दूर-दराज के देशों के राजमार्ग और हवाई अड्डे, ये सब अभी आगे चलकर मेरे सामने आनेवाले ह।

मने बच्चों के लिये लोरियां गायीं और वे मेरे सीधे-सरल गीत सुनकर मीठी नींद सो भी गये।

त्सादा के क़ब्रिस्तान मे भी म घूमता रहा, जहां पुरानी क़ब्रों के क़रीब ही, जिन पर ऊची ऊची घास उगी हुई थी, ऐसी नई-क़ब्रें भी थीं, जिनसे ताजा मिट्टी की गध आ रही थी।

मातमपुरसी के लिये म घरो मे जाकर चुपचाप बठा रहा, शादियों मे खूब खुशी से नाचा। बहुत-से ऐसे शब्द और किस्से सुने, जो अब तक नहीं सुन पाया था। बहुत कुछ ऐसा, जो म कभी जानता था और भूल गया था, अब मुझे फिर से याद हो आया, स्मृति की अतल और अधेरी गहराइयो मे से उभरकर ऊपर आ गया।

नया मने अपनी आखों से देखा और पुराने की चर्चा सुनकर उसे याद किया और मेरे विचारो ने बडे तक्ले के गिद लिपटे हुए रग बिरगे धागों का सा रूप लिया। मने मन ही मन उस बहुरगे कालीन की कल्पना की, जो इन धागो से बुना जा सकता है।

कल तक लडका था, नीडो से, पक्षी पकडा करता था
यारा को म सग लेकर,
नीली-नीली आखावाला, प्यार उमडकर जब आया
क्षण मे बालिग हुआ मगर।

कल तक मान रहा था खुद को, वयस्क, बहुत समझा, सुलझा
मैं तो मानो आजीवन,
आया प्यार, और जब आकर वह धीरे से मुस्काया
पुन हुआ लडके-सा मन।

हा, मेरी लम्बी प्रणय-कविता अधूरी ही है। प्रेमी और प्रेमिका। प्रेमी — यह तो म हू। मगर मेरी मुख्य नायिका है — मेरा प्यार। इस कविता को पूरा करना चाहिये। मगर मुझे ऐसा लगता है मानो मेरे नाम अभी अभी एक चिताजनक तार आ गया है और इसलिये मुझे फौरन हवाई अड्डे की तरफ भागना चाहिये।

या ऐसा भी होता है कि पहाडिन जब तडके ही चूल्हे मे आग जलाती है, तो पिछले दिन का बचा हुआ खाना गम करना चाहती है, जो परिवार के सभी लोगों के लिये भर पेट खाने को काफी होगा। मगर अचानक ही दहलीज पर मेहमान आ खडा होता है। अब पिछले दिन के खाने का पतीला आग पर से उतारना और ताजा खाना तयार करना जरूरी हो जाता है।

या ऐसा भी होता है कि शादी के वक्त युवाजन अपने साथी और हमउम्र दूल्हे के करीब बट जाते ह, मगर अचानक उन्हें उठना और स्थान

खाली करना पड़ता है, क्योंकि कमरे में उनसे बड़ी उम्र के लोग आ जाते हैं।

या ऐसा भी होता है कि बैठक में बुज़ुर्ग जमा होते हैं और नज़दीक ही बच्चे भी खेलते होते हैं। अचानक बच्चों को बैठक से बाहर भेज दिया जाता है, क्योंकि बुज़ुर्गों को आपस में कोई ज़रूरी सलाह-मशविरा करना होता है।

कभी-कभी मुझे ऐसा लगता है कि मैं शिकारी हूँ, मछुआ हूँ, घुड़सवार हूँ मैं ख़्यालों का शिकार करता हूँ, उन्हें फाँसता हूँ, उन पर ज़ीन कसता हूँ और उन्हें एड़ लगाता हूँ। मगर कभी-कभी मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मैं हिरन हूँ, सामन मछली हूँ, घोड़ा हूँ और विचार, चिंतन, भावनायें मुझे खोजती हैं, मुझे फाँसती हैं, मुझ पर ज़ीन कसती हैं और मेरा संचालन करती हैं।

हाँ, भावनायें और विचार ऐसे ही आते हैं जैसे पहाड़ों में बिन बुलाये और सूचना दिये बिना मेहमान आता है। मेहमान की तरह न तो उनसे छिपा जा सकता है, न बचकर कहीं भागना ही मुमकिन है।

हमारे यहाँ पहाड़ों में छोटे या बड़े, अधिक या कम महत्त्व रखनेवाले मेहमान नहीं होते। सबसे छोटा मेहमान हमारे लिये महत्त्व रखता है, क्योंकि वह मेहमान है। सबसे छोटा मेहमान सबसे बुज़ुर्ग गृह-स्वामी से भी अधिक सम्मानित हो जाता है। यह पूछे बिना ही कि वह किस इलाक़े का रहनेवाला है, हम दहलीज़ पर ही मेहमान का स्वागत करते हैं, उसे आग के क़रीब आगेवाली जगह पर ले जाते हैं और गद्दी पर बैठाते हैं।

पहाड़ों में मेहमान हमेशा अप्रत्याशित ही आता है। मगर वह कभी भी अप्रत्याशित नहीं होता, उसके आने से हमें कभी हैरानी नहीं होती, क्योंकि हमें हमेशा, हर दिन और हर घड़ी उसका इन्तज़ार रहता है।

इस किताब का ख़्याल भी पहाड़ों के मेहमान की तरह ही मेरे दिमाग़ में आया।

या ऐसा भी होता है कि काहिली, करने धरने को कुछ न होने के कारण कोई आदमी यह जाँचने के लिये कि पंडूर सुर में है या नहीं, उसे दीवार से उतारकर झनझनाने लगता है। मगर अचानक, बिल्कुल

अप्रत्याशित ही कोई गीत दिमाग मे आने लगता है, झकार धुन का रूप लेने लगती है, सुर मे बधी ध्वनियां फलने लगती ह और वह आदमी गाने मे ऐसे डूब जाता है कि उसे पता भी नहीं चलता कि कब रात बीत गयी और कब भोर हो गया।

या ऐसा भी होता है कि नौजवान किसी छोटे-मोटे काम से पडोस के गांव मे जाता है और लौटता है काठी पर पीछे बठी हुई बीवी के साथ।

प्यारे सम्पादक! आपने अपने पत्र मे जो अनुरोध किया था, म उसे पूरा कर रहा हू। जल्द ही म दागिस्तान के बारे मे किताब लिखना शुरू कर दूगा। मगर सिफ इस बात की माफी चाहता हू कि आपने इसके लिये जितना वक्त दिया है, शायद उतने मे इसे पूरा नहीं कर पाऊगा। बहुत ही ज्यादा पगडडिया मुझे लाघनी होंगी और हमारे पहाडो मे वे बहुत ही सकरी और ढालू ह।

मेरे पहाड बिना पालिश किये गये हीरों की तरह रहस्यपूण ढग से दूरी पर चमकते ह। मेरे तेज घोडे के सामने बहुत विस्तार है। वह आपके बताये हुए तग दर्रे मे नहीं दौडना चाहता।

अपने दागिस्तान को म आपके नौ-दस पृष्ठो मे नहीं समेट सकता। हां, "उपलब्धियो, शुभ कार्यों, सामान्य श्रम दिवसो", "आम मेहनतकशों, उनके साहसपूण कार्यों, उनकी आशाओं आकाक्षाओ", "पहाडी प्रदेश के उज्ज्वल 'भविष्य' और उसकी सदियो पुरानी परम्पराओं, मगर मुख्यत उसके भव्य 'वत्तमान' के बारे मे" भी म सामग्री नहीं लिख पाऊगा।

मेरी छोटी-सी लेखनी इतना बोझ उठाने मे असमथ है। उसकी नोक पर लगी स्याही की बूद मस्ती मे बहती बडी नदियो, गरजते पहाडी जल प्रपातों, दुनिया की किस्मत और किसी एक व्यक्ति के भाग्य को अपने में नहीं समेट सकती।

बडा परिन्दा – ज्यादा खून, छोटा परिन्दा – थोडा खून। जितना बडा परिन्दा, उतना ही खून।

कहते है कि सयोग से ही किसी ने गुठली फेंक दी, सयोग से ही वह हिरन के सिर पर जा गिरी और लीजिये, हिरन के शानदार सींग उग आये।

कहते हैं कि अगर दुनिया में अली न होता, तो उम्र भी न होता। अगर दुनिया में रात न होती, तो सुबह कहां से आती!

कहते हैं—

"उक़ाब, कहां जन्म हुआ तुम्हारा?"

"सग दरें में।"

"कहां उड़े जा रहे हो उक़ाब?"

"ओर-छोरहीन आकाश में।"

इस पुस्तक के भाव और नाम के बारे में

जशन और खुशियां का ही तो
इस से भास सदा होता है,
कभी-कभी पर इस में कोई
गम भी, खतरा भी सोता है।

घंटे पर आलेख

पिता वीर थे और अन्त तक
थामे रहे सत्य का दामन
पुत्र यहां पर जो सोता है
चमकेगा ऐसा ही वह बन।

सिर के ऊपर लटक रहा है
इसके वीर पिता का खंजर,
कृत्य सुनाये जाते उनके
इसे लोरियों में गा-गाकर।

पालने पर आलेख

पहाड़ी आदमी को दो चीज़ों की रक्षा करनी चाहिये – अपनी टोपी और अपने नाम की। टोपी की रक्षा वही कर सकेगा, जिसके पास टोपी के नीचे सिर है। नाम की रक्षा वह कर सकेगा, जिसके दिल में आग है।

हमारे तंग-से पहाड़ी घर की छत में गोलियों के बहुत से निशान हैं। मेरे पिता जी के दोस्तों ने पिस्तौलों से ये गोलियां चलायी थीं – आस पास के पहाड़ों में रहनेवाले उकाबों को यह पता लग जाना चाहिये कि उनके एक भाई ने जन्म लिया है, कि दागिस्तान में एक उकाब और बढ़ गया है।

जाहिर है कि पिस्तौल चलाने, गोली छोडने से बेटा पदा नहीं हो सकता। मगर बेटे के जन्म की घोषणा करने के लिये तो हमेशा गोली पास मे होनी ही चाहिये।

जब म पदा हुआ और जब मेरा नाम रखा गया, तो मेरे पिता जी के दोस्त ने दो गोलिया चलायीं—एक छत मे, दूसरी फश पर।

अम्मा ने मुझे बताया कि मेरा नाम कसे रखा गया। अपने घर मे म तीसरा बेटा था। एक लडकी यानी मेरी बहन भी थी, मगर हम तो मर्दों का, बेटों का जिक्र कर रहे ह।

जेठे बेटे का नाम तो उसके पदा होने के बहुत पहले ही सारा गाव जानता था। वह इसलिये कि उसे तो उसके स्वगवासी दादा का नाम दिया जाना चाहिये। गाव के हर आदमी को यह याद था और इसलिये सभी यह कहते थे कि जल्दी ही हमजातोवों के घर मे मुहम्मद पदा होगा।

मेरे दादा के अहाते मे कुत्ते बिल्ली को छोडकर कभी एक भी चौपाया नहीं आया था। शायद ही वे कभी कम्बल ओढ़कर सोये हों, शायद ही उन्होंने कभी अडरवीयर को जाना हो। दुनिया का कोई भी डाक्टर इस बात की डींग नहीं मार सकता था कि उसने मेरे दादा मुहम्मद की डाक्टरी जाच की थी, उनके मुह का मुआयना किया था, नब्ज देखी थी, कभी उन्हें लम्बी लम्बी और कभी रुक रुककर सास लेने को मजबूर किया था या यह कि उनका जिस्म ही देखा था। इसी तरह हमारे गाव मे उनके जन्म और मृत्यु की सही तिथि भी किसी को मालूम नहीं थी। अगर एक अर्जी पर एतबार किया जाये, जो इसलिये लिखित थी कि मेरे पिता जी पर कुछ काली छाया पड सके, तो मेरे दादा मुहम्मद थोडी सी अरबी भी जानते थे। मेरे पिता जी ने उन्हीं का नाम अपने जेठे बेटे, मेरे सबसे बडे भाई को दिया।

मेरे पिता जी के एक चाचा भी थे, जिनका दूसरे लडके के जन्म से कुछ ही पहले देहान्त हुआ था। चाचा का नाम अखीलची था।

"लो, अखीलची ने नया जन्म ले लिया!" हमारे घर मे जब दूसरे लडके ने जन्म लिया, तो गाववालो ने खुश होकर कहा। "हमारे अखीलची का पुनजन्म हो गया। अगर उसके गरीब घर पर कौवा बठे, तो मुसीबत नहीं, कोई खुशी ही लेकर आये। हमारी यही तमन्ना है कि लडका वसा ही नेक आदमी बने, जसा वह था, जिसका नाम उसे नसीब हुआ है।"

जब मुझे जन्म लेना था, तो पिता जी का न तो कोई ऐसा रिश्तेदार था और न ही दोस्त, जिसकी कुछ समय पहले मृत्यु हुई हो या जो पराये इलाके मे कहीं गुम हो गया हो और जिसका नाम मुझे दिया जा सकता हो ताकि म दुनिया मे उसकी यसी ही इज्जत बनाये रख सकू।

जब मेरा जन्म हुआ, तो पिता जी ने मेरा नाम रखने की रसम अदा करने के लिये गाव के सबसे बाइज्जत लोगो को अपने घर बुलाया। वे घर मे आकर बडे इतमीनान और शान से ऐसे बठ गये मानो सारे मुल्क की किस्मत का ही फसला करनेवाले हो। उनके हाथो मे बालखारी के कुम्हारों की बनायी हुई बडी बडी तोदवाली सुराहिया थीं। जाहिर है कि इन सुराहियो मे फेनिल बूजा था। सिफ सबसे बूढे, बफ की तरह सफेद सिर के बालों और दाढीवाले बुजुग, जो पराम्बर जसे लगते थे, के हाथ ही खाली थे।

दूसरे कमरे से बाहर आकर मेरी अम्मा ने मुझे इस बुजुग के हाथों म सौंप दिया। म बुजुग के हाथो म मचलता रहा और इस बीच अम्मा ने कहा –

"तुमने कभी पन्दूर तो कभी खजडी हाथो मे लेकर मेरी शादी मे गाया था। बहुत ही अच्छे थे तुम्हारे गीत। मेरे बच्चे को हाथो मे लिये हुए इस वक्त तुम कौन-सा गीत गाओगे?"

"ए देवी! पालना झुलाते हुए उसके लिये गीत तो गाओगी तुम, तुम उसकी मा। इसके बाद उसके लिये गायें परिन्दे और नदियां। तलवारें और पिस्तौलें भी उसे गाने सुनायें। सबसे अच्छा गीत उसे सुनाये उसकी दुलहन।"

"तो इसका नाम रख दो। तुम इस वक्त इसे जो नाम दो, वह म, इसकी मां, सारा गाव और सारा दागिस्तान सुने।"

बुजुग ने मुझे छत तक ऊचा उठाया और कहा –

"लडकी का नाम सितारे की चमक या फूल की कोमलता जसा होना चाहिये। मद के नाम मे तलवार की टाकार और किताबों की अक्लमन्दी की झलक शक्ल मिलनी चाहिये। किताबें पढ़ते हुए बहुत नाम जाने मने, तलवारों की टनकार मे भी बहुत नाम सुने मने। मेरी किताबें और मेरी तलवारें मेरे कान मे अब 'रसूल' नाम फुसफुसाती ह।"

पराम्बर जसे लगनेवाले बुजुग मेरे एक कान पर झुककर "रसूल" फुसफुसाये। फिर उन्होंने मेरे दूसरे कान पर झुककर जोर से कहा –

"रसूल!" इसके बाद उन्होंने मुझ रोते हुए को मेरी मां के हाथों में सौंप दिया और उसे तथा घर मे बठे सभी लोगों को सम्बोधित करते हुए कहा—

"तो यह है रसूल!"

घर म बठे लोगों ने मूक सहमति से मेरे नाम की पुष्टि की। बड़े बूढ़ों ने बूजा पीना शुरू किया और हर कोई हाथ से मूछों को साफ करते हुए काढा।

हर पहाडी को दो चीजों की रक्षा करनी चाहिये— टोपी और नाम की। टोपी बहुत भारी हो सकती है। नाम भी। ऐसा लगता है कि दुनिया को देखे जाने और बहुत-सी किताबें पढ़े-गुढ़े पके बालोंवाले बुजुग ने मेरे नाम मे कोई अथ और उद्देश्य भर दिया था।

अरबी भाषा मे रसूल का मतलब है—"दूत" या अगर इससे भी अधिक सही तौर पर कहा जाये, तो "प्रतिनिधि"। हां, तो किसका दूत या प्रतिनिधि हू म?

नोटबुक से। बेल्जियम। म ससार के कवि-समागम मे भाग ले रहा हू। विभिन्न जातियों और देशों के प्रतिनिधि यहां जमा ह। हर किसी ने मच पर आकर अपनी जनता, जनता की सस्कृति, कविता, और भाग्य की चर्चा की। कुछ ऐसे प्रतिनिधि भी थे— लन्दन से आनेवाला हगेरियाई, पेरिस से आनेवाला एस्तोनियाई, सान फ्रांसिस्को से आनेवाला पोलडी इसमे कोई कर ही क्या सकता है—किस्मत ने उन्हे अलग अलग देशों, सागरों और पवतो, उनकी मातृभूमियों से दूर ले जाकर फेंक दिया है।

सबसे ज्यादा तो मुझे उस कवि ने हैरान किया, जिसने यह कहा—

"महानुभावो, आप अलग अलग देशों से आकर यहा जमा हुए ह। आप विभिन्न जातियों के प्रतिनिधि ह। केवल म ही न तो किसी जाति और न किसी देश का प्रतिनिधि हू। म सभी जातियों, सभी देशों का प्रतिनिधि हू, म कविता का प्रतिनिधि हू। हा, म कविता हू। म वह सूरज हू, जो सारी दुनिया को रोशनी देता है, म वह बारिश हू, जो अपनी जाति का ध्यान किये बिना सारी पृथ्वी पर पानी बरसाती है, म वह पेड हू, जो पृथ्वी के हर हिस्से मे समान रूप से फूलता फलता है।"

वह ऐसा कहकर मच से नीचे उतर गया। बहुतो ने तालिया बजायीं। मने सोचा—उसकी बात सही है, निश्चय ही हम कवि सारी दुनिया के

लिये उत्तरदायी हू, मगर जिसे अपने पर्वतो से प्यार नहीं, वह सारी पृथ्वी का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता। मुझे तो वह उस आदमी जैसा लगता है, जो अपना घर घाट छोडकर किसी दूसरी जगह चला जाये, वहा शादी कर ले और सास को मा कहने लगे। मै सासो के खिलाफ नहीं हू, मगर अपनी मा को छोडकर कोई दूसरी मा नहीं हो सकती।

जब किसी से यह पूछा जाता है कि तुम कौन हो, तो वह अपना पासपोर्ट या ऐसी दस्तावेजें दिखा सकता है, जिसमे उसके बारे मे सभी तथ्य दर्ज होते है। मगर जब किसी जाति से उसके बारे मे पूछा जाता है, तो वह पासपोर्ट के रूप मे अपने किसी विद्वान, लेखक, चित्रकार, स्वरकार, राजनयिक या सेनापति का नाम पेश करती है।

हर व्यक्ति को अपनी किशोरावस्था से ही यह समझना चाहिये कि वह अपनी जनता का प्रतिनिधि बनने के लिये इस दुनिया मे आया है और उसे यह भूमिका निभाने की जिम्मेदारी अपने कधो पर लेने को तैयार रहना चाहिये।

इसान को नाम, टोपी और अस्त्र दिये जाते है, पालने के समय से ही उसे अपने प्यारे गीत सिखाये जाते है।

भाग्य मुझे कहीं भी क्यो न ले जा फेंके, हर जगह ही मै अपने को उस धरती, उन पहाडों, उस गाव का प्रतिनिधि अनुभव करता हू, जहा मैने घोडे पर ज़ीन कसना सीखा। मै हर जगह खुद को अपने दागिस्तान का विशेष सवाददाता मानता हू।

मगर अपने दागिस्तान मे मै समूची मानवजाति का विशेष सवाददाता, अपने सारे देश, यहा तक कि सारी दुनिया का प्रतिनिधि बनकर लौटता हू।

अपनी धरती के बारे मे
कहना चाहा बहुत नही कुछ भी कह पाया
भरी खुरजिया सग लिये हू
हाय मुसीबत, मै तो उनको खोल न पाया।

अपनी भाषा मे दुनिया का
गाना चाहा गीत, मगर मै गा न पाया
लादे हू, सदूक पीठ पर
हाय मुसीबत, ताला पर न खुला-खुलाया।

पहाड़ी घर की समतल छत पर हम बैठ जाते हैं और मेरे गांववाले मुझसे पूछने लगते हैं—

"दूर-दराज़ के मुल्कों में कहीं कोई हमारा हमवतन नहीं मिला?"

"दुनिया मे हमारे पहाड़ो जैसे पहाड़ भी कहीं हैं?"

"अजनबी जगहों पर क्या तुम्हारा मन उदास हुआ, तुम्हें हमारे गाव की याद आई?"

"दूसरे देशों में लोग हमारे बारे मे जानते हैं या नहीं? उन्हें मालूम है कि इस दुनिया में हम भी रहते हैं?"

मैं उन्हें जवाब देता हूं—

"अगर हम ख़ुद ही ढंग से अपने को नहीं जानते, तो वे हमें कहां से जानेंगे। हम कुल दस लाख हैं। हम दाग़िस्तानी पहाड़ो की पथरीली मुट्ठी मे मानो बन्द हैं। दस लाख लोग हैं और चालीस ज़बानें बोलते हैं"

"तो तुम ही हमारे बारे मे बताओ—ख़ुद हमें भी और सारी दुनिया मे रहनेवाले दूसरे लोगों को भी। सदियों के दौरान खंजरो और तलवारों ने हमारी दास्तान लिखी है। इसे लोगों की भाषा मे बदलकर लिख डालो। अगर तुम, जिसने त्सादा गांव मे जन्म लिया है, ऐसा नहीं करोगे, तो कोई दूसरा तो यह करने से रहा।

"अपने विचारों को चुने हुए घोड़ों के झुण्ड मे एकत्रित कर लो। ऐसे झुण्ड मे, जिसमे एक से एक तेज़ घोड़ा हो, घटिया घोड़े का नाम निशान भी न हो। तुम्हारे विचार डरे हुए घोड़ों या पहाड़ी बकरो के झुण्ड की तरह पत्थरो पर सरपट दौड़ते हुए आयें।

"अपने भावों को छिपाओ नहीं। छिपाओगे, तो बाद में भूल जाओगे कि उन्हें कहां रख दिया। कोई कंजूस भी कभी-कभी इसी तरह अपने गुप्त खज़ाने को भूल जाता और कंजूसी के कारण अपनी दौलत खो बैठता है।

"मगर अपने विचार दूसरो को भी नहीं दो। खिलौने की जगह बच्चे को कीमती साज़ तो नहीं देना चाहिये। बच्चा साज़ को या तो तोड़ देगा या खो देगा या फिर उससे अपने को ज़ख्मी कर लेगा।

"अपने घोड़े की आदतों को ख़ुद तुमसे ज़्यादा अच्छी तरह और कोई नहीं जानता।"

मेरे पिता जी की पगडंडी का किस्सा। हमारे छोटे-से त्सादा और बड़े खुंजह गांव के बीच मोटर-सड़क है। खुंजह हलका केन्द्र है। मेरे पिता जी आम रास्ते से नहीं, बल्कि अपनी बनायी पगडंडी से ही हमेशा खुंजह जाते थे। उन्होंने ही उस पगडंडी के निशान बनाये, उसे अपने परों से रौंदा और हर सुबह और हर शाम वे उस पर आते-जाते थे।

अपनी पगडंडी पर वे अद्‌भुत फूल ढूंढ़ लेते थे। वे उनका गुलदस्ता तो और भी अद्‌भुत बनाते थे।

जाड़े में वे पगडंडी के दोनों ओर ताजा गिरी बर्फ से लोगों, घोड़ों और घुड़सवारों की मूर्तियां बनाते। त्सादा और खुंजह के लोग बाद में इन आकृतियों को देखने आते।

वे गुलदस्ते कभी के मुरझा और सूख चुके, बर्फ से बनायी गयी आकृतियां भी कभी की पिघल चुकीं। मगर दागिस्तान के फूल, मगर पहाड़ी लोगों का स्वरूप मेरे पिता जी की कविताओं में जिन्दा है।

जब मैं किशोर था और मेरे पिता जी अभी जिन्दा थे, तो एक बार मुझे खुंजह जाना पड़ा। मैं बड़े रास्ते से हट गया और मैंने उस पगडंडी पर जाना चाहा, जो मेरे अब्बा ने बनायी थी। एक बुजुर्ग पहाड़ी ने मुझे देखकर रोका और बोले—

"पिता की पगडंडी पिता के लिये ही रहने दो। अपने लिये दूसरी, अपनी पगडंडी ढूंढ़ लो।"

बुजुर्ग पहाड़ी की बात मानते हुए मैं नये मार्ग की खोज में चल दिया। मेरे गीतों की पगडंडी लम्बी और टेढ़ी-मेढ़ी रही, मगर अपने गुलदस्ते के लिये अपने फूल चुनता हुआ मैं उस पर चल रहा हूं।

इसी पगडंडी पर चलते हुए ही पहले पहल इस किताब का ख्याल मेरे दिमाग में आया।

इरादा बन गया—इसका मतलब है कि बिसमिल्ला हो जाये। बच्चा तो जरूर पैदा होगा, जरूरत तो है उसे सहेजने की, ठीक वैसे ही जैसे नारी अपने गर्भ को सहेजती है और फिर प्रसव-पीड़ा सहकर, पसीने से तर-ब-तर होकर बच्चे को जन्म देती है। किताब भी ऐसे ही लिखी जाती है।

मगर बच्चे का नाम तो उसके जन्म से पहले भी चुना जा सकता है। अपनी किताब को मैं क्या नाम दूं? पुस्तकों से मैं उसका नाम लूं? या सितारों से? या दूसरी बुद्धिमत्तापूर्ण किताबों से चुनूं?

नहीं, अपने घोड़े पर मैं पराया जीन नहीं कसूंगा। किसी दूसरी जगह से लिया गया नाम तो केवल उपनाम या लकब ही हो सकता है, नाम नहीं।

यह तो ऐसा ही है। पर यदि हम शीर्षक की खोज में होते हैं, तो पुस्तक की विषय-वस्तु, अपने सामने रखे गये लक्ष्य को ही उसका आधार बनाना चाहिये। टोपी सिर के मुताबिक़ न कि इसके उलट, चुनी जाती है। पंदूर की लम्बाई से ही उसके तारों की लम्बाई तय होती है।

मेरा गांव, मेरे पहाड़, मेरा दाग़िस्तान। बस, यही घोंसला है मेरे चिंतन, भावनाओं और कार्य-कलापों का। पंख निकलने पर इसी घोंसले से मैं उड़ा था। इसी घोंसले में मेरे सभी गीत जन्म लेते हैं। दाग़िस्तान — मेरा चूल्हा है, मेरा पालना है।

तो फिर देर तक सोचने की क्या ज़रूरत है? पहाड़ों में बेटे को अक्सर दादा का नाम दिया जाता है। मेरी किताब मेरा बच्चा होगी और मैं दाग़िस्तान का बेटा हूं। इसका मतलब है कि उसका नाम हुआ "दाग़िस्तान"। भला इससे अधिक उचित, अधिक सुंदर और सही कोई दूसरा नाम भी हो सकता है?

कोई राजदूत किस देश का प्रतिनिधित्व करता है, उसकी मोटर पर लगी झंडी से इसका पता चलता है। मेरी किताब — मेरा देश है। उसका नाम — झंडी है।

लेखक के विचार हर पृष्ठ पर, हर पंक्ति में, हर शब्द के लिये आपस में उलझते हैं। तो मेरे विचार भी किसी अंतर्राष्ट्रीय गोष्ठी में कार्य सूची से आरम्भ करके लगातार शब्दों की हाथापाई में उलझनेवाले मंत्रियों की तरह पुस्तक के नाम के बारे में बहस शुरू कर रहे हैं।

तो एक मंत्री ने भावी पुस्तक को एक शब्द "दाग़िस्तान" नाम देने का *सुझाव पेश किया। दूसरे मंत्री को यह नहीं रुचा। अपने सामने काग़ज़* खोलते हुए उसने एतराज़ किया —

"यह नाम नहीं चलेगा। ठीक नहीं रहेगा। छोटी-सी किताब को भला सारे देश का नाम कैसे दिया जा सकता है? बाप की टोपी तो बच्चे के

सिर पर नहीं रखी जा सकती, बच्चे का सिर ही उसमे गायब हो जायेगा।"

"क्यो ठीक नहीं रहेगा?" सुझाव देनेवाले मन्त्री ने उसकी बात काटी। "चाद जब आसमान मे तरता है और सागर या नदी की चिकनी सतह पर प्रतिबिम्बित होता है, तो उसके प्रतिबिम्ब को भी चाद ही कहते ह, न कि कुछ और। इस प्रतिबिम्ब के लिये क्या कोई दूसरा नाम गढ़ने की जरूरत है? हा, यह सही है कि एक किस्से मे लोमडी भेडिये को चाद का प्रतिबिम्ब दिखाकर उसे यह विश्वास दिला देती है कि वह चर्बी का टुकडा है और भेडिया बेवकूफ बनकर नदी मे कूद पडता है। मगर लोमडी तो जानी मानी धोखेबाज और मक्कार है।"

'नहीं चलेगा। ठीक नहीं रहेगा," दूसरा मन्त्री अपनी बात पर अडा रहा। "दागिस्तान तो सबसे पहले भौगोलिक अर्थ का सूचक है। पवत, नदिया, दर्रे, सोते, यहा तक कि सागर भी। मुझसे तो जब कोई 'दाग़िस्तान' कहता है, तो सबसे पहले भौगोलिक मानचित्र ही मेरे सामने उभरता है।"

"जी नहीं!" मने दखल देते हुए कहा। "मेरा दिल दागिस्तान से लबालब भरा हुआ है, मगर वह भौगोलिक मानचित्र नहीं है। मेरे दाग़िस्तान की भौगोलिक या दूसरी भी कोई सीमायें नहीं ह। न ही मेरा दागिस्तान सुदर, क्रमबद्ध रूप से एक सदी से दूसरी सदी की धारा मे बहता है। मेरी किताब, अगर मने उसे कभी लिख लिया, तो वह दाग़िस्तान के बारे मे पाठ्यपुस्तक जसी नहीं होगी। म सदियो को घुला मिला दूगा, फिर ऐतिहासिक घटनाओ का सार, जनता और 'दागिस्तान' शद का निचोड निकाल लूगा।

ऐसा लग सकता है कि दाग़िस्तान सभी दाग़िस्तानियो के लिये एक जसा है, समान है। फिर भी हर दाग़िस्तानी का अपना दाग़िस्तान है।

मेरा भी अपना दाग़िस्तान है। इस रूप मे केवल म ही इसे देखता हू, केवल म ही जानता हू। दाग़िस्तान मे मने जो कुछ देखा, जो कुछ अनुभव किया मुझसे पहले के और मेरे साथ जीनेवाले सभी दाग़िस्तानियों ने जो कुछ अनुभव किया, गीतो और नदियों कहावतो और चट्टानों, उकाबों और नालों, पहाडी पगडडियो और यहां तक कि पहाडों की प्रतिध्वनि से भी मेरे अपने दाग़िस्तान का रूप बना है।

नोटबुक से। किस्लोवोद्स्क। कमरे मे हम दो जने रहते है। एक म हू और दूसरा उजबेक है। सूर्योदय और सूर्यास्त के समय हमें खिड़की मे से एल्ब्रुस की दोनों चोटियां नजर आती है।

म सोचता हू कि ये शामिल के दो मुरीदो, दो दोस्तों के घुटे हुए और जख्मों से भरे सिर जसी है।

इसी वक्त मेरा उजबेक साथी कहता है–

"दो सिरोंवाला यह पहाड़ मुझे बुखारा के सफेद बालोंवाले उस बुजुर्ग की याद दिलाता है, जो पुलाव की दो प्लेटें लिये जा रहा था और सुबह के वक्त घाटी के नजारे से मुग्ध होकर अचानक रुका और जहां का तहां बुत बना खड़ा रह गया।"

नोटबुक से। कलकत्ते मे महान रवीन्द्रनाथ टगोर के घर में मने एक पक्षी का चित्र देखा। ऐसा पक्षी पृथ्वी पर कहीं नहीं है और न कभी था ही। टगोर की आत्मा मे उसका जन्म हुआ और वहीं वह रहा। वह उनकी कल्पना का परिणाम था। मगर, जाहिर है, कि अगर टगोर ने हमारी दुनिया के असली परिन्दे न देखे होते, तो वे अपने इस अदभुत पक्षी की भी कल्पना न कर पाते।

मेरा भी ऐसा ही अनूठा परिन्दा है–मेरा दागिस्तान। तो इसलिये कि पुस्तक का नाम बिल्कुल सही हो, उसे "मेरा दागिस्तान" कहना चाहिये। ऐसा इसलिये नहीं कि वह सम्पत्ति के रूप मे मेरा है, बल्कि इस लिये कि उसके बारे में मेरी कल्पना दूसरे लोगो की कल्पना से भिन्न है।

सो, तय हो गया। मुखावरण पर लिखा जायेगा "मेरा दागिस्तान"

मन्त्रियों की सभा में कुछ देर तक खामोशी रही, किसी ने कोई आपत्ति नहीं की। मगर अचानक तीसरा मन्त्री, जो अभी तक चुपचाप बठा रहा था, अपनी जगह से उठकर मच की तरफ चल दिया।

"मेरा दागिस्तान। मेरे पवत। मेरी नदियां। कुछ बुरा नहीं है इसमे। केवल युवावस्था, विद्यार्थी जीवन के दिनो मे ही होस्टल मे रहना अच्छा होता है। बाद मे आदमी का अपना कमरा या अपना फ्लट होना चाहिये। 'मेरा चूल्हा'–इतना कहना ही काफी नहीं है, चूल्हे मे आग भी होनी

चाहिये। 'मेरा पालना'—इतना कहने से ही काम नहीं चलता, पालने में बच्चा भी होना चाहिये। 'मेरा दाग़िस्तान'—इतना कहना ही काफी नहीं, इन शब्दों की तह मे कोई विचार—दाग़िस्तान का भाग्य, उसका आज का दिन भी होना चाहिये। दाग़िस्तान के कवि सुलेमान स्ताल्स्की अपनी सूझ बूझ के लिये विख्यात ह। वे उस बात को समझते थे, जो म अब कहना चाहता हू। उन्होंने कहा है—'म न तो लेज़गीन, न दाग़िस्तानी और न काकेशियाई कवि हू। मे सोवियत कवि हू। म इस समूचे विराट देश का स्वामी हू।' तो ऐसा कहा है पके बालोवाले अक्लमन्द सुलेमान ने। मगर तुम एक ही रट लगाये जा रहे हो—मेरा गाव, मेरे पवत, मेरा दाग़िस्तान। ऐसा सोचा जा सकता है कि तुम्हारे लिये दाग़िस्तान से ही सारी दुनिया का आरम्भ और अन्त होता है। मगर क्या क्रेम्लिन से ही दुनिया की शुरुआत नहीं हुई? यही है, जो मुझे किताब के तुम्हारे नाम में महसूस नहीं होता। तुमने सीना तो बना दिया, मगर उसमे धडकता हुआ दिल रखना भूल गये। तुमने आखें तो बना दीं, मगर उनमें भावों की चमक पदा करना भूल गये। ऐसी निर्जीव आंखें अगूरों के समान होती ह।"

मच से ऐसी बढ़िया उपमा देकर यह तीसरा मन्त्री मोटी-मोटी और बडी गम्भीर पुस्तको के उद्धरणोवाला काग़ज़ो का पुलिन्दा बग़ल मे दबाकर बडी शान से अपनी सीट की तरफ चल दिया। साथ ही उसने दूसरों की तरफ ऐसे देखा मानो उसके शब्दों के बाद वे उसी तरह कुछ न कह सकते हों, जसा कि जज के फसले के बाद होता है।

मगर इसी वक्त सभा मे भाग लेनेवाला एक अन्य मन्त्री भागकर मच पर आ खडा हुआ। वह ज़िन्दादिल, खुशमिज़ाज और दूसरों के मुकाबले मे कुछ कम उम्र भी था। उसने अपना भाषण दूसरो की तरह नहीं, बल्कि कविता से आरम्भ किया—

> जब तक कोई बठा है हम जान न पायें
> लगडा है वह, या कि नहीं है वह लगडा,
> जब तक कोई सोता है हम जान न पायें
> अधा है वह या कि नहीं है वह अधा
> जब तक कोई खाता है हम जान न पायें
> बुज़दिल है वह या कि वीर है बहुत बडा
> जब तक कोई चुप रहता हम जान न पायें
> सच्चा है वह या कि झूठ उसका धधा।

"तो म यह कहना चाहता हू," उसने अपनी बात जारी रखते हुए कहा, "निश्चय ही जब कोई विचार हो, तो अच्छा रहता है, विशेषकर ऐसा विचार, जिसका मुझसे पहलेवाले वक्ता ने उल्लेख किया है। मगर कुछ ज्यादा विचारोंवाले साथी भी तो होते ह। ऐसे लोगो से तो केवल विचार को ही हानि पहुचती है। म इत्तला गाव के एक ऐसे ही मिखाईल की याद दिलाना चाहता हू "

सभा मे चूकि हर वक्ता के लिए समय निर्धारित नहीं किया गया था, इसलिये भाषणकर्त्ता ने प्रसगवश हमे अपने मिखाईल का क़िस्सा भी सुना दिया।

खुजह हलका पार्टी कमिटी मे मिखाईल ग्रिगोरियेविच हुसनोव साईस का काम करता था। दरअसल, वह मिखाईल नहीं, मुहम्मद था। गह युद्ध के दिनों मे किसी दूसरी जगह रहा और अपने जन्म-स्थान पर मुहम्मद नहीं, बल्कि मीशा बनकर लौटा। मतलब यह कि उसने अपना दाग़िस्तानी नाम बदल लिया। उसके बूढ़े बाप ने तब इस नवजात मीशा से कहा—

"तुम्हारी मा तुम्हारा मातम मनाये! बेशक मने तुम्हें मुहम्मद नाम दिया था, फिर भी यह तुम्हारा नाम है और तुम उसके साथ जसा भी चाहो, बर्ताव करने का हक़ रखते हो। मगर मेरे साथ ऐसा बर्ताव करने की इजाजत तुम्हें किसने दी? हसन को ग्रिगोरी मे बदलने का हक़ तुम्हें किसने दिया? म तुम्हारा बाप हू, अभी जिन्दा हू! और म हसन ही रहना चाहता हू!"

गृह युद्ध मे भाग लेनेवाला अटल रहा। वह मिखाईल ग्रिगोरियेविच ही बना रहा और इसी उपाधि के साथ खुजह हलका पार्टी कमिटी मे साईसी करता रहा।

उसकी समझ-बूझ के घोडे बहुत कम और कमजोर थे, मगर वह अपने को अत्यधिक विचारवान व्यक्ति मानता था और सभी जगह इसकी चर्चा करता था। बहुत-से लोग उसे विचारो का सबसे उत्साहशील सघर्षकर्त्ता भी मानने लगे।

एक बार हमारे उस्ताद हाजी की इसलिये मलामत की गयी कि उसके दूर के रिश्ते का एक भाई शायद कोई शाहजादा था। उस्ताद हाजी ने अपने पार्टी फाम मे यह नहीं लिखा था।

पार्टी की इस मलामत की वजह से भारी मन लिये हाजी धीरे धीरे अपने बातलाहीच गांव जा रहा था। रास्ते में हलका पार्टी कमिटी का साईस मिखाईल ग्रिगोरियेविच उससे आ मिला। हाजी ने उससे अपनी मुसीबत का जिक्र किया।

"मलामत तो बहुत कम है तुम्हारे लिये! पार्टी से निकाल दिया जाना चाहिये था। तुम कैसे पार्टीवाले हो, कैसे कम्युनिस्ट हो?! असली कम्युनिस्ट को तो जहां जरूरी था, खुद ही सब कुछ लिख देना चाहिये था बेशक वह दूर के रिश्ते का ही नहीं, सगा भाई, सगी बहन या सगा बाप ही क्यों न होता "

उस्ताद ने नजर ऊपर उठाई, मिखाईल ग्रिगोरियेविच की तरफ देखा और कहा—

"सही तौर पर ही तुम्हें अत्यधिक विचारवान् माना जाता है। हैरानी होती है कि कैसे तुमने दागिस्तान के सभी पर्वतों को अब तक समतल नहीं कर दिया। सीधे खड़े पर्वतों की तुलना में समतल स्थान अधिक 'विचारपूर्ण' और सुगम सरल होते हैं। पर खैर तुम जैसों से बात करना बेकार है।"

यद्यपि दोनों को एक ही गांव जाना था, तथापि हाजी सड़क छोड़कर पासवाली पगडंडी पर हो लिया।

"कहां चल दिये तुम?" मिखाईल ग्रिगोरियेविच को आश्चर्य हुआ।

'तुम्हें इससे क्या मतलब है—हमारा रास्ता एक नहीं है।"

'मगर मैं तो कम्युनिज्म की तरफ जा रहा हूं। अगर तुम इसकी उल्टी दिशा में जाना चाहते हो, तो "

"कम्युनिज्म की तरफ भी मैं तुम्हारे साथ नहीं जाना चाहता। देखेंगे कि हममें से कौन वहां जल्दी पहुंचता है।"

यह किस्सा खत्म करके वक्ता ने अपनी बात जारी रखते हुए कहा—
'एक कवि ने चरवाहे के बारे में ऐसी कविता लिखी है—

ना पहाड़ों में कुहासा छट गया है
रास्ता है साफ अब उज्ज्वल
कम्युनिज्म में रे गडरिये
तू सभी भेड़ें लिये चल।

या फिर विचारों के ऐसे ही एक दूसरे दीवाने ने हलक़ा पार्टी कमिटी को यह अर्जी लिख भेजी – "मेरे सारे प्रयासों, यहां तक कि शारीरिक ज़ोर-ज़बरदस्ती के बावजूद मेरी पत्नी पर्याप्त लगन के साथ 'कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) का सक्षिप्त इतिहास' नहीं पढ़ती। वचारिक शिक्षा मे सहायता देने के उद्देश्य से म हलका कमिटी से अपनी पत्नी पर प्रभाव डालने का अनुरोध करता हू।"

या फिर दाग़िस्तान के लेखक-सघ के दरवाज़े पर एक बार यह भयानक घोषणा दिखाई दी – "गहरी सद्धान्तिक तयारी के बिना तुम्हें इस दरवाज़े को लाघने का अधिकार नहीं है।"

मशहूर बुज़ुर्ग शायर अबूतालिब गफ़ूरोव किसी काम से लेखक-सघ जा रहे थे, मगर यह चेतावनी पढ़कर लौट गये।

या फिर बहुजातीय नगर, मख़चकला मे ईसाइयो, मुसलमानों और यहूदियो के अलग अलग क़ब्रिस्तान ह। जनतत्र के सक्रिय कायकर्ताओ की बठक मे एक अत्यधिक विचारवान् साथी ने अपने भाषण मे यह कहा –

"हम जातियों के बीच मत्री सुदृढ़ करने के लिये हर दिन अथक सघर्ष कर रहे ह। मगर फिर भी हमारे यहा कितने ही अलग अलग कब्रिस्तान ह। अब एक साझा क़ब्रिस्तान बनाने का वक्त आ गया है। उसके नाम के बारे मे भी सोचा जा सकता है। मिसाल के तौर पर 'एक ही परिवार के बच्चे' यानी कुछ ऐसा ही उदाहरण के लिये, मेरे मां-बाप भगवान को मानते थे, उसकी पूजा करते थे। भला म, जो १९३७ से पार्टी का सदस्य हू, एक ही कब्रिस्तान मे उनके साथ कसे लेट सकता हू। नहीं, बहुत पहले से ही हमारे शहर मे अधिक ऊचे वचारिक स्तर पर कब्रिस्तान बनाया जाना चाहिये था।"

कहते ह कि कुछ ही समय पहले यह बेचारा चल बसा और नया क़ब्रिस्तान नहीं देख पाया।

"इसीलिये म यह कहता हू," आवाज़ ऊची करते हुए मत्री ने अपनी बात जारी रखी, "किताब का नाम – यह तो जसे टोपी है। अधिक महत्त्वपूण क्या है, टोपी या सिर? म आपको यह क़िस्सा सुनाता हू कि तीन शिकारियों ने कसे एक भेड़िये का शिकार करना चाहा।

शिकारी का सिर था या नहीं ? तीन शिकारियो को यह पता चला कि गाव से थोडी ही दूर दर्रे मे एक भेडिया छिपा हुआ है। उन्होंने उसे खोजने और मार डालने का फसला किया। कसे उन्होंने उसका शिकार किया, लोग अलग अलग ढग से यह बात सुनाते ह। मुझे तो बचपन से यह क़िस्सा इस तरह याद है।

शिकारियो से बचने के लिये भेडिया गुफा मे जा छिपा। उसमे जाने का एक ही, और वह भी बहुत तग रास्ता था – सिर तो उसमे जा सकता था, मगर कधे नहीं। शिकारी पत्थरो के पीछे छिप गये, अपनी बदूक उन्होंने गुफा के मुह की तरफ तान लीं और भेडिये के बाहर आने का इतज़ार करने लगे। मगर लगता है कि भेडिया भी कुछ मूख नहीं था। वह आराम से वहा बठा रहा। मतलब यह कि हार उसकी होगी, जो बठे बठे और इतज़ार करते-करते पहले ऊब जायेगा।

एक शिकारी ऊब गया। उसने किसी न किसी तरह गुफा में घुसने और वहा से भेडिये को निकालने का फसला किया। गुफा के मुह के पास जाकर उसने उसमे अपना सिर घुसेड दिया। बाक़ी दो शिकारी देर तक अपने साथी की तरफ देखते और हैरान होते रहे कि वह आगे रेंगने या फिर सिर बाहर निकालने की ही कोशिश क्यो नहीं करता। आखिर वे भी इतज़ार करते-करते तग आ गये। उन्होंने शिकारी को हिलाया डुलाया और तब उन्हें इस बात का यकीन हो गया कि उसका सिर नहीं है।

अब वे यह सोचने लगे – गुफा मे घुसने के पहले उसका सिर था या नहीं ? एक ने कहा कि शायद था, तो दूसरा बोला कि शायद नहीं था।

सिर के बिना धड को वे गाव मे लाये, लोगो को घटना सुनायी। एक बुज़ुग ने कहा – इस बात को ध्यान मे रखते हुए कि शिकारी भेडिये के पास गुफा मे घुसा, वह एक ज़माने से ही, यहा तक कि पदाइश से ही सिर के बिना था। बात को साफ करने के लिये वे उसकी विधवा हो गयी बीवी के पास गये।

"म क्या जानू कि मेरे पति का सिर था या नहीं ? सिफ इतना ही याद है कि हर साल वह अपने लिये नयी टोपी का आडर देता था।"

विचार तो शब्दों मे नहीं, काम मे होना चाहिये। वह स्वय पुस्तक म होना चाहिये, न कि मुखावरण से चिल्लाये। वह शब्द, जो भाषण के अन्त मे कहा जा सकता है, उसे शुरू मे ही कहने की ज़रूरत नहीं होती।

नवजात शिशु की छाती पर अक्सर गडा-तावीज लटका दिया जाता है ताकि उसकी जिन्दगी आराम चैन से कटे, वह बीमार न हो, उसे दुख मुसीबतो का सामना न करना पडे। हम इस बहस मे नहीं पडेंगे कि गडे तावीज से कोई फायदा होता है या नहीं, मगर इतना सभी जानते है कि उसे कमीज के नीचे पहना जाता है, उसकी बाहर नुमाइश नहीं की जाती।

हर किताब मे ऐसा ही गडा-तावीज होना चाहिये, जिसका लेखक को पता हो, जिसके बारे मे पाठक अनुमान लगाये, मगर जो कमीज के नीचे छिपा हो।

या फिर जब उर्बेच बनाया जाता है, तो उसमे थोडा-सा शहद मिला दिया जाता। शहद मीठा और सुगन्धित पेय मे बदल जाता है, मगर उसे न तो देखा और न छुआ ही जा सकता है।

या फिर बम्बई मे एक ऐसा बाग़ है, जो हमेशा हरा भरा रहता है। इद गिर्द खुश्की और बेहद गर्मी के बावजूद वह न तो कभी मुरझाता है और न सूखता है। मामला यह है कि बाग़ के नीचे किसी को भी नजर न आनेवाली झील है, जो वृक्षों को ठण्डी, प्राणदायी नमी प्रदान करती है।

विचार वह पानी नहीं है, जो शोर मचाता हुआ पत्थरो पर दौड लगाता है, छींटे उडाता है, बल्कि वह पानी है, जो अदृश्य रूप से मिट्टी को नम करता है और पेड-पौधों की जडो को सींचता है।

"इसका क्या मतलब निकलता है!" उछलकर खडे होते और मेज पीटते हुए उस मन्त्री ने चिल्लाकर कहा, जो किताबों और उदाहरणो से घिरा हुआ था। "इसका मतलब यह निकलता है कि टोपी को सफेद पगडी, लाल फीते या पांच नोकोवाले सितारे-किस चीज से सजाया जाता है, इससे कोई फक नहीं पडता? इसका तो यह मतलब निकलता है कि आदमी छाती पर लाल तमगा लगाता है या काली सलीब, इससे कोई फर्क नहीं पडता? आपके मुताबिक तो सिर्फ नेक दिल का होना ही काफी है। तानूस्सी गांव के हसन को तरह एक आदमी को एक साथ ग़ोनोह मे अध्यापक, गीनबचूतल मे युवा कम्युनिस्ट सघ का सेक्रेटरी और खूजह मे मुल्ला नहीं होना चाहिये। किताब पर भी यही बात लागू होती है। नहीं, नहीं, हरगिज नहीं! विचार-यह तो झडा है और उसे नजर से नहीं छिपाना चाहिये। उसे ऊचा उठाकर ऐसे ले जाना चाहिये कि सभी लोग देखें और उसके पीछे चलें।"

"ग्रहा! जो तुम्हारे शब्दों का विरोध करे, उसकी बीवी उसे दगा दे," अपेक्षाकृत युवा मन्त्री ने फिर से कहना शुरू किया, "मगर तुम ऐसे करना चाहते हो कि शब्द अलग हो और उसे देखनेवाले लोग अलग हों। मतलब यह कि विचार लोगों की आत्माओं और हृदयों से अलग जियें। तुम उन्हें दो अलग-अलग घोड़ागाड़ियों में बठाते हो। मगर बाद में ये घोड़ागाड़ियां अगर अचानक अलग-अलग दिशा में चल दीं, तो? तुम कहते हो कि आदमी को न तो अवार, न दागिस्तानी, बल्कि सिर्फ सोवियत होना चाहिये। मगर मिसाल के लिये, म अपने को अवार, दागिस्तान का बेटा, और साथ ही सोवियत संघ का नागरिक अनुभव करता हू। क्या ये भावनायें एक दूसरी का विरोध करती ह?"

जसा कि सभी जानते ह, क्रेम्लिन से दुनिया शुरू होती है। म भी इससे सहमत हू। मगर मेरे लिये इसके अलावा दुनिया का आरम्भ मेरे चूल्हे, मेरे पहाड़ी घर की दहलीज, मेरे गाव से भी होता है। क्रेम्लिन और गाव, कम्युनिज्म के विचार और मातृभूमि की भावना–पक्षी के दो पख ह, मेरे पन्दूर के दो तार ह।

"तो फिर एक टाग पर भचककर चलने की क्या जरूरत है? तब किताब का दूसरा नाम भी सोचना चाहिये ताकि वह उसका आन्तरिक सार अभिव्यक्त करे।"

मने उसे हर जगह तलाश किया। भारत की यात्रा करते हुए म दागिस्तान के बारे मे सोचता रहा। उस देश की पुरातन सस्कृति, उसके दशन मे मुझे किसी रहस्यपूर्ण कण्ठ की ध्वनियां सुनाई दीं। मगर मेरे लिये मेरे दागिस्तान की ध्वनि सवथा वास्तविक है और वह तो पथ्वी पर बहुत दूर तक भी सुनाई देती है। कभी वह वक्त भी था, जब वीरान दर्रे और नगी चट्टानें ही 'दागिस्तान" शब्द को प्रतिध्वनित करती थीं। अब वह सारे देश, सारी दुनिया मे गूजता है और करोड़ो दिलो मे उसकी प्रतिध्वनि होती है।

नेपाल के बौद्धमठो मे, जहा बाईस स्वास्थ्यप्रद धारायें बहती ह, मने दागिस्तान के बारे में सोचा। मगर नेपाल अभी तराशा हुआ हीरा नहीं है और म अपने दागिस्तान से उसकी तुलना नहीं कर सकता था, क्योंकि दागिस्तान का हीरा तो कई शीशे काट चुका है।

अफ्रीका मे भी मने दाग़िस्तान के बारे में सोचा। तब मुझे ऐसे ख़ंजर की याद आई, जो म्यान से केवल एक चौथाई बाहर निकाला गया हो। दूसरे देशों—कनाडा, इंगलैंड, स्पेन, मिस्र, जापान मे भी म दाग़िस्तान के बारे मे सोचता रहा—उनके साथ दाग़िस्तान की समानता या भिन्नता खोजता रहा।

युगोस्लाविया की यात्रा करते हुए एक बार म एड्रियाटिक सागर के तटवर्ती, अदभुत दुब्रोव्निक नगर मे जा पहुचा। इस नगर मे घर और सड़क दरों और चट्टानों, अनेक उभारों और समतल स्थानों से मिलते जुलते हैं। घर के दरवाज़े कभी-कभी तो चट्टान को तोड़कर बनाये गये गुफा द्वार जसे लगते ह। मगर मध्य युगीन और उनसे भी अधिक प्राचीन घरों की बग़ल में ही आधुनिक मकान भी बन रहे ह।

हमारे दरबन्द शहर की भांति सारे नगर के गिर्द एक दीवार है। इसी दीवार पर म तंग, खड़े रास्तों और पथरीली सीढ़ियों से चढ़ा। सारी दीवार के साथ-साथ समान फ़ासले पर पथरीली मीनारें खड़ी ह। हर मीनार मे दो कठोर आंखों की तरह दो सूराख ह। ये मीनारें बड़ी लगन और वफ़ादारी से ख़िदमत करनेवाले किसी इमाम क मुरीदों क समान लगती ह।

दीवार पर रेंगते हुए म मीनारों के भीतर बने सूराखों मे से झांकना चाहता था। मने फ़ौरन ऐसा किया होता, मगर वहां यात्रियों की भीड़ लगी थी और म सूराखों के क़रीब न जा सका। दूर से सूराखों के बीच से मुझे आसमानी रग के छोटे छोटे टुकड़ों की ही झलक मिली। ये टुकड़े सूराखों जितने और सूराख हथेली के बराबर थे।

आख़िर जब मने नज़दीक जाकर सूराख के साथ अपना चेहरा सटाया, तो जनवरी महीने की धूप मे हहराता हुआ विराट सागर देखकर दंग रह गया। वह बड़ा प्यारा-सा था, क्योंकि एड्रियाटिक सागर फिर भी दक्षिणी सागर है, और साथ ही वह बड़ा बेचैन था, क्योंकि आख़िर तो जनवरी का महीना था। सागर आसमानी नहीं, रंग बिरंगा था। वह अपनी लहरों को तटवर्ती चट्टानों पर फेंकता था, वे तोप का सा धमाका करती हुई चट्टानों से टकरातीं और वापिस लौट जातीं। सागर में जहाज़ तर रहे थे और उनमे से प्रत्येक हमारे गाव के बराबर था।

म अभी भी यात्रियों के पीछे खड़ा था और विराट ससार पर नज़र डाल लेने के लिये पंजों पर उचका हुआ था। आख़िर खिड़की के पास जाकर

इस पुस्तक का रूप और इसे कैसे लिखा जाये

पड़ा रहेगा [illegible] [illegible] में जो [illegible]
जग उस मग जायगा,
[illegible] रहेगा [illegible] [illegible]
[illegible] सा [illegible] सुनायगा।

[illegible]

गाव के छोर पर युवा पहाड़िन ने खिड़की मे जलता हुआ लम्प रख दिया। इस तरह उसने मुझसे यह कहा–

"इस खिड़की, इस रोशनी को नहीं भूलना। जब तक तुम लौटोगे नहीं, यह लम्प जलता रहेगा। दूर के रास्ते में, कठिन और बुरे मौसम मे रातो और सालों के दौरान यह तुम्हें रोशनी देगा। लम्बे सफ़र से थक-हारकर जब तुम अपने गांव के क़रीब पहुचोगे, तो यही सब से पहले तुम्हें अपनी चमक दिखायेगा। इस खिड़की और इस रोशनी को याद रखना।"

अपने प्यारे गाव को एक बार फिर से देखने के लिये म मुड़ता हू। घर की छत पर मुझे मां दिखाई देती है। वह सीधी और एकाकी खड़ी है। वह अधिकाधिक छोटी होती जाती है–चपटी छत की आड़ी रेखाओ मे सीधा बिंदु-सा लग रही है। आखिर, अगले मोड़ के बाद पहाड़ मेरे गाव के सामने आ जाता है और मुड़कर देखने पर पहाड़ के सिवा मुझे और कुछ भी दिखाई नहीं देता है।

सामने भी मुझे पहाड़ ही दिखाई दे रहा है। मगर मुझे मालूम है कि उसके पीछे बहुत बड़ी दुनिया है। दूसरे गाव ह, बड़े नगर ह, महासागर ह, रेलवे स्टेशन, हवाई अड्डे ह और किताबें ह।

दाग़िस्तान की प्यारी धरती के रास्ते पर घोड़े के नाल बज रहे ह। सिर के ऊपर पहाड़ो की चोटियो से पथराया हुआ सा आकाश है। कभी वह धूप से चमक उठता है, कभी उस पर सितारे जगमगा उठते ह, कभी वह बादलो से ढक जाता है और कभी पृथ्वी को बारिश से धो देता है।

रुक जाओ, ऐ घोडे मेरे, रुक जाओ
नही अभी मने मुडकर, पीछे देखा,
प्यारा-प्यारा गाव हमारा रहा वहा
धुधली पडती जाती अब जिसकी रेखा।

सरपट उडते जाओ तुम घोडे मेरे
क्यो हम देखें मुड मुडकर?
भाई, दोस्त मिलेंगे हमको वही सभी
हम जा निकल, जहा, जिधर।

किधर जा रहा हू म? कसे म अपना सही रास्ता चुनू? कसे नयी किताब लिखू?

नोटबुक से। अब दागिस्तान मे युवाजन हमारी राष्ट्रीय पोशाकें नहीं पहनते। वे मास्को, त्बिलिसी, ताशकन्द, दुशबे और मिन्स्क वासियों की तरह पतलून, कोट, बुशट और कमीज के साथ टाई पहनते ह।

गानों-नाचो की कलाकार मण्डलियां ही अब राष्ट्रीय पोशाके पहनती ह। हा, शादी के मौके पर किसी को पुरानी पोशाक पहने देखा जा सकता है। अगर कभी कोई दागिस्तानी ढग के कपडे पहनना चाहता है, तो दोस्तो, जान-पहचान के लोगो से या किराये पर कपडे लेता है। अपनी दागिस्तानी पोशाक तो उसके पास होती नहीं। थोडे मे, अगर यह न कहा जाये कि राष्ट्रीय पोशाक गायब हो गयी है, तो यह कहा जा सकता है कि गायब हो रही है।

मगर बात यह है कि कुछ कवियो की कविताओं का राष्टीय रूप भी गायब होता जा रहा है और वे उस पर गव भी करते ह।

म भी यूरोपीय सूट पहनता हू, म भी पिता जी का चेर्केसी कोट नहीं पहनता। मगर अपनी कविताओ को आकृतिहीन सूट नहीं पहनाना चाहता। म चाहता हू कि मेरी कविताओ का हमारा, दागिस्तानी रूप ही हो।

म भला क्या हू! कुछ ही दशाब्दियो का जीवन मिला है मुझ। ये दशाब्दिया ऐसे वक्त मे आ गयीं, जब सभी लोग पतलून, बूट और कोट पहने घूमते ह। कविताओ का अपना जीवन होता है। उनकी जन्म-मरण की अपनी अवधिया होती ह। अपनी कविताओं के बारे मे म कुछ नहीं कह रहा हू। मुमकिन है कि वे मेरे बाद जिन्दा न रहे।

मास्को मे मने बलूत का एक पुराना पेड देखा। कहते ह कि रौं इवान ने उसे रोपा था। इसका मतलब यह है कि जब तक वह बडा होता रहा, शुरू मे लोग बोयारो की पोशाको, इसके बाद वास्कटें और पाउडर लगे विग, फिर ऊचे टोप और काले फ्राककोट, इसके पश्चात बुद्योन्नी टोपिया तथा चमडे की जाकटें, फिर साधारण कोट और चौडी मोहरीवाले पतलून और इसके बाद तग पतलून पहनते रहे और बलूत मानो लोगो से यह कहता रहा कि अगर आपके करने को और कुछ नहीं, तो वहा नीचे भागकर जाइये, अपने कपडे बदल आइये। मेरे जिम्मे तो अपना काम है—सूरज की किरणो को सोखना और उन्हें मजबूत, बजती हुई लकडी और उन बीजा मे बदलना, जिनसे ऐसे ही जानदार वक्ष जन्म लेते ह।

पहाड़ों में कहा जाता है कि पोशाक से आदमी का पता चलता है और घोड़े से सूरमा का। यह कहावत सुनने में तो बढ़िया लगती है, मगर मुझे अनुचित-सी प्रतीत होती है। चीते की खाल पहने हुए आदमी का बहादुर होना लाजिमी नहीं। कभी-कभी इस्पाती कवच के नीचे भी बुजदिल का दिल हो सकता है।

कारण कि अनेक बार सुन्दरता की वजह से मेरे द्वारा चुने हुए तरबूज के सफेद और फीका निकल आने पर मुझे गुद्दी खुजलानी पड़ी है।

कारण कि एक बार कोई ऊनसूकूलवासी अपनी प्रेमिका को नमदे के लबादे में लपेटकर उड़ा ले गया, मगर जब लबादा उतारा, तो प्रेमिका की जगह पोपले मुंहवाली उसकी नानी सामने दिखाई दी।

कारण कि अबूतालिब ने मुझे सुनाया कि कैसे एक बार उन्हें दूर के गांव में शादी पर बुलाया गया और वहां वे जुरना बजाते रहे। शादी धूम धड़ाके से होती रही। गांव के सामनेवाले मैदान में तीन दिन तक जुरना झनझनाता रहा, ढोल ढमकता रहा, वायलिन दर्दीली तानें सुनाती रही, हार्मोनियम बजता रहा और गीत गूंजते रहे। जैसा कि दागिस्तान में कहा जाता है, "ढम-ढम भी थी और छम छम भी", यानी सुनने को भी कुछ था और खाने-पीने को भी। सारा गांव शादी में आया और बच्चे से बूढ़े तक हर कोई थोड़ा-बहुत नाचा भी।

शादी के तीसरे दिन चौधरी के कहने पर एलान करनेवाले ने ऊंची आवाज में यह घोषणा की कि अब दूल्हा और दुलहन नाचने के लिये मैदान में निकलेंगे। तीन दिनों के दौरान दूल्हे को तो सभी ने देखा था, मगर दुलहन सारा वक्त दुपट्टा ओढ़े बैठी रही थी। तीन दिन तक अबूतालिब उसकी बढ़िया पोशाकों को देखता रहा था। उसकी भड़कीली पोशाकें शायद काकेशियाई कविता-संग्रह के रंग बिरंगे मुखावरण की याद दिलाती रही थीं।

दुलहन जब उठी और नाच के घेरे में आई, तो उसके शरीर की काठी से अबूतालिब कुछ चौंके। मोटापे की दृष्टि से तो राजकीय साहित्य प्रकाशनगृह द्वारा प्रकाशित किर्गीज़ महाकाव्य 'मानास' भी उसका क्या मुकाबला कर सकता था। दुलहन चेहरे से पर्दा हटाने को तैयार हुई। सभी बुत-से बन गये और अबूतालिब ने भी अपनी सांस रोक ली। लीजिये,

दुलहन ने दुपट्टा हटाया यानी वह क्षण आया, जिसका तीन दिन से इन्तजार हो रहा था

दुलहन की एक आंख पूजह को देख रही थी, तो दूसरी बोतमीज को। गुस्से से एक-दूसरी से रूठी हुई आंखों के बीच बहुत लम्बी और मद्दी-सी नाक टिकी हुई थी।

मखूतालिब का दिल उदास हो गया। इसके बाद वे न तो जुरता बजा पाये और न ही उनका कुछ खाने को मन हुआ। उन्हें शादी के जश्न से जाना पड़ा।

मेरे ख्याल मे मखूतालिब ने कुछ बढ़ा चढ़ाकर यह किस्सा सुनाया था। फिर भी अच्छी सज्जा बुरी किताब को नहीं बचा सकती। उसका सही मूल्यांकन करने के लिये उस पर से पर्दा हटाना जरूरी है।

कारण कि एक ऐसा भी साल था, जब पहाड़ी नारियो की स्थिति और उनके साथ पुरुषों के व्यवहार का सवाल उचित ऊंचे स्तर पर और "उग्रतम रूप" मे उठाया गया था।

उस साल पति अपनी पत्नी को एक भी भला-बुरा शब्द कहने की जुरत नहीं कर सकता था। मामूली घरेलू झगड़े पर भी पति को पार्टी हलका कमिटी मे बुलाकर डांट पिलाई जाती थी। इसलिये कि किसी तरह का शिकवा शिकायत न हो, सबसे पहले तो हलका पार्टी कमिटी के सभी कर्मचारियो की एक एक करके मलामत की गयी। उसी साल पहाड़ी औरतों की अक्सर कांग्रेसे हुई, जिनमे मनमाने ढंग से इतने शब्द कहे गये, जितने बाद की सारी कांग्रेसों मे नहीं कहे गये होंगे।

उसी साल इतवारों को एक लम्बी चौड़ी औरत बाजारो मे गैर-कानूनी माल बेचने के लिये आने लगी। मिलीशियामन उसे टोकते हुए डरता था कि कहीं स्वतंत्र और समानाधिकारी पहाड़ी औरत के साथ कोई ज्यादती न हो जाये। मगर फिर भी तीसरे इतवार को उसने सहमते-सहमते इस पहाड़ी औरत को चेतावनी दे दी और पांचवें इतवार को – जो भी होना हो, सो हो! – उसे हिरासत मे लेकर थाने ले जाने का फैसला किया।

मिलीशियामन जब तक उसे सड़क पर से अपने साथ ले जाता रहा, सभी तरफ से उस पर उंगलियां उठती रहीं और लोग हैरान होते रहे कि स्वतंत्र और दासता मुक्त हुई पहाड़ी नारी को हिरासत मे लेने की उसे हिम्मत ही कैसे हुई!

वहां, बाजार के भीड़ भड़क्के मे इस माल बेचनेवाली औरत को अच्छी तरह देख पाना मुश्किल था, मगर अब कई चीजें, जैसे कि स्कट के नीचे से झाकते हुए बहुत ही बड़े-बड़े जूते मिर्लीशियामन का ध्यान आकर्षित करने लगे।

"हां, यहा जरूर दाल मे कुछ काला है।" मिर्लीशियामन ने सोचा और औरत के मुह पर से दुपट्टा हटा दिया। हैरानी से उभरी-उभरी आखों और चट्टान पर उगी कटीली झाड़ी जसी मूछोवाले जवान मद का चेहरा मिर्लीशियामन के सामने था।

कुछ कलाकार भी, जिनमे प्रतिभा, सब्र और आत्मसम्मान की कमी होती है, अपना माल बेचने के लिये पराये कपड़े पहन लेते ह, बाहरी रूप की चमक-दमक से विचारो की दुबलता को छिपाते ह। मगर यदि पेट मे चूहे कूद रहे हों, तो काकपा से फर की टोपी ओढ़ने मे क्या तुक है?

ऐसे ही लकड़ी का बना हुआ खजर चाहे कितना ही सुदर क्यों न हो, उससे तो चूजे को भी नहीं काटा जा सकता। वह तो सिफ इसी लायक है कि बारिश की धार को काट ले।

ऐसे ही गुड़ियों की शादी करने से बच्चे पदा नहीं होते। ऐसे ही जब लड़के की सुन्नत करनी होती है, तो उसे हस का पख दिखाया जाता है। मगर ऐसा तो सिफ धोखा देने के लिये किया जाता है। हस के पख से सुन्नत नहीं हो सकती, इसके लिये तेज चाकू की जरूरत होती है।

मगर पाठक बच्चे नहीं ह कि उनकी आखों मे धूल झोंकी जाये और म अभिनेता नहीं हू कि म्यान मे, चाहे वह असली और सोने का मुलम्मा चढ़ी हो, दफ्ती का खजर डाले फिरू।

बेशक यह सही है कि म्यानों की भी जरूरत होती है—उनके बिना खजरों को जग लग जाता है। म्यान अगर सुदर हों, तो अच्छा ही है,

बेशक यह सही है कि जब कोई सूरमा धावे मे कोई क़ीमती चीज लेकर लौटता है, तो बीवी घोड़े की गदन पर रेशमी रूमाल बाधती है,

बेशक यह सही है कि बहुत ही बढ़िया विचार के लिये बहुत ही प्राणहीन भाषा तो ऐसे ही है, जसे मेमने के लिये भेड़िया,

बेशक यह सही है कि मजबूत से मजबूत छकड़ा ऊबड़ खाबड़ रास्ते मे धचके खा सकता है और पहू मे भी गिर सकता है,

बेशक यह सही है कि गधे का साज घोड़े की पीठ की शोभा नहीं बढ़ा सकता और बढ़िया घोड़े का ज़ीन गधे की पीठ पर शोभा नहीं देता।

यहा म आपको एक बालखारीवासी और उसकी बूढ़ी घोड़ी का क़िस्सा सुनाता हू।

एक बालखारीवासी और उसकी बूढ़ी घोडी का क़िस्सा।

एक बार बालखारीवासी ने अपनी बेचारी बूढ़ी घोडी पर गमले, गागरें सुराहिया और रक़ाबिया लादीं और चल दिया उन्हें गावों मे बेचने।

एक अवार गाव मे उस दिन घुड़दौड़ों का जशन था। जोशीले जवान अपने और भी ज्यादा जोशीले घोडो पर इस गाव की तरफ़ जा रहे थे। जवान भी बढ़िया थे और घोड़े भी। जवान भी सुडौल और सुदर थे और उनके घोड़े और भी ज्यादा सुडौल और सुदर थे। जवानों की आखों में दिलेरी और शोखी की चमक थी और घोडो की आखों मे बेचनी थी।

घुड़सवार एक क़तार मे खड़े होने शुरू हो गये थे कि अचानक शान्त बालखारीवासी अपनी बूढ़ी घोडी पर उसी मदान मे सामने आ गया। बालखारीवासी ऊघता-सा लगता था और उसकी घोडी तो जसे चलते चलते ही सोती जाती थी। जवान लोगो न बालखारीवासी से मज़ाक़ करना शुरू किया।

"आओ, तुम भी हमारे साथ घुड़दौड़ मे शामिल हो जाओ!"

"लाओ, तुम्हारी बूढ़ी घोडी को भी तेज घोडो मे शामिल कर लें।

"भला यह तुम्हारी बूढ़ी घोडी क्यों न हमारे तेज घोडो से होड़ करे?

"हमारे साथ दौड़ाओ इसे, वरना हमारे घोड़ों के नाल कौन समेटगा।'

इन सभी मज़ाकों के जवाब म बालखारीवासी ने अपनी घोडी से चुपचाप मिट्टी के बतन, गागरें-सुराहिया और रकाबिया उतारनी शुरू कीं। बड़े इतमीनान से उसने अपनी चीजो का ढेर लगाया, इतमीनान से घोडी पर सवार हुआ और जवानों के करीब अपनी घोडी ले जाकर खड़ी कर दी।

जवानों के घोड़े अपने सुमो से ज़मीन खोद रहे थे, अगली टागें ऊपर उठाकर पिछली टांगों पर खड़े हो रहे थे, जब कि बालखारीवासी की घोडी सिर झुकाये ऊघ रही थी।

तो घुडदौड शुरू हुई, जोशीले घोडे बवडर की तरह भाग चले। धूल का बादल उडा और इसी बादल मे, उसके सिरे पर बालखारीवासी की घोडी भी भाग चली। घुडदौड का एक चक्कर, दूसरा और फिर तीसरा चक्कर खत्म हुआ। सभी घोडो को थकते हुए देख रहे थे, पहले तो वे पसीने से तर बतर हुए, फिर उन पर झाग उभरा और वह गोलो के रूप मे गम धूल मे गिरने लगे। तेज घोडो की टागें मानो अधिकाधिक बेजान होती जाती थीं, उनकी रफ्तार धीमी पडती जाती थी। जवान अपने घोडो पर चाहे कितने ही चाबुक बरसाते, चाहे जूतो की कितनी ही एडिया मारते, पर किसी भी तरह तो घोडे अधिक तेज नहीं दौडते थे। सिर्फ बालखारीवासी की बूढ़ी घोडी ही पहले की तरह दौडती जाती थी—न तेज, न धीमे। पहले तो वह सबसे पीछेवाले घोडो से आगे निकली, फिर आगेवाले घोडो के बराबर हुई और बाद मे, आखिरी दसवें चक्कर मे, उनसे भी आगे निकल गयी।

इनाम का शानदार रूमाल बालखारीवासी की बूढी घोडी की झुकी हुई गर्दन पर बाधना पडा। बालखारीवासी बडे इतमीनान से अपनी घोडी को मिट्टी के बर्तनों के ढेर के पास ले गया, उन्हें लादा और आगे चल दिया।

घुडदौडो के मुकाबले मे ऐसी घटनायें साहित्य मे कहीं अक्सर होती ह।

नोटबुक से। जो कवितायें आसानी से लिखी गयी थीं, उन्हें पढ़ना कठिन होता है। जो कवितायें मुश्किल से लिखी गयी थीं, उन्हें पढ़ना आसान होता है। कविता का रूप और भाव—ये तो मानो पोशाक और व्यक्ति होते ह। अगर आदमी भला, समझदार और नेक हो, तो वह अपने अनुरूप ही कपडे भी क्यो न पहने। अगर आदमी का चेहरा सुदर हो, तो उसके भाव भी क्यो न सुदर हो।

अक्सर ऐसा होता है कि सुदर नारिया समझदार नहीं होतीं और अगर वे बहुत समझदार होती ह, तो सुदर नहीं होतीं। कला-कृतिया के साथ भी ऐसा ही होता है।

मगर सुदर और समझदार नारिया भी होती ह। वास्तव मे प्रतिभाशाली कवियो की किताबो के बारे मे भी ऐसा ही कहा जा सकता है।

एक मग्रालीवासी ने कहा था—"हमारे गाव की तरफ ग्रानेवाला व्यक्ति जसे ही दर्रे मे दिखाई देता है, वसे ही म यह जान जाता हू कि वह ग्रच्छा या बुरा ग्रादमी है।"

एक कूबाचीवासी ने कहा था—"सोना या चादी खद ग्रपने में कोई महत्त्व नहीं रखते। जरूरत तो इस बात की है कि कारीगर के हाथ सोने के हो।"

साधारण मिट्टी से ही तो
बनें गागरे, ग्रदभुत, सुदर,
जैसे साधारण शब्दो म
कविता चमके निखर, सवर कर।

गागर पर ग्रालेख

पन्द्रह हजार से ग्रधिक दिन म इस दुनिया मे जी चुका हू। बहुत-से रास्ता पर म ग्रा जा चुका हू। हजारो लोगो से मेरी मुलाकात हो चुकी है। जसे बरसात या बफ पिघलने के वक्त बहुत-सी पहाडी धारायें बह चलती ह, वसे ही मेरी ग्रनुभूतिया ग्रसख्य ह। मगर उन्हें कसे सूत्रबद्ध करू ताकि वे किताब का रूप ले सके? उसे लिखना तो वसी ही बात है जसे कि घाटी मे चौडी ग्रौर गहरी धारा बनाना। मगर यह तो ग्राधा ही काम होगा। जरूरत तो इस बात की है कि सभी पहाडी धारायें मिलकर इस बडी धारा मे बहें। कसे म यह करू? जीवन की जानकारी के ग्रलावा ग्रौर क्या जानना जरूरी है? साहित्य की सद्धान्तिक जानकारी? कविता लिखने के बजाय इस बारे मे ज्यादा सोचना ठीक नहीं कि कविता लिखी कसे जाये।

म यह कहना चाहता हू कि ऐसी साहित्यिक शलिया ग्रौर धाराय नहीं ह, जिनसे मुझे प्यार हो। मेरे प्यारे लेखक, चित्रकार ग्रौर कलाकार ह।

नोटबुक से। साहित्य-सस्थान मे एक ग्रवार से परीक्षा के समय यह पूछा गया कि यथाथवाद ग्रौर रोमानवाद मे क्या ग्रन्तर है? ग्रवार ने इस विषय की किताब तो शायद पढ़ी नहीं थी, मगर जवाब देना जरूरी था। उसने सोचा ग्रौर प्रोफसर को यह जवाब दिया—

"जब हम उकाब को उक़ाब कहते ह, तो वह यथायवाद होता है, ग्रौर जब मुर्गे को उक़ाब कहते ह, तो रोमानवाद।"

प्रोफेसर हस पड़े और मेरे अवार बधु को पास कर दिया।

जहा तक मेरा सम्बन्ध है, तो मै तो शुरू से ही घोड़े को घोड़ा, गधे को गधा, मुर्गे को मुर्गा और मद को मद कहने की कोशिश करता हू।

नोटबुक से। सुविख्यात रवीन्द्रनाथ टगोर के एक भाई थे, वे भी लेखक थे। वे भारतीय साहित्य मे बगाली शैली के अनुगामी थे। रवीन्द्रनाथ तो खुद एक शैली, पूरी एक साहित्यिक धारा थे और दोनो भाइयों के बीच यही अन्तर था।

रवीन्द्रनाथ की आत्मा मे अपना एक पक्षी था, जो दूसरे पक्षियो से बिल्कुल भिन्न था और उनके पहले जिसका कभी अस्तित्व नहीं रहा था। उन्होंने कला-क्षेत्र मे उसे स्वतन्त्रता से उडान भरने दी और सभी ने देखा कि यह रवीन्द्रनाथ टगोर का पक्षी है।

यदि चित्रकार अपने पक्षी को मुक्त उडान भरने के लिये छोड देता है और यह दूसरे, अपने जसे पक्षियों के झुण्ड मे घुल मिल जाता है, तो इसका यह मतलब होता है कि वह चित्रकार नहीं है। इसका यह अर्थ निकलता है कि वह अपना, असाधारण और अदभुत पक्षी नहीं, बल्कि मामूली गौरया उडाता है और अब कोई भी उसकी गौरया को दूसरों की, बेशक सुदर हो, फिर भी गौरया ठहरीं, अलग से नहीं पहचान पाता।

खुद आग जलाने के लिये आदमी का अपना चूल्हा होना चाहिये। किसी दूसरे के घोडे पर सवार होनेवाले को देर-सवेर उससे उतरना और उसे उसके मालिक को सौंप देना होगा। पराये विचारों पर जीन नहीं कसिये, अपने लिये अपने विचार खोजिये।

म साहित्य की पदूर और लेखक की उसके तारो से तुलना करने का साहस करता हू। हर तार की अपनी आवाज, अपनी गूज होती है, मगर मिलकर वे मधुर सगीत पदा करते ह।

अवार जाति के पदूर के सिफ दो तार होते ह। मेरे पिता जी के बारे मे कहा जाता था कि अवार साहित्य के पदूर पर उन्होंने एक तार और जोड दिया है।

म अपना भी एक तार जोडना चाहता हू, जिसकी झकार दूसरो से अलग हो। प्राचीन अवार साज का म एक और तार बनना चाहता हू।

म उन शिकारियों जसा नहीं होना चाहता, जो बाजार से हिरन खरीद लेते ह और घर आकर यह कहते ह कि खुद मारकर लाये ह।

या ऐसा भी होता है कि यह अफवाह फैल जाती है कि मानो किसी दर्रे में एक शिकारी ने बहुत बड़े पहाड़ी बकरे को गोली का निशाना बनाया है। सभी शिकारी जल्दी से इसी खुशकिस्मत दर्रे की तरफ भाग खड़े होते हैं। इसी बीच पहला शिकारी किसी दूसरी जगह पर एक बहुत बड़े बारहसिंगे को मार गिराता है। शिकारियों का दल उधर भागता है, जबकि बढ़िया शिकारी किसी तीसरी जगह पर बड़ा-सा चीता मार डालता है तो सवाल पैदा होता है कि असली शिकारी कौन है? वह जो खुद शिकार करता है या वे जो उसके पीछे-पीछे भागते हैं? ऐसों को तो दूसरे के फन्दे से शिकार निकालते हुए भी शर्म नहीं आती।

वे मुझे कुछ दूसरे लेखकों की याद दिलाते हैं। ऐसा करना ता उचित नहीं, जैसा कि मेरे एक परिचित ने किया। कोर्नेई इवानोविच चुकोव्स्की से जान-पहचान होने के बाद वह ऐसे जाहिर करता था मानो अबूतालिब को जानता ही न हो।

सागर तक पहुँच जानेवाली, अपने सामने असीम नीला विस्तार देखने और उस महान नीलिमा में घुल मिल जानेवाली नदियाँ को ऊँचे पहाड़ों में उस चश्मे को नहीं भूल जाना चाहिये, जिससे धरती पर उसका पथ आरम्भ हुआ। उस पथरीले, सकरे, ऊबड़ खाबड़ और टेढ़े मेढ़े रास्ते को भी नहीं भूल जाना चाहिये, जो उसे तय करना पड़ा।

हाँ, मैं पहाड़ी नदिया हूँ। मैं अपने स्रोत, अपने चश्मे, अपने पथरीले पेटे को प्यार करता हूँ। मैं प्यार करता हूँ उन धुँधले दर्रों को, जिनमें से मेरा पानी बहता है, उन चट्टानों को, जिनपर से वह रुपहले जल प्रपातों में गिरता है, उन शान्त समतल स्थानों को, जहाँ वह इर्दगिर्द के पहाड़ों, आकाश और आकाश के सितारों को प्रतिबिम्बित करता हुआ गहराई में जमा होता है। और फिर से पहले धीरे धीरे बहने लगता है और बाद में अपनी गति तेज कर देता है।

मगर मैं यह नहीं कहता हूँ कि मेरे लिये सिर्फ दर्रे ही काफी होंगे। मैं बहता जा रहा हूँ – इसका मतलब है कि मेरे सामने लक्ष्य है। मुझे केवल पूर्वानुभूति ही नहीं होती – मैं सागर के असीम विस्तार को देख रहा हूँ, उसे जानता हूँ।

मैं अकेला ही तो ऐसा नहीं हूँ। यह कहना ज्यादा सही होगा कि चूँकि सारे दागिस्तान का दृष्टिक्षेत्र विस्तृत हो गया है, इसीलिये मेरा भी।

इन सालो और दशाब्दियो के दौरान हमारे कब्रिस्तानों की ही नहीं, जीवन और दुनिया के बारे मे हमारे दृष्टिकोणों की सीमायें भी विस्तत हुई ह।

म अवार कवि हू। मगर अपने दिल मे म केवल अवारिस्तान, केवल दागिस्तान, केवल सारे देश के लिये ही नहीं, बल्कि सारी पृथ्वी के लिये नागरिक के उत्तरदायित्व को अनुभव करता हू। यह बीसवीं सदी है। इसमे सिर्फ ऐसे ही जिया जा सकता है।

मुझे बताया गया। मेरे जन्म के फौरन बाद मेरे पिता जी को नौकरी के सिलसिले मे अस्थायी रूप से हारादारीह गांव मे जाना पडा। पिता जी के घोडे के साथ दो सफरी थले, दो खुरजियां लटकी हुई थीं। एक मे तो हमारा घरेलू सामान था–कपडे लत्ते, बचा-खुचा आटा, दलिया, चर्बी और किताबें। दूसरे थले मे से मेरा सिर बाहर झाक रहा था।

इस सफर के बाद मेरी मा सख्त बीमार हो गयीं। हम जिस गाव मे पहुचे, वहा एक ऐसी ग़रीब और एकाकी औरत मिल गयी, जिसका बच्चा उन्हीं दिनों चल बसा था। वही मुझे अपना दूध पिलाने लगी। यह मेरी धाय, मेरी दूसरी मा बन गयी।

तो इस तरह दुनिया मे दो नारियां ह, जिनका म ऋणी हू। मेरी उम्र चाहे कितनी ही लम्बी क्यो न हो और इन नारियो के लिये चाहे म कुछ भी क्यो न करू, उनके नाम पर कोई भी कारनामा न कर दिखाऊ, उनके ऋण से कभी उऋण नहीं हो पाऊगा। बेटा अपना ऋण कभी नहीं चुका पाता।

इन दो नारियों मे से एक तो मेरी मां है, जिसने मुझे जन्म दिया, सबसे पहले मुझे पालने मे झुलाया, पहली लोरी गायी और दूसरी वह भी मेरी मा है, जिसने मुझे अपनी छाती का दूध पिलाकर मौत के मुह से बचाया, जिसकी बदौलत मुझमे जिन्दगी की गर्मी आयी और म मौत की तग पगडडी से जिन्दगी के बडे रास्ते पर आ गया।

मेरी जनता, मेरे छोटे-से देश, मेरी हर किताब की भी दो मातायें ह।

मेरी पहली मा है–मेरी मातृभूमि दागिस्तान। मेरा यहा जन्म हुआ, यहीं मने पहले पहल अपनी मातृभाषा सुनी, उसे सीखा और यह मेरे जीवन का अभिन्न अग बन गई। यहीं मने पहले पहल अपनी जनता के गीत सुने और खुद पहला गीत गाया। यहीं मने पहले पहल पानी और रोटी को

चखा। नुकीली-तीखी चट्टानों पर चढ़ते हुए बचपन मे कितनी ही बार मुझे चोटें लगीं, मगर मेरी मातृभूमि के पानी और जड़ी-बूटियों ने मेरे सभी घावों को अच्छा कर दिया। पहाड़ी लोगों का कहना है कि ऐसी कोई भी तो बीमारी नहीं है, जिसके इलाज के लिये हमारे यहां पहाड़ी जड़ी-बूटियां न हों।

मेरी दूसरी मां है—महान रूस, मास्को। उसने मुझे शिक्षा-दीक्षा दी, मुझे पख दिये, मुझे बड़े रास्ते पर पहुचाया, असीम क्षितिज दिखाये, सारी दुनिया को मेरे सामने उभारा।

बेटे के रूप मे म दोनो माताओं का ऋणी हू। मेरे पहाड़ी घर की दीवार पर दो क़ालीन चित्र लटके हुए ह। एक चित्र है महमूद का और दूसरा—पुश्किन का। श्लोक के रचना खण्डो मे, जिनसे पीटसबग की दूधिया रातों की ठण्डी सासो की अनुभूति होती है, ऊची अवार चरागाहों के अगारों से दहकते हुए अनेक रगों के फूल रखे ह।

दो मातायें—ये तो जसे दो पख ह, दो हाथ, दो आखें, दो गीत ह। दो माताओ के हाथो ने मेरा सिर सहलाया है और जरूरत होने पर मेरे कान भी खींचे ह। दोनो माताओ ने मेरे पन्दूर पर एक एक तार लगाया है। उन्होंने मुझे जमीन से, मेर गाव से ऊपर उठाया और उनके कधों पर से मने दुनिया मे बहुत कुछ देखा, जिसे अगर वे मुझे ऊपर न उठातीं, तो म कभी न देख पाता। जिस तरह उड़ता हुआ उकाब यह नहीं जानता कि कौन-सा पख उसके लिये अधिक जरूरी और मूल्यवान है, उसी तरह मुझे भी यह मालूम नहीं है कि कौन सी मा मेरे लिये अधिक मूल्यवान है।

पहले पहाड़ी लोग जड़ी-बूटियो और पानी से अपनी सभी बीमारियों का इलाज करते थे। नीम हकीमो पर भी विश्वास था उन्हें। हां, ऐसे नीम हकीम भी थे, जिनकी लोग बाग अभी तक चर्चा करते ह। ये नीम हकीम सिर दद का इलाज करने के लिये काली भेड काटने को मजबूर करते थे।

हर अवार यह जानता है कि भूरी या सफेद भेड की तुलना में काली भेड का मास अधिक रसीला और जायकेदार होता है। नीम हकीम उसी वक्त उतारी गयी भेड की खाल को बीमार के सिर के गिद लपेट देता और उसे ऐसे ही बठने को मजबूर करता। मांस वह अपने साथ ले जाता।

ऐसे नीम हकीमों का तो हम अब ज़िक्र नहीं करेंगे। मगर अच्छे लोक वैद्य और अच्छी देसी दवाइयां भी थीं।

एक बार मेरे पिता जी मास्को के क्रेम्लिन अस्पताल में थे। वहां उन्हें दाग़िस्तान की जड़ी-बूटियों और पानी का ध्यान हो आया और उन्होंने अपने बेटों से बूत्सरा पर्वत के छोटे-से सोते का पानी लाने का अनुरोध किया।

बेटों के लिये पिता के शब्द क़ानून होते हैं। वे दाग़िस्तान पहुंचे, बूत्सरा पर्वत पर चढ़े, वहां सोता ढूंढ़ा और क्रेम्लिन अस्पताल में बीमार पड़े हुए अवार कवि के लिये वहां से पानी लाये।

पिता जी ने पानी पिया और मानो उन्हें कुछ चैन मिला। वे तो स्वस्थ भी हो गये। मगर उन्हें यह मालूम नहीं था कि उसी दिन उन्हें विदेश से लायी गयी किसी दवाई की सुइयां भी लगायी जाने लगी थीं।

सम्भव है कि वे केवल विश्व चिकित्सा विज्ञान द्वारा तैयार की गयी दवाइयों से ही स्वस्थ न होते। सम्भव है कि केवल अवार जल, हमारी जातीय लोक औषधि से ही उन्हें स्वास्थ्य लाभ न होता। किन्तु दोनों दवाइयों से वे सेहतमन्द हो गये।

साहित्य में भी ऐसा ही होना चाहिये। उसके स्रोत हैं—मातृभूमि, अपनी जनता, मातृभाषा। मगर हर सच्चे लेखक की चेतना अपनी जाति की सीमाओं से कहीं अधिक विस्तृत होती है। सारी मानवजाति, समूची दुनिया की समस्यायें उसे बेचैन करती हैं, उसके दिल दिमाग़ में जगह पाती हैं।

चलता राही जब मंजिल को
संग भला वह लेता क्या?
रोटी लेता, मदिरा लेता
इनकी मगर जरूरत क्या?

हम आदर-सत्कार करेंगे
सिर आंखों पर, आनेवाले।
रोटी तुम्हें पहाड़िन देगी
और पहाड़ी मदिरा ढाले।

चलता राही जब मजिल को
सग भला वह लेता क्या?
खजर तेज साथ म लेता
उसकी मगर जरूरत क्या?

यहा पहाडो म स्वागत है
किन्तु अगर कोई दुश्मन,
वही घात म होगा, उसका
हम छलनी कर देंगे तन।

चलता राही जब मजिल को
सग भला वह लेता क्या?
गीत साथ म अपने लेता
उसकी मगर जरूरत क्या?

गीत यहा अदभुत से अद्भुत
उनका कोई नही शुमार,
फिर भी चाहो तो सग ले लो
उसम नही जरा भी भार।

यदि डाक्टर से लेखक की तुलना की जाये, तो उसे सदियो की जानी परखी लोक औषधियो और विश्व विज्ञान की नवीनतम उपलब्धियों का उपयोग करने मे समर्थ होना चाहिये।

यदि पद-यात्री से लेखक की तुलना की जाये, तो किसी दूसरी जाति का मेहमान बनते हुए उसे अपनी धरती के गीतों को हृदय मे सहेजकर ले जाना चाहिये, किन्तु उन गीतो के लिये भी अपने हृदय मे स्थान निकाल लेना चाहिये, जो उसे वहा सुनाये जायेंगे।

उसके अपने लोग उसे विदा करते ह, दूसरे उसका स्वागत करते ह और गीत सभी जातियों के पास होते ह।

हमारे गावों मे जब पहले व्याख्यानदाता और भाषणकर्त्ता आने लगे, तो केवल गाव की नारियां व्याख्यानदाता की ओर पीठ करके बठती थीं ताकि वह उनके चेहरे न देख सके। मगर व्याख्यान के बाद जब गायक सामने आता और गाने लगता, तो नारियां गाने का आदर करते हुए पूर्वाग्रहों को

ताक पर रखकर गायक की तरफ मुह कर लेतीं। इतना ही नहीं, वे तो मुह से पर्दा भी हटा लेतीं।

कोई ऐसा दिन, कोई ऐसा मिनट भी नहीं होता, जब मेरी आत्मा मे उस गीत का स्पन्दन न हो, उस गीत की गूज सुनाई न दे, जो मेरी मा ने मेरे पालने पर झुककर गाया था। यही गीत, मेरे सभी गीतो का पालना है। यह वह तकिया है, जिसपर म अपना थका हुआ सिर टिकाता हू, वह घोडा है, जो मुझे सभी जगह लिये घूमता है। यह वह चश्मा है, जो मेरी प्यास बुझाता है, वह चूल्हा है, जो मुझे गर्माता है और इसी की गर्मी म जीवन मे अपने साथ लिये घूमता हू।

पर साथ ही म शूकूम जसा नहीं बनना चाहता, जो बडा और तगडा बालक हो जाने पर भी मा का दूध पिये बिना नहीं रह सकता था और इसलिये उसकी छाती की ओर लपकता था। ऐसो के बारे मे कहा जाता है— "जिस्म साड का, दिमाग बछडे का।"

आजकल हम तरह-तरह की प्रश्नावलियो के उत्तर लिखने के आदी हो चुके ह। अपने जीवन मे न जाने कितने ऐसे प्रश्नपत्र भर चुका हू म! एक भी प्रश्नपत्र मे मने मातृभूमि के प्रति प्यार का प्रश्न नहीं देखा। मगर इसका यह मतलब हरगिज नहीं है कि ऐसा प्यार दुनिया के लोगो मे है ही नहीं।

दूसरी तरफ, प्रश्नपत्र मे केवल "सोवियत सघ का नागरिक" लिख देना ही काफी नहीं है, व्यक्ति को वास्तव मे वसा होना भी चाहिये। "सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी का सदस्य" लिख देना ही पर्याप्त नहीं है, सही अथ मे वसा बनना भी चाहिये। "मातृभाषा—अवार" लिख देना ही काफी नहीं, वास्तव मे ही यह मातृभाषा होनी चाहिये, इसके प्रति वफादार रहने का साहस होना चाहिये।

जगह जगह के मेहमानो, मेरे यहा आइये, मेरे पास तरह-तरह के गीत लाइये! भाइयो-बहनों की तरह आइये, म सभी का स्वागत करूगा, सभी को अपने दिल से जगह दे सकूगा!

अगर कोई पहाडी आदमी किसो दूसरी जाति की नारी को जीन पर अपने पीछे बठाये हुए ख़ुजह मे लौटता था, तो ऐसे आदमी को तिरस्कार की नजर से देखा जाता था, गाव के बडे-बूढ़े उसकी इस हरकत की लानत मलामत करते थे। मगर अब तो बूढे जवान, सभी इस चीज के आदी हो

धुवे ह। किसी भी दूसरी जाति की नारी से किसी प्रकार की शादी को कलक नहीं माना जाता। अब केवल एक ही विवाह की भत्सना की जाती है – प्रेमहीन विवाह की।

क्या यह सच नहीं है कि फूल जितने भी विविधतापूर्ण होंगे, उनका उतना ही ज्यादा खूबसूरत गुलदस्ता बनेगा। आकाश मे जितने ज्यादा तारे होंगे, वह उतना ही ज्यादा जगमगायेगा। इन्द्रधनुष इसीलिये तो सुन्दर लगता है कि पृथ्वी के सभी रगों को अपने मे समेट लेता है।

अफ्रीका मे मने एक अदभुत, एक असाधारण फूल देखा। इस फूल की हर पखुडी का अपना अलग रग होता है। हर पखुडी की अपनी सुगन्ध, अपना नाम है। सक्षेप मे, डडी पर एक बढ़िया, तयार गुलदस्ता पनपता है, मगर फिर भी वह एक ही फूल होता है।

म यह चाहता हू कि मेरी अवार पुस्तक उस अदभुत अफ्रीकी फूल जसी हो, ताकि हर कोई उसमे अपना कुछ प्रिय, कुछ निकटवर्ती देख पा सके।

लीजिये, म ये सभी चीजें, जिनसे ऐसी पुस्तक बननी चाहिये, अपने सामने रख लेता हू। कूबाची के अच्छे कारीगर की तरह हर चीज मेरे नजदीक रखी है। उसके पास होते ह – चादी, सोना, काटनेवाले औजार, हथौडिया, छेनिया, ठप्पे और खाके। मेरे पास ह – मातृभाषा, जीवन का अनुभव, लोगों के चित्र और चरित्र, गीतों की धुनें, इतिहास की समझ, न्याय भावना, प्यार, मातृभूमि का प्राकृतिक सौन्दय, अपने पिता की स्मृति, अपनी जनता का अतीत और भविष्य   मेरे हाथो मे स्वण पिड ह। मगर मेरे हाथ भी सोने के ह या नहीं? मुझमे काफी प्रतिभा, काफी कारीगरी भी होगी?

म क्या करू कि मेरा गीत जीते जागते, पख फडफडाते पक्षी की तरह आपकी हथेली मे रखा जा सके, कि वह प्यार की भाति ही आमन्त्रण और पूवसूचना के बिना आपके दिलो मे उतर जाये?

मेरी मेज पर जो कुछ मेरे सामने रखा है, म फिर से उस पर नजर डालता हू

कहते हैं कि उस जवान की बीवी उसे छोड जाये, जिसके पास घोडा नहीं।

ऐसा भी कहते हैं कि उस जवान को बीवी भी उसे छोड जाये, जिसके पास घोडे का जीन या चाबुक नहीं है।

कहते हैं कि उकाब को घास और गधे को मास नहीं खिलाइये।

कहते हैं कि अगर दीवारें मजबूत नहीं ह, तो सुदर मकान भी गिर सकता है।

कहते है कि मुर्गी को मादा उकाब होने का सपना आया, चट्टान से उडी और पख तोड लिये।

छोटे से सोते ने यह सपना देखा कि वह बडा दरिया है, बालू मे वह चला और वहीं सूख गया।

भाषा

बच्चा यहा ग्रे, रोता है, हसता है
मुह से लेकिन शब्द नही कह सकता है
आयेगा, वह दिन भी आखिर आयगा
कौन, किसलिये जग म आया, सब को यह बतलायेगा।

पालने पर आते

दुनिया म अगर शब्द न होता,
तो वह वसी न होती, जसी अब है।

ससार की सृष्टि के एक सौ बरस पहले
कवि का जन्म हुआ।

भाषा ज्ञान के बिना कविता रचने का
निणय करनेवाला व्यक्ति उस पागल के समान है,
जो तरना न जानते हुए
तूफानी नदी म कूद पडता है।

कुछ लोग इसलिये नहीं बोलते ह कि उनके दिमाग़ मे महत्त्वपूण विचारों का जमघट होता है, बल्कि इसलिये कि उनकी ज़बान खुजलाती है। कुछ लोग इसलिये काव्य रचना नहीं करते ह कि उनके हृदयों मे प्रबल भावनाय उमडती घुमडती होती हैं, बल्कि इसलिये कि वास्तव मे यह कहना भी मुश्किल है कि क्यों वे अचानक कविता रचने लगते ह। उनकी कविताओं

की गूंज भेड़ की कच्ची खाल की थली में डाले गये अखरोटों की नीरस सरसराहट के समान होती है।

ये लोग अपने इर्दगिर्द देखना और पहले इस चीज पर नजर नहीं डालना चाहते कि दुनिया में क्या हो रहा है। वे उन समस्वरों, गीतों और धुनों को सुनना और जानना नहीं चाहते, जिनसे यह दुनिया भरपूर है।

यह पूछा जाता है कि आदमी को आंखें, कान और जबान किसलिये दिये गये हैं? किसलिये आदमी की दो आंखें और दो कान हैं, मगर जबान एक है? इसका कारण यह है कि जबान से एक भी शब्द दुनिया के सामने निकालने के पहले दो आंखों को देखना और दो कानों को सुनना चाहिये।

जबान से निकला हुआ शब्द तो तंग और खड़ी पहाड़ी पगडंडी से खुले मैदान में उतर आनेवाले घोड़े के समान ही है। पूछा जा सकता है कि क्या उस शब्द को दुनिया में भेजना ठीक होगा, जो दिल में से होकर नहीं आया? महज शब्द नाम की कोई चीज नहीं है। वह या तो शाप है या बधाई, सुंदरता है या पीड़ा, गंदगी है या फूल, झूठ है या सच, प्रकाश है या अंधकार।

अपने बीहड़, विकट क्षेत्र में, सुना कभी यह
हम पापी जन के हित केवल शब्द रचा संसार,
कैसी है बस, गूंज शब्द की?
पूजा जैसी? या कि कसम-सी? या आदेश, पुकार?

इस दुनिया की रक्षा को हम डटते हैं
घायल दुनिया, सभी बुराइयों से जर्जर,
हम शब्द दो—पूजा का हो, या उसमें संकल्प छिपा हो
बेशक हो अभिशाप, मगर वह दुनिया की दे रक्षा कर!

मेरे एक दोस्त ने एक बार कहा था—अपने शब्द का मैं खुद मालिक हूं, चाहूं तो उसे पूरा करूं, चाहूं तो न पूरा करूं। मेरे दोस्त के लिये तो शायद ऐसा ही ठीक रहे, मगर लेखक को तो अपने शब्दों, अपने वचनों-शापों का स्वामी होना चाहिये। एक ही चीज के लिये वह दो बार तो क़समें नहीं खा सकता। वैसे, जो अवसर क़समें खाता है, मेरे ख़याल में वह महज झूठा होता है।

अगर इस किताब की तुलना क़ालीन से की जाये, तो मैं अवार भाषा के रंग-बिरंगे धागों से उसे बुन रहा हू। अगर इसे भेड़ की खाल का कोट मान लिया जाये, तो अवार भाषा के मज़बूत धागों से मैं इस खाल की सिलाई कर रहा हू।

सुनने में आता है कि बहुत-बहुत पहले अवार भाषा मे बहुत ही थोड़े शब्द थे। "स्वतन्त्रता", "जीवन", "साहस", "मर्दी" "नेकी" जैसी अवधारणाओं को एक ही शब्द या अथ की दृष्टि से एक दूसरे से अत्यधिक मिलते-जुलते शब्दों द्वारा व्यक्त किया जाता है। दूसरे लोग बेशक यह कहते रहें कि हमारी छोटी-सी जाति की भाषा समृद्ध नहीं। मगर मैं तो अपनी भाषा मे जो चाहू, वही कह सकता हू और अपने विचारों तथा भावनाओं को व्यक्त करने के लिए मुझे किसी दूसरी भाषा की ज़रूरत नहीं।

दाग़िस्तान मे लाक नाम की एक बहुत छोटी जाति है। लगभग पचास हज़ार लोग लाक भाषा बोलते ह। इससे अधिक सही गिनती करना कठिन होगा, क्योंकि वहा बच्चे भी ह, जो अभी बोलना नहीं सीखे और ऐसे लोग भी ह, जो अपने पिताओं की ज़बान भूल चुके ह।

लाकों की सख्या तो थोड़ी है, फिर भी दुनिया के बहुत-से हिस्सों में उनसे मुलाक़ात हो सकती है। पथरीली ज़मीन पर ग़रीबी की ज़िन्दगी ने उन्हें दुनिया भर मे भटकने के लिये मजबूर किया। वे सभी बहुत अच्छे कारीगर, बढ़िया मोची, सुनार और क़लईसाज़ ह। कुछ गीत गाते हुए जहा-तहा भटकते फिरा करते थे। दाग़िस्तान मे ऐसा कहा जाता है–"तरबूज़ को सावधानी से काटना, कहीं उसमे से लाक उछलकर न बाहर आ जाये।"

किसी लाक बेटे को परदेस भेजते हुए उसकी मा यह हिदायत करती थी–"शहरी तश्तरी में दलिया खाते समय यह देख लेना कि दलिये के नीचे हमारा कोई लाक तो नहीं है।"

यह किस्सा सुनाया जाता है। किसी बड़े शहर, मास्को या लेनिनग्राद मे एक लाक घूम रहा था। अचानक उसे दाग़िस्तानी पोशाक पहने एक आदमी दिखाई दिया। उसे तो जैसे अपने वतन की हवा का झोंका-सा महसूस हुआ, बातचीत करने को मन ललक उठा। बस, भागकर हमवतन के पास गया और लाक भाषा मे उससे बात करने लगा। इस हमवतन ने उसकी बात नहीं समझी और सिर हिलाया। लाक ने कुमीक, फिर तात और लेज़गीन भाषा मे बात करने की कोशिश की   लाक ने चाहे किसी

भी जबान मे बात करने की कोशिश क्यों न की, दागिस्तानी पोशाक मे उसका हमवतन बातचीत को आगे न बढ़ा सका! चुनांचे रूसी भाषा का सहारा लेना पड़ा। तब पता चला कि लाक की अवार से मुलाक़ात हो गई थी। अवार अचानक ही सामने आ जानेवाले इस लाक को भला-बुरा कहने और शर्मिंदा करने लगा—

"तुम भी कैसे दागिस्तानी हो, कैसे हमवतन हो, अगर अवार भाषा ही नहीं जानते! तुम दागिस्तानी नहीं, मूख ऊद हो।"

इस मामले मे म अपने अवार भाई के पक्ष मे नहीं हू। बेचारे लाक को भला-बुरा कहने का उसे कोई हक नहीं था। अवार भाषा की जानकारी हो भी सकती है, नहीं भी हो सकती। महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि उसे अपनी मातृभाषा, लाक भाषा आनी चाहिये। वह तो दूसरी कई भाषायें भी जानता था, जबकि अवार को वे भाषायें नहीं आती थीं।

अबूतालिब एक बार मास्को मे थे। सड़क पर उन्हें किसी राहगीर से कुछ पूछने की आवश्यकता हुई। शायद यही कि मंडी कहां है। सयोग से कोई अंग्रेज ही उनके सामने आ गया। इसमे हैरानी की तो कुछ बात नहीं—मास्को की सड़कों पर तो विदेशियो की कुछ कमी नहीं है।

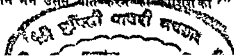
अंग्रेज अबूतालिब की बात न समझ पाया और पहले तो अंग्रेजी, फिर फ्रांसीसी, स्पेनी और शायद दूसरी भाषाओं मे भी पूछ-ताछ करने लगा।

अबूतालिब ने शुरू मे रूसी, फिर लाक, अवार, लेज़गीन, दार्गिन और कुमीक भाषाओं मे अंग्रेज को अपनी बात समझाने की कोशिश की।

आखिर एक दूसरे को समझे बिना वे दोनो अपनी अपनी राह चले गये। एक बहुत ही सुसंस्कृत दागिस्तानी ने जो अंग्रेजी भाषा के ढाई शब्द जानता था, बाद मे अबूतालिब को उपदेश देते हुए यह कहा—

'देखा, संस्कृति का क्या महत्त्व है। अगर तुम कुछ अधिक सुसंस्कृत होते, तो अंग्रेज से बात कर पाते। समझे न?"

"समझ रहा हू," अबूतालिब ने जवाब दिया। "मगर अंग्रेज को मुझसे अधिक सुसंस्कृत कैसे मान लिया जाये? वह भी तो उनमे से एक भी जबान नहीं जानता था, जिनमे मैने उससे बात करने की कोशिश की?"



मेरे लिये विभिन्न जातियों की भाषायें आकाश के सितारों के समान है। मैं यह नहीं चाहता कि सभी सितारे आधे आकाश को घेर लेनेवाले अतिकाय सितारे में मिल जायें। इसके लिये सूरज है। मगर सितारों को भी तो चमकते रहना चाहिये। हर व्यक्ति को अपना सितारा होना चाहिये।

मैं अपने सितारे – अपनी अवार मातृभाषा को प्यार करता हूं। मैं उन भूतत्त्ववेत्ताओं पर विश्वास करता हूं, जो यह कहते हैं कि छोटे-से पहाड़ में भी बहुत-सा सोना हो सकता है।

"अल्लाह, तुम्हारे बच्चों को उनकी मां की भाषा से वंचित कर दे," एक नारी ने दूसरी को कोसा।

कोसनों के बारे में। जब मैंने अपनी लम्बी कविता "पहाड़िन" लिखी, तो उसकी एक गुस्सैल पात्र के मुंह से कहलवाने के लिये कोसनों की जरूरत महसूस हुई। मुझे बताया गया कि एक गांव में एक बुजुर्ग पहाड़िन रहती है, जिसे उसकी पड़ोसिनों में से कोई भी कोसनों के मामले में मात नहीं दे सकती। मैं फौरन इसी अद्भुत औरत की तरफ चल दिया।

वसन्त की एक प्यारी सुबह को, जब भला-बुरा कहने और गालियां बकने के बजाय खुश होने और गाने को मन होता है, मैं उस बुजुर्ग औरत के घर पहुंचा। मैंने निष्कपट भाव से अपने आने का उद्देश्य कह दिया। मैं तो आपसे कुछ जोरदार गालियां सुनना चाहता हूं, मैं उन्हें लिख लूंगा और अपनी लम्बी कविता में उनका उपयोग करूंगा।

"अल्लाह करे कि तुम्हारी जबान सूख जाये, कि तुम अपनी प्रेमिका का नाम भूल जाओ, कि जिस आदमी के पास तुम्हें काम से भेजा जाये, वह तुम्हारी बात को सही ढंग से न समझे, कि जब तुम दूर-दराज का सफर करके लौटो, तो अपने गांव को अभिनन्दन के शब्द कहने भूल जाओ, कि जब तुम्हारे मुंह में दांत न रहें, तो उसमें हवा सीटियां बजाये गीदड़ के बेटे, अगर मेरा मन खुश नहीं, तो क्या मैं हंस सकती हूं (अल्लाह तुम्हें इस खुशी से महरूम रखे!)? जिस घर में कोई मरा नहीं, वहां रोने धोने में क्या तुक है? अगर किसी ने मेरा दिल नहीं दुखाया, मुझे ठेस नहीं लगाई, तो क्या मैं अपने मन से गालियां गढ़ूं? जाओ, अपना रास्ता नापो, फिर कभी ऐसे अनुरोध लेकर मेरे पास नहीं आना।"

"शुक्रिया, मेहरबान दादी," मैंने कहा और उसके घर से बाहर आ गया।

रास्ते मे म यह सोचने लगा—"अगर किसी तरह के गुस्से गिले के बिना, योंही, अचानक ही उसने मुझ पर ऐसी गढ़िया गालियों की बारिश कर दी, तो इसे सचमुच ही नाराज कर देनेवाले का क्या हाल होता होगा?"

म सोचता हू कि कभी न कभी कोई लोक-साहित्य सग्राहक पहाडी कोसनो शापों का सग्रह करेगा और तब लोगों को इस बात का पता चलेगा कि पहाडी कितनी दूर-दूर की कौडी लाते ह, जबान का कसा कमाल दिखाते ह, कल्पना की कितनी ऊची ऊची उडानें भरते ह और यह भी कि हमारी भाषा कितनी अभिव्यक्तिपूण है।

हर गाव के अपने कोसने शाप ह। एक मे अदृश्य सूत्रों से आपके हाथ-पाव जकडे जाते ह, दूसरे मे आप ताबूत मे जा पहुचते ह और तीसरे मे आपकी आंखें निकलकर उसी तश्तरी मे जा गिरती ह, जिसमे से आप खा रहे होते ह और चौथे गाव मे आपकी आखें नुकीले पत्थरों पर से लुढ़कती हुई खड्ड मे जा गिरती ह। आखों के शाप सबसे भयानक शापों में माने जाते ह। मगर उनसे ज्यादा बुरे शाप भी हैं। एक गांव मे मने दो नारियो को ऐसे कोसते सुना

"अल्लाह तुम्हारे बच्चों को उससे महरूम करे, जो उन्हें उनकी जबान सिखा सकता हो।"

"नहीं, अल्लाह तुम्हारे बच्चों को उससे महरूम करे, जिसे वे अपनी जबान सिखा सकते हों!"

तो ऐसे भयानक होते ह शाप। मगर पहाडो मे तो किसी तरह के शाप के बिना भी उस आदमी की कोई इज्जत नहीं रहती, जो अपनी जबान की इज्जत नहीं करता। पहाडी-भा विकृत भाषा मे लिखी हुई अपने बेटे की कवितायें नहीं पढ़ेगी।

नोटबुक से। एक बार पेरिस मे एक दागिस्तानी चित्रकार से मेरी भेंट हुई। क्रान्ति के कुछ ही समय बाद वह पढ़ने के लिये इटली गया था, वहीं एक इतालवी लडकी से उसने शादी कर ली और अपने घर नहीं लौटा। पहाडों के नियमों के अभ्यस्त इस दागिस्तानी के लिये अपने को नयी मातभूमि के अनुरूप ढालना मुश्किल था। वह देश देश मे घूमता रहा, उसने दूर दराज के अजनबी मुल्को की राजधानिया देखीं, मगर जहां भी गया, सभी जगह घर की याद उसे सताती रही। मने यह देखना चाहा कि रगों के रूप मे

यह याद कसे व्यक्त हुई है। इसलिये मने चित्रकार से अपने चित्र दिखाने का अनुरोध किया।

एक चित्र का नाम ही था—"मातभूमि की याद"। चित्र म इतालवी औरत (उसकी पत्नी) पुरानी प्रकार पोशाक म दिखाई गयी थी। वह होलसातल के मशहूर कारीगरा की नक्काशीवाली चांदी की गागर लिये एक पहाडी चश्मे के पास खडी थी। पहाडी ढाल पर पत्थरों के घरोंवाला उदास-सा प्रकार गांव दिखाया गया था और गांव के ऊपर पहाड तो और भी ज्यादा उदास से लग रहे थे। पहाडी चोटियां कुहासे मे लिपटी हुई थीं।

"पहाडों के आंसू ही कुहासा है," चित्रकार ने कहा, "वह जब ढालों को ढक देता है, तो चट्टानो की झुरियों पर उजली बूदें बहने लगती ह। म कुहासा ही हू।"

दूसरे चित्र मे मने कटीली जगली झाडी मे बठा हुआ एक पक्षी देखा। झाडी नगे पत्थरा के बीच उगी हुई थी। पक्षी गाता हुआ दिखाया गया था और पहाडी घर की खिडकी से एक उदास पहाडिन उसकी तरफ देख रही थी। चित्र मे मेरी दिलचस्पी देखकर चित्रकार ने स्पष्ट किया—

"यह चित्र पुरानी प्रकार किवदन्ती के आधार पर बनाया गया है।"

"किस किवदती के आधार पर?"

"एक पक्षी को पकडकर पिजरे मे बन्द कर दिया गया। बन्दी पक्षी दिन रात एक ही रट लगाये रहता था—मातृभूमि, मेरी मातृभूमि, मातृभूमि, मातृभूमि, मातृभूमि बिल्कुल वसे ही, जसे कि इन तमाम सालो के दौरान म भी यही रटता रहा हू पक्षी के मालिक ने सोचा—'जाने कसी है उसकी मातृभूमि कहा है, अवश्य ही वह कोई फलता फूलता हुआ बहुत ही सुदर देश होगा, जिसमे स्वर्गिक वक्ष और स्वर्गिक पक्षी होगे। तो म इस परिन्दे को आजाद कर देता हू और फिर यह देखूगा कि वह किधर उडकर जाता है। इस तरह वह मुझे उस अदभुत देश का रास्ता दिखा देगा।' उसने पिजरा खोल दिया और पक्षी बाहर उड गया। दसेक कदम की दूरी तक उडकर वह नगे पत्थरो क बीच उगी जगली झाडी मे जा बठा। इस झाडी की शाखाओ पर उसका घोसला था अपनी मातभूमि को म भी अपने पिजरे की खिडकी से ही देखता हू," चित्रकार ने अपनी बात खत्म की।

"तो आप लौटना क्यो नहीं चाहते?"

"देर हो चुकी है। कभी म अपनी मातृभूमि से जवान और जोशीला दिल लेकर आया था। अब म उसे सिर्फ बूढी हड्डिया कसे लौटा सकता हू?"

पेरिस से घर लौटकर मने चित्रकार के सगे-सम्बन्धियो को खोज निकाला। मुझे इस बात की बडी हैरानी हुई कि उसकी मा अभी तक जिन्दा थी। अपनी मातृभूमि को छोड देने और विदेश मे जा बसनेवाले बेटे के बारे मे उसके सगे-सम्बन्धियों ने उदास होते हुए मेरी बातें सुनीं। एसा लगता था कि उन्होंने मानो उसे माफ कर दिया था और इस बात से खुश थे कि वह जिन्दा तो है। पर तभी उसकी मा अचानक पूछ बठी—

"तुम दोनों ने अवार भाषा मे बातचीत की?"

"नहीं। हमारी बातचीत दुभाषिये के जरिये हुई। म रूसी बोलता था और तुम्हारा बेटा फ्रासीसी।"

मा ने काले दुपट्टे से मुह ढक लिया, जसा कि बेटे की मौत की खबर मिलने पर किया जाता है। पहाडी घर की छत पर बारिश पटापट ताल दे रही थी। हम अवारिस्तान में बठे थे। अपनी मातृभूमि को त्याग देनेवाला दाग़िस्तान का बेटा भी शायद पृथ्वी के दूसरे छोर पर, पेरिस मे बारिश का राग सुन रहा था बहुत देर तक चुप रहने के बाद चित्रकार की मा ने कहा—

"तुम्हें ग़लतफ़हमी हुई है, रसूल, मेरा बेटा तो कभी का मर चुका। वह मेरा बेटा नहीं था। मेरा बेटा वह ज़बान नहीं भूल सकता था, जो उसे मने, अवार मा ने सिखाई थी।"

सस्मरण। कभी म एक अवार थियेटर मे काम करता था। मच सज्जा की चीज़ों, पोशाकों और दूसरी चीज़ों के साथ (जिन्हें गधों पर लादा जाता था, मगर फिर भी उनमे से कुछ कलाकारो के उठाने के लिये भी बच जाती थीं) हम गाव गाव घूमकर पहाडी लोगो को नाटक कला से परिचित कराया करते थे। थियेटर मे इस तरह बिताये गये एक साल की मुझे अक्सर याद आती है।

कुछ नाटकों मे मुझे छोटी-मोटी भूमिकायें दे दी जाती थीं, मगर ज्यादातर तो म प्रोम्पटर बाक्स मे बठा रहता था। मुझे, युवा कवि को, बाकी सभी भूमिकाओं के मुक़ाबले मे प्रोम्पटर का काम ज्यादा पसन्द था। कलाकारो के अभिनय, उनकी मुख-मुद्राओ, हावों भावो, रगमच पर उनकी गतिविधियों को म बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं मानता था, गौण स्थान देता था।

पोशाकें, मेक अप और मंच-सज्जा भी कम महत्त्व रखते थे। शब्दों को हां म सबसे ऊंचा स्थान देता था और इस बात की बेहद चिन्ता करता था कि अभिनेता शब्दों को न गड़बड़ायें, उनका सही-सही उच्चारण करें। अगर कोई अभिनेता शब्दों को छोड़ जाता या उन्हें ग़लत ढंग से कहता, तो मैं बाक्स में से आगे की ओर झुककर इतने ज़ोर से और सही तौर पर इन शब्दों को कहता कि वे सारे हाल में गूंज जाते।

हां, मूल पाठ और शब्द को ही म सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण मानता था, *क्योंकि शब्द पोशाक और मेक अप के बिना भी जिन्दा रह सकता है — उसका भाव दर्शकों की समझ में आ जायेगा।*

मुझे एक घटना याद आ रही है। उन दिनों हम "पहाड़ी लोग" नाटक दिखा रहे थे, जिसका अवार जाति के अतीत से सम्बन्ध था। जैसे कि आम तौर पर होता था, म प्रोम्पटर था। नाटक में एक ऐसा स्थल आता था, जब नायक आईग़ाज़ी, जो खून के प्यासे दुश्मनों से बचने के लिये पहाड़ों में छिपा रहता था, रात के वक्त अपनी प्रेयसी से मिलने के लिये गांव में आया। प्रेयसी ने उसकी मिन्नत की कि वह जल्दी से पहाड़ों में वापस चला जाये, वरना दुश्मन उसे मार डालेंगे। मगर आईग़ाज़ी (अभिनेता मागायेव यह भूमिका निभा रहे थे) अपनी प्रेमिका को बारिश से बचाने के लिये उसे नमदे के लबादे से ढक देता है और उससे अपने प्यार, अपनी विरह-वेदना की चर्चा करने लगता है।

इसी वक्त एक अनहोनी सी बात हो गयी। अभिनेता मागायेव की पत्नी अचानक रंगमंच पर आ पहुंची। गुस्से में वह अपने पति पर इसलिये झपटी कि वह किसी दूसरी नारी के सामने प्रणय निवेदन कर रहा था। मागायेव अपनी पत्नी का हाथ पकड़कर उसे नेपथ्य में खींच ले गये ताकि उसे बात समझा सकें। उन्हें आशा थी कि वे उसी क्षण रंगमंच पर लौट आयेंगे और नाटक चलता रहेगा। किन्तु पत्नी तो पति से लिपट गई और उसे रंगमंच पर नहीं लौटने दिया। नाटक की प्रेयसी रंगमंच के बीच अकेली खड़ी रह गयी। सो नाटक रुक गया।

म अपने प्रोम्पटर के बाक्स में थियेटरी पोशाक और मेक अप के बिना मामूली पतलून और खुले कालर की सफ़ेद कमीज़ पहने बैठा था। लगता है कि परों में स्लीपर थे। बेशक मागायेव का पाठ मुझे ज़बानी याद था, मगर जिस हाल में म बैठा था, उसमें मागायेव की जगह लेना मेरे लिये

मुमकिन नहीं था। पर चूंकि मेरे लिये पोशाक नहीं, शब्द ही सबसे अधिक महत्त्व रखते थे, मैं अपने बाक्स से निकलकर रंगमंच पर आ गया और उस बेचारी प्रेमिका से वे शब्द कहे, जो भाईशाजी यानी अभिनेता मागायेव को कहने चाहिये थे।

मुझे मालूम नहीं कि दर्शकों को सन्तोष हुआ या नहीं, या नाटक उनके लिये खासा मजाक ही बनकर रह गया, मगर मुझे तो खुशी हुई। दर्शक नाटक का सार समझ गये थे, एक भी शब्द से वंचित नहीं हुए थे और मैं इसी को सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात मानता था।

मुझे याद है कि इसी थियेटर के साथ मैं पहली बार विख्यात, ऊंचे पहाड़ी गांव गूनीब में गया था। यह तो सभी जानते हैं कि बेशक कवि एक-दूसरे से अपरिचित भी हों, फिर भी एक-दूसरे के यार होते हैं। गूनीब में एक ऐसा ही शायर रहता था, जिसके बारे में मैंने सुना तो था, मगर मिलने का मौका नहीं हुआ था। मैं इस कवि से मिलने गया और जब तक हमारा थियेटर वहां रहा, मैं उसी के घर में रहा।

मेहरबान मेजबानों ने मेरी इतनी ज्यादा खातिरदारी की कि मुझे परेशानी-सी होने लगी, मेरी समझ में यही नहीं आता था कि कैसे अपनी झेंप छिपाऊं। कवि की मां के स्नेह की तो मेरे मन पर विशेषतः बहुत गहरी छाप थी।

वहां से रवाना होने के समय मुझे अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिये शब्द नहीं मिल रहे थे। कुछ ऐसा हुआ कि जब मैंने कवि की मां से विदा ली, तो कमरे में कोई नहीं था। मैं जानता था कि अगर उसके बेटे के बारे में कुछ अच्छे शब्द कहूं, तो मां के लिये इससे ज्यादा खुशी की बात और कुछ नहीं हो सकती। बेशक मैं यह अच्छी तरह समझता था कि गूनीब का वह कवि साधारण है, फिर भी मैं उसकी प्रशंसा करने लगा। मैंने उसकी मां से यह कहना शुरू किया कि उसका बेटा बहुत अग्रगामी कवि है, सदा ज्वलन्त विषयों पर कवितायें रचता है।

"सम्भव है कि अग्रगामी ही हो," मां ने उदासी से मुझे टोकते हुए कहा, "मगर प्रतिभा उसमें नहीं है। बेशक उसकी कवितायें ज्वलन्त समस्याओं से सम्बन्धित हों, मगर जब मैं उन्हें पढ़ती हूं, तो मुझे ऊब महसूस होने लगती है। रसूल, तुम ही जरा गौर करो कि जब मेरा बेटा पहले शब्द बोलना सीख रहा था, जिन्हें तो समझना भी मुश्किल था, तो मुझे इतनी

खुशी हुई थी कि बयान से बाहर। मगर अब, जब वह बोलना ही नहीं, कविता रचना भी सीख गया है, तो मुझे ऊब महसूस होती है। कहते हैं कि औरत की अक्ल उसके प्राक के पल्ले पर होती है। जब वह बैठी होती है, तो उसकी अक्ल भी उसके पास रहती है, मगर जैसे ही वह खड़ी होती है, वैसे ही उसकी अक्ल लुढ़ककर फर्श पर जा गिरती है। मेरे बेटे का भी यही हाल है। जब तक वह खाने की मेज पर बैठा रहता है, खाते हुए साधारण ढंग से बातचीत करता है, मैं खुशी से उसकी बातें सुनती हूं। मगर खाने की मेज से लिखने-पढ़ने की मेज तक जाते जाते वह सीधे-सादे और अच्छे अच्छे सभी शब्द खो बैठता है। बस, दुर्बोध, नीरस और ऊबभरे शब्द ही उसके पास रह जाते हैं।"

इस घटना को याद करके मैं अल्लाह से यही दुआ करता हूं कि वह मेरी जबान मेरे पास बनी रहने दे। मैं ऐसे लिखना चाहता हूं कि मेरी कविताओं, मेरी इस किताब को तथा इनके अलावा मैं और भी जो कुछ लिखूं, उसे भी मां, बहन, हर पर्वतवासी और हर वह व्यक्ति, जिसके हाथ मे मेरी किताब जाये, समझे, प्यार करे। मैं ऊब पैदा करना नहीं चाहता, लोगों को खुशी देना चाहता हूं। अगर मेरी भाषा बिगड़ जाती है, प्राणहीन, दुर्बोध और ऊबभरी हो जाती है—थोड़े में यह कि अगर मैं अपनी मातृभाषा को बिगाड़ता हूं, तो मेरे लिये जीवन में इससे अधिक भयानक बात और कुछ नहीं हो सकती।

बहुत पहले की बात है, तब मैं छोकरा ही था। हमारे गांव के लोग मसजिद के क़रीब जमा होकर अपने साझे मसलों पर सोच विचार किया करते थे। तब मैं वहां अपने पिता की कवितायें पढ़कर सुनाया करता था। छोकरा होते हुए भी मैं बड़े जोश से (जरूरत से ज्यादा जोश के साथ), खूब ऊंचे और उन शब्दों तथा आवाजों पर खास जोर देकर कवितायें पढ़ता था, जो मुझे पसन्द आती थीं। उदाहरण के लिये, पिता जी की नयी कविता "त्सादा मे भेड़िये का शिकार" का पाठ करते हुए मैं सभी शब्दों में 'त्स" ध्वनि का दांत भींचकर ऐसे उच्चारण करता कि वे थर्राते, आपस मे टकराते और झनझनाते। मुझे लगता कि इन ध्वनियों के ऐसे तीव्र और जोरदार उच्चारण से अधिक प्रभाव पैदा होता है।

पिता जी हर बार यह कहते हुए मुझे समझाने की कोशिश करते—"शब्द क्या कोई अखरोट या बादाम है, जिसे दांतों तले दबाकर तोड़ा

जाये? या फिर शब्द क्या कोई लहसुन है कि उसे बट्टे से सिल पर पीसा जाये? या शब्द कोई सूखी पथरीली जमीन है कि एडी-चोटी का जोर लगाकर उस पर हल चलाया जाये? शब्दो को चबाये बिना ऐसे सहज ढग से उनका उच्चारण करो कि तुम्हारे दात बजें नहीं, उनमे से झनझनाहट न पदा हो।"

म फिर से कविता पढ़ता, मगर फिर से वही नतीजा निकलता। एक बार मेरी मा इस वक्त घर की छत के सिरे पर खडी थीं। पिता जी ने पुकारकर मा से कहा—

"तुम ही इसे किसी तरह यह सिखा दा।"

मा ने मेरे लिये कठिन शब्दा का वसे उच्चारण किया, जसे पिता जी चाहते थे।

"सुना? अब तुम इन्हें ऐसे ही दोहराओ।"

मुझे फिर भी कामयाबी नहीं मिली।

"छि," पिता जी झल्ला उठे। "शब्दो को बिगाडनेवाले एक जालातूरीवासी की मने झाड़ू से पिटाई की थी। अपने बेटे का म क्या करू?"

वे दुखी होकर सभा से चले गये।

पिता जी ने जालातूरीवासी की कैसे पिटाई की।

वसन्त के मौसम मे पठ लगने का दिन था। जसा कि सभी जानते ह, वसत में पिछली फसल की बची-बचायी सभी चीजें खत्म हो जाती ह और नई फसल अभी आई नहीं होती। वसत मे पतझर की तुलना मे सभी चीजें बाजार में महगी होती ह, यहा तक कि हाडिया भी, यद्यपि वे खेत मे पदा नहीं होतीं।

मेरे पिता जी ने, जो उस वक्त जवान आदमी थे, बाजार जाने का इरादा बनाया। पडोसी ने उनसे झाड़ू खरीदने को कहा और इसके लिये बीस कोपेक दिये।

"अगर झाड़ू सस्ती मिल जाये, तो बाकी पसे अपने पास रख लेना," पडोसी ने जवान हमजात से कहा। खर, वे बाजार पहुचे।

झाड़ू बेचनेवाले को उन्होने जल्दी ही ढूढ लिया और लग उससे मोल तोल करने।

यह तो शायद सभी जानते ह कि पूर्वी बाजार मे किसी भी

चीज़ के लिये मांगे जानेवाले पहले मूल्य का कोई महत्त्व नहीं होता। पांच कोपेक की चीज़ के लिये सौ रूबल भी बताये जा सकते हैं।

पिता जी ने अच्छी और मज़बूत-सी झाड़ू चुनकर पूछा—

"बेचते हो?"

"तो और किसलिये यहां खड़ा हूं?"

"क्या कीमत है?"

"चालीस कोपेक।"

"झाड़ू तो घोड़ा नहीं है कि ऊंची क़ीमत से सौदाबाज़ी शुरू की जाये। एक बार ही असली दाम कह दो और मामला तय करो।"

"चालीस कोपेक।"

"मज़ाक छोड़ो।"

"चालीस कोपेक।"

"बीस में दे दो।"

"चालीस कोपेक।"

"मगर मेरे पास तो सिर्फ़ बीस कोपेक हैं।"

"चालीस कोपेक।"

"मगर मेरे पास तो सचमुच ही और पैसे नहीं हैं।"

"जब हों, तो तब आना।"

यह समझ में आ जाने पर कि झाड़ू नहीं खरीदी जा सकेगी, मेरे पिता जी बाज़ार में घूमने लगे और जल्दी ही दुकानों के करीब एक ऊंची जगह पर उन्हें लोगों की भीड़ दिखाई दी। वे नज़दीक गये, धकियाकर आगे बढ़े और समझ गये कि लोग गायक महमूद का गाना सुन रहे हैं।

महमूद पन्दूर हाथों में लिये भीड़ के बीच बैठा था। वह कभी पन्दूर बजाता और कभी तारों पर हाथ रखकर गाने लगता। सभी दम साधे सुन रहे थे। अपने हर दिन के धंधे के सिलसिले में बाज़ार के ऊपर उड़नेवाली मधुमक्खी की भिनभिनाहट भी सुनाई दे रही थी। गाने के दौरान एक तरुण खांसने लगा, तो पके बालोंवाले एक पहाड़ी ने, जो शायद तरुण का बाप था, उसे फ़ौरन दूर भगा दिया।

ऐसी गहरी खामोशी में ही, जब महमूद के गाने के सिवा और कुछ भी सुनाई नहीं दे रहा था, कोई जालातूरीवासी अपने पास खड़े आदमी से बातें करने लगा। वैसे तो वह जालातूरीवासी नेक इरादे से ही ऐसा कर

रहा था। उसके पास खडा हुआ आदमी अवार भाषा का एक भी शब्द नहीं समझता था और महमूद जो कुछ गाता था, यह जालातूरीवासी उसे साथ-साथ यह सब कुछ समझाता जाता था। मगर मुसीबत तो यह थी कि उसके लगातार बोलते जाने से गाने का रग भग होता था और बाकी लोग उसका पूरी तरह मजा नहीं ले पाते थे।

मेरे भावी पिता, जवान हमजात को जालातूरीवासी की यह हरकत बहुत बुरी लगी। उन्होंने उसे चुप कराने के लिये उसकी आस्तीन खींची, मगर बेकार, उसके कान मे यह कहा कि वह चुप रहे, मगर उसने इस पर भी कोई ध्यान नहीं दिया। हमजात की समझ मे नहीं आ रहा था कि उसे कैसे चुप कराये। इसी परेशानी मे उन्होंने इधर उधर नजर दौडाई, तो देखा कि झाडू बेचनेवाला भी गाना सुनने के लिये क़रीब ही आ खडा हुआ है। पिता जी भागकर उसके पास गये, सबसे बडी झाडू उसके हाथ से झपट ली और उससे लोगो के रग मे भग डालनेवाले इस जालातूरीवासी की पिटाई करने लगे।

जालातूरीवासी धमकिया देता हुआ पीछे हटने लगा, मगर पिता जी ऐसे आग-बबूला हो उठे थे कि उन्होने उसकी धमकियो की जरा भी परवाह न करते हुए गाने मे खलल डालनेवाले उस आदमी को वहा से खदेड ही दिया। इसके बाद पिताजी झाडू बेचनेवाले के पास झाडू लौटाने गये।

"अपने पास ही रख लो।"

"मगर मेरे पास तो सिर्फ बीस कोपेक ह और तुम चालीस मागते हो।"

"मुफ्त ही ले जाओ। तुमने जो काम किया है, वह तो मेरे सारे माल से ज्यादा क़ीमत रखता है।"

गीत का मजा किरकिरा करनेवाले जालातूरीवासी तो अब इस दुनिया मे बहुत ह। अफसोस तो इस बात का है कि उनके लिये झाडू और ऐसा आदमी नहीं है, जो उस झाडू का इस्तेमाल करता।

पहाडो मे बढ़िया, तीर की तरह निशाने पर बैठनेवाले और पने शब्द की तारीफ मे यह कहा जाता है—

"जीन कसे घोडे के बराबर क़ीमत है इसकी।"

नोटबुक से। मखचक़ला मे मेरा पडोसी अली अलीयेव बहुत ही शानदार पहलवान है, चार बार विश्व चेम्पियन रह चुका है। एक बार इस्ताबूल मे

उसे तुर्की के सबसे तगड़े पहलवान से कुश्ती करनी पड़ी। तुर्क पहलवान सचमुच ही बहुत ताकतवर और फुर्तीला था। किन्तु शान्तचित्त और साहसी अली अलीयेव ने तुर्क को डोरी के गोले की तरह क़ालीन पर चित फेंक दिया। तुर्क ने उठते हुए अवार भाषा में धीरे-से कुछ भला-बुरा कहा। अपनी भाषा सुनकर अली अलीयेव को बड़ी हैरानी हुई। मगर जब विजेता ने भी अवार भाषा में यह कहा—"हमवतन, कोसते क्यों हो, खेल तो खेल ठहरा," तो तुर्क को और भी ज्यादा हैरानी हुई।

फिर जब एक जमाने से बिछुड़े हुए दो भाइयों की तरह दोनों पहलवानों ने अचानक एक-दूसरे को बाहों में भर लिया, तो उन दोनों से भी ज्यादा हैरानी हुई रेफ़री और दर्शकों को।

मालूम यह हुआ कि तुर्क उस अवार परिवार से सम्बन्ध रखता था, जो शामिल की गिरफ्तारी के बाद तुर्की चला गया था। अब भी जब कभी इन दोनों पहलवानों की मुलाकात होती है, तो वे दोस्तों की तरह मिलते हैं।

पिता जी का संस्मरण। १६३६ में मेरे पिता जी एक पदक पाने के लिये मास्को गये। उस वक्त तो यह एक बहुत बड़ी घटना थी। जब वे छाती पर पदक लगाये हुए लौटे, तो गांव की मजलिस हुई और लोगों ने उनसे मास्को, क्रेम्लिन और मिखाईल इवानोविच कालीनिन के बारे में, जो उस वक्त पदक भेंट किया करते थे, तथा यह भी बताने को कहा कि किस चीज ने उनके दिल पर सबसे गहरी छाप छोड़ी।

जो कुछ हुआ था, पिता जी ने वह सभी सिलसिलेवार सुनाया और फिर यह भी कहा—

'सबसे बड़ी बात तो यह है कि मिखाईल इवानोविच कालीनिन ने रूसी में नहीं, अवार भाषा में मेरे नाम का उच्चारण किया। उन्होंने मुझे हमजात त्सादासा नहीं, त्स'अदासा हमजात कहा।"

गांव के बड़े-बूढ़े हैरान हुए और उन्होंने सिर हिलाकर अपनी ख़ुशी जाहिर की।

"देखो न," पिता जी ने कहा, 'मेरी ज़बान से यह सुनकर ही तुम्हें कितनी ख़ुशी हो रही है। क्रेम्लिन में ख़ुद कालीनिन के मुंह से यह सुनकर मुझे कितना अच्छा लगा होगा। आप लोगों से ईमान की बात कहता हूं कि इतनी ज्यादा ख़ुशी हुई थी इससे कि पदक के बारे में ख़ुश होने की सुध ही नहीं रही।"

पिता जी की भावनाओं को मैं बहुत ही अच्छी तरह समझता हूं।

कुछ साल पहले मैं सोवियत लेखकों के एक प्रतिनिधिमण्डल के सदस्य के नाते पोलैंड गया। एक दिन क्रैको में किसी ने होटल में मेरे कमरे के दरवाज़े पर दस्तक दी। मैंने दरवाज़ा खोला। किसी अपरिचित ने शुद्ध अवार भाषा में पूछा–

"हमज़ातोल रसूल यहीं रहते हैं?"

मैं चकराया और साथ ही बेहद खुश हुआ–

"अल्लाह करे कि तुम्हारे अब्बा के घर को कभी आग न लगे, वह कभी तबाह न हो! यह बताओ कि तुम अवार यहां क्रैको में कैसे आ बसे?"

मैंने लपककर अपने मेहमान को लगभग गले लगा लिया, कमरे में खींच ले गया और सारा दिन तथा सारी शाम हम बातें करते रहे।

मगर मेरे मेहमान अवार नहीं थे। वे दागिस्तान की भाषा और साहित्य का अध्ययन करनेवाले पोलिश विद्वान थे। अवार भाषा उन्होंने नज़रबन्द कैम्प के दो अवार कैदियों से ही पहले पहल सुनी थी। भाषा उन्हें अच्छी लगी और खुद अवार तो और भी ज़्यादा पसन्द आये। वे अवार भाषा सीखने लगे। बाद में एक अवार तो चल बसा, दूसरा बन्दी रहा, सोवियत सेना ने उसे मुक्ति दिलाई और वह अभी तक ज़िन्दा है।

पोलिश विद्वान के साथ हमने केवल अवार भाषा में ही बातचीत की। मेरे लिये यह अनूठी और असाधारण-सी बात थी। मैंने उन्हें दागिस्तान आने की दावत दी।

हां, तो उस दिन हम दोनों ने अवार भाषा में बातचीत की। मगर मेरी और उनकी भाषा में बहुत बड़ा अन्तर था। वे विद्वानों की, शुद्ध, बहुत सही, बहुत ही ज़्यादा सही, यहां तक कि बेजान भाषा बोलते थे। वे भाषा की रंगीनी और हर शब्द की धड़कन की तुलना में व्याकरण, शब्दक्रम और वाक्य रचना की तरफ़ ज़्यादा ध्यान देते थे।

मैं ऐसी पुस्तक लिखना चाहता हूं, जिसमें भाषा व्याकरण के अधीन न होकर व्याकरण भाषा के अधीन हो।

अन्यथा मैं व्याकरण को सड़क पर पैदल जानेवाले और साहित्य को खच्चर पर सवार मुसाफ़िर की उपमा दूंगा। पैदल चलनेवाले ने खच्चर पर सवार मुसाफ़िर से अनुरोध किया कि वह उसे खच्चर पर बैठा ले।

उसने उसे अपने पीछे ज़ीन पर बठा लिया। पदल मुसाफिर को धीरे धीरे हिम्मत बढी, उसने खच्चर सवार को ज़ीन से नीचे धकेल दिया और फिर यह चिल्लाते हुए उसे पुतकारने लगा—

"यह खच्चर और ज़ीन के साथ बधा हुआ सारा माल-मता भी मेरा है!"

मेरी प्यारी अवार भाषा! तुम मेरी दौलत हो, बुरे दिनों के लिये सजोकर रखा गया खजाना हो, सभी रोगा क लिये रामबाण हो। अगर आदमी गायक की आत्मा लेकर गूगा पदा हुआ है, तो उसका न जन्म लेना ही बेहतर होता। मेरी आत्मा मे ढरों गीत ह और मुझे आवाज भी मिली है। यह आवाज तुम हो, मेरी प्यारी अवार भाषा। एक लडके की तरह मेरा हाथ थामकर तुम मुझे मेरे गाव से बडी दुनिया मे, लोगो के पास ले गई हो और म उन्हें अपनी मातृभूमि के बारे मे बताता हू। तुम ही मुझे उस देव के पास ले गयीं, जिसका नाम महान रूसी भाषा है। यह भी मेरे लिये मातृभाषा बन गयी। उसने मेरा दूसरा हाथ पकडा और मुझे दुनिया के सभी देशो मे ले गयी। म उसका उसी तरह आभारी हू, जसे हारादारोह गाव की उस नारी का, जो मेरी धाय थी। मगर फिर भी म यह अच्छी तरह जानता हू कि मेरी सगी मा भी है।

कारण कि अपने चूल्हे मे आग जलाने के लिये हम पडोसी से दियासलाई ला सकते ह। मगर हम ऐसी दियासलाई मागने के लिये दोस्तो के पास नहीं जा सकते, जिससे दिल मे आग जलाई जा सके।

लोगो की भाषायें बेशक अलग अलग हो, मगर दिल एक होने चाहियें। म ऐसे कई दोस्तो को जानता हू, जो अपना गाव छोडकर बडे शहरों मे जा बसे ह। इसमे कोई खास बुरी बात नहीं है। पक्षियो के बच्चे भी पख निकलने तक ही घोसलो मे रहते ह। मगर इस बात का क्या किया जाये कि बडे शहरो मे रहनेवाले मेरे दोस्तो मे से कुछेक अब दूसरी भाषा में लिखते ह! जाहिर है कि यह उनका अपना मामला है और म उन्हे कोई सीख नहीं देना चाहता। मगर फिर भी वे एक हाथ मे दो तरबूज सम्भालने की कोशिश करनेवाले लोगो के समान ह।

मने इन बेचारो से बात की और इस नतीजे पर पहुचा कि जिस भाषा मे वे अब लिखते ह, वह अवार तो है ही नहीं, मगर रूसी भी नहीं। वे मुझे

ऐसे वन की याद दिलाते हैं, जहाँ लकड़हारों ने बड़े भटपटे ढंग से काम किया है।

हाँ, मैंने ऐसे लोग देखे हैं, जिनके लिये अपनी मातृभाषा अशक्त और अपर्याप्त थी और वे सशक्त तथा समृद्ध भाषा की खोज में निकल पड़े। मगर नतीजा निकला उस प्रकार लोक-कथा जैसा, जिसमें एक बकरी भेड़िये जैसी दुम बढ़ाने के लिये जंगल में गयी, मगर लौटी सींगों से भी हाथ धोकर।

या फिर वे पालतू हंसों जैसे हैं, जो तर और डुबकी भी लगा सकते हैं, मगर मछली की तरह तो नहीं, कुछ उड़ भी सकते हैं, मगर उन्मुक्त पक्षियों की तरह तो नहीं, कुछ गा भी सकते हैं, मगर फिर भी बुलबुल तो नहीं हैं। वे कुछ भी तो ढंग से नहीं कर सकते।

"कैसा हाल चाल है?" एक बार मैंने अबूतालिब से पूछा।

"बस, ऐसा ही। न तो भेड़िये जैसा, न खरगोश जैसा। दोनों के बीच का सा।" अबूतालिब कुछ देर चुप रहकर बोले—"लेखक के लिये यह बीच की स्थिति ही सबसे बुरी होती है। उसे या तो खरगोश को हड़प जानेवाले भेड़िये या भेड़िये से बच निकलनेवाले खरगोश की तरह अपने को महसूस करना चाहिये।"

नोटबुक से। एकबार पड़ोस के गाव के कुछ किशोर मेरे पिता जी के पास आये और उन्हें बताया कि उन्होंने एक गायक की पिटाई कर डाली है।

"किसलिये पीटा है तुमने उसे?" पिता जी ने पूछा।

"वह गाते हुए मुंह बनाता था, जान-बूझकर खांसता था, शब्दों को तोड़ता-मरोड़ता था, कभी चीखने, तो कभी कुत्ते की तरह भौंकने लगता था। उसने गाने का सत्यानास कर दिया था, इसीलिये हमने उसकी मरम्मत की।"

"किस चीज से मरम्मत की तुमने उसकी?"

"किसी ने पेटी से, किसी ने घूसों से।"

"कोड़े से भी पिटाई करनी चाहिये थी। मगर मैं यह जानना चाहता हूं कि किन जगहों पर तुमने उसकी ठुकाई की?"

"ज्यादा तो धड़ के नीचेवाले हिस्सों पर। मगर जाहिर है कि गर्दन भी बची नहीं रही।"

"मगर सबसे ज्यादा कुसूर तो सिर का था।"

सम्मरण। एक और घटना अगर याद आ हो गयी है, तो यहा उसका भी उल्लेख क्यो न कर दिया जाये? मखचकला मे एक अवार गायक रहते ह म उनका नाम नहीं बताना चाहता। वे तो खर जान ही जायेंगे कि यहा उन्हीं का जिक्र किया गया है और आपको नाम जानने या न जानने से फक ही क्या पडता है? ये गायक अक्सर मेरे पिता जी के पास आते और उनसे अपनी धुनों पर गीत रचने का अनुरोध करते। पिता जी राजी हो जाते और इस तरह गानो का जन्म होता।

एक दिन हम चाय पी रहे थे, जब रेडियो पर यह घोषणा हुई कि विख्यात गायक हमजात त्सादासा का लिखा गीत गायेंगे। हम सभी और पिता जी भी ध्यान से सुनने लगे। मगर गाना ज्यो ज्यो आगे बढता था, हमारी हैरानी भी उतनी ही ज्यादा बढती जाती थी। गायक एसे गा रहे थे कि एक भी शब्द पल्ले नहीं पडता था। बस, कुछ चीजें ही सुनाई देतीं और गायक शब्दो को ऐसे निगल जाते, जसे कोई मुर्गा अपने सारे चुग्गे को पहले तो इधर उधर बिखरा दे और फिर दाना-दाना करके उन्हें चुगने लगे।

गायक से मुलाकात होने पर पिता जी ने उनसे पूछा कि उनके गीत के साथ उन्होने ऐसी ज्यादती क्यों की।

"म इसलिये ऐसा करता हू," गायक ने जवाब दिया, "कि दूसरे न तो कुछ समझ सके और न ही याद रख पायें। अगर दूसरे गायको को गीत याद हो गया, तो वे भी गाने लगेंगे, मगर म चाहता हू कि सिफ म ही उसे गाऊ।"

कुछ समय बाद पिता जी ने अपने दोस्तो की दावत की। गायक भी आये थे। दावत जब खत्म होने को थी, तो पिता जी ने दीवार पर से टूटे तारावाला कुमुज उतारा और वह गीत गाने लगे, जिसकी धुन गायक ने रची थी। पिता जी शब्दो का तो बहुत स्पष्ट उच्चारण करते, मगर बसुरे साज पर बजायी जानेवाली धुन का पूरी तरह हुलिया बिगड गया। गायक को बहुत बुरा लगा, कहने लगे कि टूटे तारोंवाले, बेसुरे कुमुज पर उनकी रची हुई धुन नहीं बजायी जानी चाहिये, कि ऐसा कुमुज उनके गाने का माधुय प्रस्तुत करने मे असमथ है। पिता जी ने बडे इतमीनान से जवाब दिया—

"यह तो म जान-बूझकर ऐसे गाता और साज बजाता हू ताकि दूसरे तुम्हारी धुन को समझकर याद न कर लें। अगर ऐसा गाना चल सकता है, जिसमे शब्द पल्ले न पड़ें, तो भला ऐसा गाना क्यों नहीं चलेगा, जिसमे धुन का सिर-पर मालूम न हो सके?"

दागिस्तानी लेखक दस भाषाओं में लिखते ह और नौ मे अपनी रचनायें छापते ह। मगर ऐसी स्थिति मे वे क्या करते ह, जो दसवीं भाषा मे लिखते ह? और यह भाषा क्या है?

दसवीं भाषा मे वे लिखते ह, जो अपनी मातृभाषा – वह चाहे अवार, लाक या तात कोई भी क्यों न हो – भूल चुके ह, मगर परायी भाषा सीख नहीं पाये ह। वे न घर के ह, न घाट के।

अगर आप परायी भाषा को अपनी मातृभाषा से ज्यादा अच्छी तरह जानते ह, तो उसमे लिखें। या फिर अगर कोई दूसरी भाषा ढग से नहीं जानते, तो मातृभाषा मे लिखिये। मगर दसवीं भाषा मे नहीं लिखिये।

हां, म दसवीं भाषा का दुश्मन हू। भाषा पुरानी, एक हजार साल की होनी चाहिये, तभी वह काम आ सकती है।

निश्चय ही भाषा बदलती रहती है और इसके खिलाफ म किसी तरह की बहस नहीं करूगा। वृक्ष के पत्तें भी तो हर साल बदलते ह, कुछ गिरते ह और दूसरे उनकी जगह आते ह। मगर वृक्ष तो ज्यों का त्यों बना रहता है। वह साल-दर-साल अधिकाधिक ऊचा होता जाता है, उसकी शाखायें बढ़ती जाती ह। आखिर उस पर फल आ जाते ह।

म आपको अपने गीत, अपनी किताबें देता हू, अवार भाषा के छोटे, मगर प्राचीन वक्ष पर उगाये हुए फल आपको भेंट करता हू।

मातृभाषा

सपना मे तो सदा अनोखी और अटपटी बात होती
आज अचानक मन अपने को सपने म मरते देखा,
दागिस्तानी घाटी थी, म था, औ' धूप झुलसती थी
सीना गोली स छलनी था, मिटती थी जीवन की रेखा।

कलछल कलछल नदिया बहती, वह अबाध हो दौडी जाती
नहीं जरूरत जिसकी जग को, और सभी ने जिसे भुलाया,
मेरे नीचे थी मेरी ही अपनी मिट्टी, अपनी धरती
उसका हिस्सा बनने को थी, कुछ क्षण मे मेरी भी काया।

गिनता हू मै अपनी सासे, मगर न कोई इतना जाने
पास न कोई मेरे आये, सहलायें न प्यारी बाह,
सिर्फ उकाब कही दूरी पर, ऊची-ऊची भरे उडान
और कही पर एक तरफ को, हिरन भर रहे ठडी आहे।

अपनी भरी जवानी म म छोड रहा हू इस दुनिया को
फिर भी मेरी इस मिट्टी पर, मेरे शव पर और कब्र पर
मा भी नही, नही प्यारी भी, नही दोस्त कोई रोने को
अरे न क्यो वे भी आती ह, जो रोती हैं पसे लेकर।

बेबस पडा पडा ऐसे ही, तोड रहा था म दम अपना
तभी अचानक, कही निकट ही, कुछ आवाजें पडी सुनायी,
चले जा रहे थे दो साथी, वे कुछ कहते, कुछ बतियाते
भाषा उनकी भी अवार थी मेरे कानो को सुखदायी।

आग उगलती दोपहर मे उस दागिस्तानी घाटी म
म मरता था मगर लोग तो हसते बतियाते जाते थे,
किसी हसन की मक्कारी की, किसी अली की सूझ-बूझ की
मजे मजे चर्चा करते वे किस्से कह मन बहलाते थे।

अपनी ही भाषा म सुनकर कुछ धीमी धीमी आवाजें
मुझे लगा कुछ ऐसे जसे जान जिस्म मे फिर से आये
समझ गया म वद्य, डाक्टर मुझे न कोई बचा सकेगा
केवल मेरी अपनी भाषा मझे प्राण दे सके, बचाये।

शायद और किसी को दे दे सेहत कही अजनबी भाषा
पर मेरे सम्मुख वह दुबल, नही मुझे तो उस मे गाना,
और अगर मेरी भाषा के, बदा भाग्य म कल मिट जाना
तो मै केवल यह चाहूगा, आज, इसी क्षण ही मर जाना।

मने तो अपनी भाषा को सदा हृदय से प्यार किया है
बेशक लोग कहें कहने दो, मेरी यह भाषा दुबल है,
बडे समारोहो म इसका हम उपयोग नही सुनते ह
मगर मुझे तो मिली दूध म मां क वह तो बडी सबल है।

मानवाली नयी पीढ़ियां, क्या अनुवादों के ज़रिये ही
समझेंगी महमूद और उसकी कविता का रंग निराला?
क्या मैं ही वह अन्तिम कवि हूं, जो अपनी प्यारी भाषा में
जो अवार भाषा में लिखता, उसमें छन्द बनानेवाला।

प्यार मुझे बेहद जीवन से, प्यार मुझे सारी पृथ्वी से
उसका कोना कोना प्यारा, प्यारा उसका साया, छाया
फिर भी सोवियत देश अनूठा मुझको सबसे ज्यादा प्यारा
अपनी भाषा में उसका ही, मैंने जी भर गौरव गाया।

बाल्टिक से ले, सखालीन तक, इस स्वतंत्र खिलती धरती का
हर कोना मुझको प्यारा है, हर कोना ही मन भरमाये,
इसके हित हंसते-हंसते ही, दे दूंगा मैं प्राण कहीं भी
पर मेरे ही जन्म-गांव में बस, मुझको दफ़नाया जाय।

ताकि गांव के लोग कभी आ, करें कब्र पर चर्चा मेरी
वह हमारी भाषा में यह, यहां रसूल अपना सोता है,
अपनी भाषा में ही जिसने, अपने मन भावों को गाया
त्सादा के हमज़ात सुकवि का, अरे यही बेटा होता है।

नोटबुक से। एक पहाड़ी नौजवान के मां-बाप इस बात के ख़िलाफ थे कि वह रूसी लड़की से शादी करे। मगर वह लड़की शायद अपने अवार प्रेमी को बहुत प्यार करती थी। एक दिन उस नौजवान को अपनी प्रेमिका से अवार भाषा में लिखा हुआ एक खत मिला। नौजवान ने मां बाप को वह खत दिखाया। उन्होंने उसे पढ़ा और बहुत हैरान हुए। इस खत ने उनके दिल पर इतना असर किया कि उन्होंने उस असाधारण पत्र को हाथ में लिये हुए उसी समय उस लड़की को अपने घर लाने की इजाज़त दे दी।

नोटबुक से। लेखक के लिये भाषा वैसे ही है, जैसे किसान के लिये खेत में फसल। हर बाली में बहुत से दाने होते हैं और इतनी अधिक बालियां होती हैं कि गिनना नामुमकिन। पर किसान अगर हाथ पर हाथ रखकर बैठा हुआ अपनी फसल को देखता रहे, तो एक भी दाना उसे नहीं मिलेगा। रई की फसल को काटना और फिर माड़ना चाहिये। मगर इतने पर ही

तो काम समाप्त नहीं हो जाता। माडे अनाज को ओसाना और दानों का भूसे, घास फूस से अलग करना जरूरी होता है। इसके बाद आटा पीसने, गूंधने और रोटी पकाने की जरूरत होती है। पर शायद सबसे ज्यादा जरूरी तो यह याद रखना होता है कि रोटी की चाहे कितनी भी अधिक जरूरत क्यो न हो, सारा अनाज इस्तेमाल नहीं करना चाहिये। किसान सबसे अच्छे दानों को बीजो के रूप मे इस्तेमाल करने के लिये रख लेता है।

भाषा पर काम करनेवाला लेखक सबसे अधिक तो किसान जैसा ही होता है।

कहते है कि बालको ने उस वक्ष को काट डाला, जिसपर एक पक्षी रहता था और उसका घोसला तबाह कर डाला।

"वक्ष, तुम्हें क्या काट डाला गया?"

"क्योकि म बेजबान हू।"

"पक्षी, तुम्हारा घोसला क्यों बरबाद कर दिया गया?"

"क्योकि म बहुत बकबक करता था।"

कहते है कि शब्द तो बारिश के समान होते ह एक बार—महान वरदान है, दूसरी बार—अच्छी रहती है, तीसरी बार—सहन हो सकती है, चौथी बार—दुख और मुसीबत बन जाती है।

विषय

दरवाजे को तोडो नही – वह किसी कठिनाई
के बिना चाभी से खुल जाता है।

द्वार पर आलेख

यह मत कहो – "मुझे विषय दो"।
यह कहो – मुझे आखें दो।

युवा लेखक को सीख

"प्यारे साथियो, मेरी कलम लिखने को बेकरार है। मगर यह समझ मे नहीं आता कि किस विषय पर लिखू। मुझे सामयिक महत्व का कोई विषय बताइये और म उस पर एक बहुत बढिया किताब लिख दूगा।"

लेखक सघ, पत्रिकाओ या समाचारपत्रो के सम्पादक-मण्डलो या लेखको के नाम अपने पत्रो मे युवाजन इस तरह का अनुरोध करते ह। मेरे पास भी ऐसे खत आते ह। मेरे पिता जी के पास भी ऐसे पत्र आया करते थे। कभी कभी वे सिर हिलाते हुए कहते –

"जवान आदमी शादी करना चाहता है, मगर मुसीबत यह है कि किससे शादी करे, उसे यह मालूम नहीं। उसकी नजर मे एक भी लडकी नहीं है, इसलिये कोई भी नहीं जानता कि सगाई करनेवाला को कहा भेजा जाये।"

सस्मरण। एक बार दागिस्तान के लेखक-सघ मे अबूतालिब का खत आया। कवि ने लिखा था कि उन्हें एक महीने के लिये दूरस्थ पहाडी गावों

मे सामग्री जुटाने के लिये भेज दिया जाये। प्रबन्ध-समिति की बैठक में अबूतालिब से पूछा गया कि वे किस बारे में, किस विषय पर लिखना चाहते हैं। युसुफ शायर हंसी उठे –

"क्या शिकारी पहले से ही यह जान सकता है कि कौन-सा शिकार उसके सामने आ जायेगा – खरगोश, हंस, भेड़िया या लाल लोमड़ी? क्या कोई योद्धा पहले से ही यह जान सकता है कि लड़ाई के मैदान में वह बहादुरी का कौन-सा कारनामा कर दिखायेगा?"

मैं भी उस बैठक में उपस्थित था। अबूतालिब के शब्दों ने मेरे दिल में घर कर लिया।

मुझे ऐसे लोगों की वजह से हमेशा हैरानी होती है, जो लेखक से कुरेद-कुरेदकर यह पूछते हैं कि अगले कुछ सालों में वह क्या लिखने का इरादा रखता है। यह सही है कि किस तरह की चीज़ वह लिखना चाहता है, उसकी कुछ मोटी-सी रूप रेखा लेखक के दिमाग में होती है। शायद वह यह योजना बना सकता है कि उपन्यास लिखेगा या तीन खण्डोंवाला बड़ा उपन्यास लिखेगा, मगर कविता कविता तो अप्रत्याशित ही आती है, उपहार की तरह। कवि का धंधा योजनाओं के कठोर बन्धनों को नहीं मानता। कोई अपने लिये इस तरह की योजना तो नहीं बना सकता – आज सुबह के दस बजे मैं सड़क पर मिल जानेवाली लड़की से प्रेम करने लगूंगा। या यह कि कल शाम के पांच बजे किसी नीच आदमी से नफ़रत करने लगूंगा।

कविता गुलाबों के बगीचे या क्यारियों में खिलनेवाले फूलों के समान नहीं है। वहां वे हमेशा हमारे सामने होते हैं – हमें उन्हें खोजना नहीं पड़ता। कविता तो मैदानों, ऊंची चरागाहों में खिलनेवाले फूलों की तरह होती है। वहां हर कदम पर नया, अधिक सुन्दर फूल पाने की आशा बनी रहती है।

भावनाओं से संगीत का जन्म होता है, संगीत से भावनाओं का। किसे पहला स्थान दिया जाये? आज तक इस सवाल का जवाब नहीं मिल सका कि मुर्गी पहले पैदा हुई या अंडा? ठीक ऐसा ही यह सवाल है – लेखक विषय को जन्म देता है या विषय लेखक को? विषय – यह तो लेखक का सम्पूर्ण संसार है, सम्पूर्ण लेखक है। विषय के बिना उसका अस्तित्व ही नहीं होता। हर लेखक का अपना ही विषय होता है।

विचार और भावनायें पक्षी हैं, विषय आकाश है, विचार और भावनायें हिरन हैं, विषय जंगल है, विचार और भावनायें बारहसिंगे हैं, विषय पर्वत है, विचार और भावनायें रास्ते हैं, विषय वह नगर है, जिधर ये रास्ते ले जाते हैं और वापस में आ मिलते हैं।

मेरा विषय है—मातृभूमि। मुझे उसे खोजने और चुनने की जरूरत नहीं। हम तो अपने लिये मातृभूमि नहीं चुनते, मगर मातृभूमि ने हमें शुरू से ही चुन लिया है। आकाश के बिना उक़ाब, चट्टानों के बिना पहाड़ी बकरा, तेज और निर्मल जलवासी नदी के बिना ट्राउट और हवाई अड्डे के बिना हवाई जहाज नहीं हो सकता। ऐसे ही मातृभूमि के बिना लेखक नहीं हो सकता।

मुर्ग़ मुर्ग़ियों के बीच मंडराते मे धीरे धीरे चलनेवाला उक़ाब—उक़ाब नहीं रहा। सामूहिक फ़ार्म की भेड़-बकरियों के बीच चरनेवाला पहाड़ी बकरा—पहाड़ी बकरा नहीं रहा। मछलीघर मे तैरनेवाली ट्राउट—ट्राउट नहीं रही। अजायबघर में रखा हुआ हवाई जहाज—हवाई जहाज नहीं रहा।

ठीक ऐसे ही बुलबुल के तराने के बिना बुलबुल नहीं हो सकती।

विषय के बारे में कुछ और। बचपन से ही एक दृश्य मुझे बहुत प्रिय है। ऐसा होता कि जब कभी मैं अपने पिता जी के पहाड़ी घर की छोटी-सी खिड़की खोलता, मुझे गांव के दामन में मेज़पोश की तरह बिछा हुआ एक हरा भरा, थोड़ा पठार दिखाई देता। सभी ओर से चट्टानें उसके ऊपर झुकी होती थीं। चट्टानों के बीच टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडियां थीं, जो बचपन में मुझे सांपों की याद दिलाती थीं और गुफाओं के मुंह मेरे लिये हमेशा ही दरिंदों के जबड़ों जैसे होते थे। पहाड़ों की पहली क़तार के बाद दूसरी क़तार नजर आती थी। पहाड़ गोल-मोल, काले-काले और ऊंट की पीठ की तरह अबरीले-से लगते।

अब मैं यह समझता हूं कि स्विट्ज़रलैंड या नेपुल्स में अधिक सुन्दर जगहें भी हैं, मगर मैं जहां कहीं भी गया, मेरी आंखों ने इस धरती के कैसे भी सौंदर्य को क्यों नहीं देखा, मैं अपने उस सुदूर बचपन के चित्र से, पहाड़ी घर की छोटी-सी खिड़की के चौखटे मे जड़े चित्र से उसकी तुलना करता हूं और दुनिया के सभी सौन्दर्य उसके सामने फीके पड़ जाते हैं। यदि किसी कारणवश मेरा अपना गांव और उसके इर्द गिर्द की जगहें न होतीं, यदि वे सब मेरी स्मृति में सजीव न रहते, तो मेरे लिये सारी

दुनिया छाती होती, मगर दिल के बिना, मुह होती, मगर जबान के बिना, आखें होती, मगर पुतलियों के बिना, घोंसला होती, मगर पक्षियों के बिना।

इसका हरगिज यह मतलब नहीं है कि अपने विषय को म अपने गाव और अपने घर की सीमाओं मे बन्द कर रहा हू, कि अपने मनपसन्द विषय के गिर्द किले की ऊची दीवारें खडी कर रहा हू।

ऐसी जमीन भी होती है, जहां हल से गहरी जोताई की जाती है, मगर जोती हुई मोटी तह के नीचे जमीन की नई नम तह नजर आती है। ऐसी जमीन भी होती है कि जिस पर हल्की-सी जोताई करते ही नीचे कठोर पत्थर नजर आने लगते ह। ऐसी जमीन भी होती है, जिसकी हल्की सी तह उठाने के पहले ही पत्थर नजर आते ह। म ऐसी जमीन पर हल चलाने और मेहनत करने का इरादा नहीं रखता, क्योंकि जानता हू कि वहा अच्छी फसल नहीं होगी।

मातृभूमि के प्रति अपने प्यार को म उस घोडे की तरह, जिसने अच्छी तरह काम किया है और जिसे अब मदान मे घास चरनी चाहिये, पगहा बाधकर या पिछाडी डालकर नहीं रखना चाहता। म तो घोडे की लगाम उतारकर उसकी पसीने से तर गम गदन थपथपाता और यह कहता हू—जाओ, जाकर मौज से चरो, शक्ति बटारो। मातृभूमि के प्रति मेरी भावना मे आजादी से चरनेवाले घोडे की तरह कुछ चन और मस्ती है।

दुनिया के काय कलापों को म अपने पहाडी घर, अपने गाव, अपने दागिस्तान, मातृभूमि के प्रति अपनी भावना के अन्तगत नहीं खोजना चाहता। इसके उलट, दुनिया के सभी काय-कलापों, इसके सभी कोनो मे म मातृभूमि की भावना अनुभव करता हू। इस ग्रथ मे सारी दुनिया मेरा विषय है।

मुझे याद है कि दूर दराज के और खूबसूरत सातियागो मे मुर्गों ने मुझे जगा दिया था। जागने पर कुछ मिनट तक मुझे ऐसा लगा मानो म छोटे से पहाडी गाव मे हू। इस तरह सातियागो के मुर्गे मेरी रचना का विषय बने।

जापान मे, और भी अधिक सुदर कामाकूर शहर में मुझ सौदय प्रतियोगिता देखने का अवसर मिला। यहा 'रूप की महारानी' चुनी जानेवाली थी। जापानी सुदरिया कतार बाध हमारे सामने आइ। मने बरबस ही उनके साथ अवार पहाडो मे रह जानेवाली अपनी उस "एकमात्र"

से तुलना की और उन मे मुझे वह नहीं मिला, जो मेरी महारानी मे है। इस तरह जापानी सुदरियां और जापानी रूप की महारानी मेरा विषय बनीं।

नेपाल मे बौद्ध-मन्दिरों, शाही महलो और बाईस चश्मो को, जो सभी बीमारियां दूर करते ह, सभी जादू-टोनों, सभी बुराइयों को दूर भगाते ह, जो भरकर देखने के बाद आखिर म काठमड पहाडों की खडी चढ़ाइयो पर चढ़ा। इन पहाडो ने मुझे अपने दागिस्तान की याद दिला दी और शानदार तथा आलीशान महलों और मन्दिरो की तुलना मे उन्हें देखकर दिल को कहीं ज्यादा खुशी हुई। वास्तुशिल्प की विचित्र कृतियों के मुकाबले मे मुझे मामूली पहाड कहीं ज्यादा क़ीमती लगे। मेरे दिमाग़ में यह ख्याल आया कि चमत्कारी चश्मे नहीं, बल्कि ये पहाड सभी बीमारियों, सभी बुराइयों को दूर भगा सकते ह। इस तरह नेपाल के बौद्ध-मन्दिर और पवत मेरी रचना का विषय बन गये।

बडे-बडे और कोलाहलपूण भारतीय नगरो के बाद मुझे कलकत्ता के नजदीक एक छोटे-से गाव मे ले जाया गया। बडे-से खलिहान में अनाज माडा जा रहा था, बल गेहू के सुनहरे पूलों पर चक्कर काट रहे थे। दुनिया के एक भी सग्रहालय, एक भी थियेटर से मुझे इतनी खुशी नहीं मिली, जितनी अपने खुरों से गेहू के सुनहरे पूलो को धीमी चाल से माडनेवाले इन बलों को देखकर। मुझे लगा मानो म अपने बचपन और प्यारे गाव मे लौट गया हू। इस तरह कलकत्ते का निकटवर्ती गाव मेरा विषय बना।

मैं देख चुका हू — हिन्देशिया के पहाडों मे हमारे पहाडों की तरह ढोल बजते, न्यूयाक की सडकों पर चेर्केसी जातीय पोशाक पहने किसी काकेशियाई को घूमते, इस्ताम्बूल और पेरिस मे वे दुखी पहाडी लोग, जिन्होंने खुद अपने को देश निकाला दे रखा है और जो दुनिया के सबसे बदक्स्मत लोग ह, लन्दन की प्रदशनी मे बालखारी के मशहूर कुम्हारो के मिट्टी के बतनो की प्रदशनी, वेनिस मे लाकों के त्सोकरा गाव के रज्जु-नतको के करतबो से आश्चयचकित होनेवाले दशक, पीटसबग की पुरानी किताबों की एक दुकान मे शामिल के बारे मे एक पुस्तक।

सभी जगहो पर, जहा कहीं भी म गया, दागिस्तान के साथ मेरा एक तार-सा जुडा रहा है।

अगर किसी योद्धा पर कई आदमी तलवारें लेकर एकसाथ टूट पड़ते हैं, तो समझ लो कि उसकी शामत आ गई। वह एकसाथ सामने और पीठ से अपना बचाव नहीं कर सकता। पर यदि उसे कोई चट्टान मिल जाये, जिसके साथ वह अपनी पीठ टिका सके, तो स्थिति इतनी बिगड़ नहीं पाती। पीठ को चट्टान के साथ टिकाकर चुस्त और ताक़तवर योद्धा एकसाथ दो या तीन दुश्मनों से भी लड़ सकता है।

दाग़िस्तान मेरे लिये ऐसी ही चट्टान है। वह मुझे कठिन से कठिन परीक्षाओं मे उत्तीर्ण होने मे मदद देता है।

यात्री जिन देशों की यात्रा करते हैं, उनके गीत स्वदेश लेकर आते हैं। मगर मेरी मुसीबत तो यह है कि कहीं भी क्यों न जाऊं, हर जगह से दाग़िस्तान के बारे मे ही गीत लेकर लौटता हूं। हर कविता के साथ मेरी उससे मानो नयी जान-पहचान होती है, उसे नये ही सिरे से समझता और प्यार करता हूं। मेरे लिये मेरी मातृभूमि दाग़िस्तान अक्षय और असीम भण्डार है।

नोटबुक से।

"उकाब, तुम्हारा सबसे प्यारा गीत किसके बारे मे है?"

"खड़े पहाड़ों के बारे मे।"

"सागर पक्षी, तुम्हारा मनपसन्द गीत किसके सम्बन्ध मे है?"

"नीले सागर के सम्बन्ध मे।"

"कौवे, तुम्हारा सबसे प्यारा गीत किसके बारे मे है?"

"लड़ाई के मैदान मे पड़ी मज़ेदार लाशों के बारे मे।"

साहित्य के भी अपने पक्षी हैं — उकाब और सागर पक्षी। एक पहाड़ों का कीर्तिगान करता है, दूसरा — सागर का। हरेक की अपनी मातृभूमि है, अपना विषय है। मगर कौवे भी हैं। वे तो अपने ही को सबसे अधिक प्यार करते हैं। कौवा जब युद्ध क्षेत्र मे पड़ी लाश की आंख निकालता है, तो यह नहीं सोचता कि वह आंख वीर की है या कायर की। मैं ऐसे साहित्यकारों को भी जानता हूं, जो आज वह करते हैं, जिससे आज लाभ है और कल वह करेंगे, जिससे कल लाभ होगा।

विषय के बारे मे कुछ और। विषय — यह तो माल-मत्ते से भरा सन्दूक है। शब्द — वह इस सन्दूक की चाबी है। मगर सन्दूक में अपनी दौलत होनी चाहिये, परायी नहीं।

कुछ लेखक एक विषय से दूसरे विषय पर छलांग लगाते रहते हैं, एक की गहराई में भी नहीं उतर पाते। वे ज़रा सन्दूक का ढक्कन उठाते हैं, ऊपर पड़े कपड़ों को ही हिलाते डुलाते हैं और झटपट आगे बढ़ जाते हैं। सन्दूक का असली मालिक तो यह जानता है कि अगर सावधानी से एक के बाद एक चीज़ बाहर निकाली जाये, तो सबसे नीचे हीरे-मोतियों से भरी मंजूषा हाथ लगेगी।

एक विषय से दूसरे विषय पर छलांग लगानेवाले लेखक अनेक शादियां करने के लिये पहाड़ों में विख्यात क़ासागालोव के समान हैं। उसने जसे तसे अट्ठाईस बार शादी की, मगर आखिर में बिल्कुल अकेला ही टापता रह गया।

फिर भी अकेली क़ानूनी बीवी से विषय की तुलना करना ठीक नहीं होगा। एक मां या एक बच्चे से भी उसकी तुलना नहीं की जा सकती। कारण कि हम एसा नहीं कह सकते—यह मेरा विषय है, खबरदार, जो किसी ने इसे छुआ।

विषय तो मेरा है, मगर सभी इस विषय को ले सकते हैं। मने एक लेखक को किसी दूसरे लेखक को इसलिये भला-बुरा कहते सुना था कि उसने उसका विषय "चुरा" लिया था। वह कह रहा था—"इरचे ग़ाज़ाख* के बारे में लिखने का हक़ तुम्हें किसने दिया? तुम तो जानते ही हो कि यह मेरा विषय है, कि इरचे ग़ाज़ाख के बारे में मैं लिखता हूं। यह तो दिन दहाड़े चोरी है!" यह लेखक एसे आपे से बाहर हुआ जा रहा था मानो उसी वक्त कोई उसकी प्रेमिका ले उड़ा हो।

उसे जवाब भी ऐसा करारा मिला, जो कोई पहाड़ी ही दे सकता था—

"इमाम वही बन सकता है, जिसकी तलवार में दम हो, जिसकी धार तेज़ हो। दुलहन उसकी नहीं होती, जिसने सगाई करने के लिये बिचौलियों को उसके घर भेजा हो, बल्कि उसकी होती है, जो उसे अपनी बीवी बना लेता है। सभी अन्य विषयों की भांति इरचे का विषय भी उसी का होगा, जो उसके बारे में बेहतर लिखेगा।"

हां, विभिन्न लेखक स्वतन्त्र रूप से एक ही विषय पर काम कर सकते हैं। साहित्य में सामूहिक काम नहीं हो सकता। हर लेखक का अपना खेत,

---

*पिछली शताब्दी का कुमीक कवि और कुमीक साहित्य का जन्मदाता।

जमीन का अपना टुकड़ा होता है, जो चाहे कितना भी छोटा क्यों न हो। मगर मैं किसी को इस आधार पर अपने खेत के पास आने से नहीं रोकता कि खुद अपने खण्डों के पास नहीं जाता। मेरी सीमा रेखा पर आपको न तो कुत्ते नजर आयेंगे और न बन्दूक लिये पहरेदार। मगर न सीमा रेखा है कहां, उसे कैसे निश्चित किया जाये, किस चीज से उसके गिर्द बाड़ बनायी जाये? मेरा विषय न तो निषिद्ध चरागाह है और न मसजिद की ऐसी जगह हो, जहां किसी पराये आदमी का पांव नहीं पड़ना चाहिये।

दागिस्तान के लेखकों का सम्मेलन हो रहा था। उसमें बहस चल रही थी। एक वक्ता ने कहा—

"दागिस्तानियों को दूसरे देशों और दूसरे लोगों के बारे में लिखने की क्या पड़ी है? स्पेन के बारे में स्पेनी, जापान के बारे में जापानी और उराल के उद्योगों के बारे में उराली लिखें। अगर किसी पक्षी का घोंसला एक बाग में है, तो क्या वह अपना तराना गाने के लिये किसी दूसरे बाग में उड़कर जायेगा? क्या पहाड़ों से ककड़ोंवाली मिट्टी घाटी में लानी चाहिये, जहां उसके बिना ही अत्यधिक उपजाऊ मिट्टी है? दुम्बे की चर्बीदार दुम को भूनने से पहले क्या उस पर और घी चुपड़ने की भी जरूरत होती है?"

सम्मेलन में एक अन्य जनतन्त्र से आया हुआ मेहमान भी उपस्थित था। उसने वक्ता को यह जवाब दिया—

"जैसे पक्षियों का घोंसला होता है, वैसे ही दरिन्दों की मांद होती है। मगर सूरज सभी जानवरों को रोशनी देता है और बारिश सभी वृक्षों को सींचती है। इन्द्रधनुष सभी को अपनी एक जैसी छटा दिखाता है। बिजली ऊंचे पहाड़ों में भी चमकती है और गहरे दर्रों में भी। बादल भी ऐसे ही सभी जगह गरजता है। विदेश से लाये गये चावल से भी बढ़िया पुलाव तैयार किया जा सकता है। मैं आपके सम्मेलन में बहुत दूर से आया हूं। सो भी बधाई देने के लिये। मगर अब मुझे यह लगता है कि आपके पहाड़ों, आपके सागर, आपके नेक पुरुषों और गरिमा-सम्पन्न सुन्दर नारियों से मुझे प्यार हो गया है। अगर मैं आपके बारे में लिखूंगा, तो मेरे लोग इसके लिये मेरा आभार मानेंगे। अगर आप मेरी जन्मभूमि के बारे में लिखेंगे, तो इसमें भी कुछ बुराई नहीं होगी। प्यार की तरह लेखक भी

अपने विषय के चुनाव में स्वतन्त्र होता है। क्या प्यार कभी अनुमति लेकर किसी दिल मे अपनी जगह बनाता है?"

सम्मेलन मे उपस्थित सभी लोगों ने खूब तालियां बजायीं, मेहमान के शब्द तीर की तरह पने थे और ठीक निशाने पर बठे थे। मगर तालियां बजाते और मेहमान से लगभग पूरी तरह सहमत हुए भी कुछ विचार मेरे दिमाग़ मे आते रहे।

दूसरे देशो और दूसरे लोगो के बारे में लिखना तो अच्छी बात है, मगर अपने विषय मे पूरी तरह पारगत होने के बाद ही ऐसा करना चाहिये।

मेरा छोटा-सा दाग़िस्तान और मेरी बहुत बडी दुनिया। ये दो नदिया ह, जो घाटी मे पहुचकर एक हो जाती ह। आसू की दो बूदें ह, जो दो आखो से छलककर, दो गालो पर बहती ह, मगर एक ही ग़म या एक ही खुशी से पदा होती ह।

दो बूदें कवि क गालो पर, गिरी नमी की
एक बूद दायें पर आयी एक बूद बायें पर छनकी,
एक खुशी की, एक गमी की,
एक हृदय का क्रोध बन गयी, एक प्यार बन मन का छलकी।

नन्ही-नन्ही य दो बूद, शात बडी
शक्तिहीन ह अलग अलग पर, यदि दोनो मिल जायें,
व कविता का रूप ग्रहण कर तब अनुपम
बिजली सी कडके फिर बादल बनकर जल बरसायें।

मेरा छोटा-सा दाग़िस्तान और मेरी बहुत बडी दुनिया। बस, यही है मेरी ज़िन्दगी, मेरा गीत, मेरी किताब, मेरा विषय।

जो उक़ाब ऊची चट्टानों से घाटी के विस्तारों मे उडान नहीं भरता—बुरा उकाब है।

जो उकाब घाटी के विस्तारो से ऊची चट्टानो की ओर नहीं लौटता—बुरा उकाब है।

मगर उकाब के लिये ऐसा करना आसान है। वह पदा ही उकाब हुआ है और चाहने पर भी सागर पक्षी या कौवा नहीं बन सकता। अगर लेखक इस श्रेष्ठ और साहसी पक्षी के गुण लेकर पदा नहीं हुआ, तो उसके लिये उक़ाब बनना कठिन है।

हमारे यहा जो आदमी कुमुज बजाना नहीं जानता, उसके बारे में तसल्ली देते हुए कहा जाता है—कोई बात नहीं, दूसरी दुनिया में सीख जायेगा।

कितने अधिक ह ऐसे लोग, जो प्यार या घृणा की भावनाओं से प्रेरित होकर नहीं, बल्कि केवल गध से प्रेरित होकर लेखनी उठाते ह!

बात यह है कि गाव मे आनेवाला मेहमान यह सोचते हुए कि कौन-सा घर अपने लिये चुने, आखिर चिमनी से निकलनेवाले धुए की गध के आधार पर ही ऐसा करता है। एक घर के धुए मे मकई की रोटियो की गध होती है और दूसरे के धुए मे भुने मास की।

दूल्हा भी तो दो लडकियो मे से, जिनमे से एक बुद्धू और दूसरी समझदार है, बुद्धू को केवल इसलिये चुन लेता है कि उसके पास दौलत ज्यादा है।

ऐसे भी तो लेखक ह, जिन्हें इस बात से कोई फ़र्क नहीं पडता कि वे किस विषय पर या किस देश के बारे मे लिखते ह। वे तो उन मुनाफाखोरों जसे ह, जो यह सोचते ह कि वे जितनी अधिक दूर जायेंगे, अपना माल उतना ही ज्यादा महगा बेच पायेंगे।

वे मुझे फारखालशा नाम की उस लडकी की याद दिलाते ह, जो यह मानती थी कि अपने गाव मे उसके लायक़ कोई लडका नहीं है, इसलिये दूसरे गाव के नौजवानो पर आस लगाये बठी रही और जसा कि आसानी से यह अनुमान लगाया जा सकता है, आखिर चिर कुमारी ही रह गयी।

जगल में जानेवाले दो पहाडियो का किस्सा। किसी गाव के दो पहाडी आदमी जुए के लिए लकडी काटने को जगल मे गये। जाहिर है कि उनके पुराने जुए काम के नहीं रहे होंगे।

एक को तो फौरन ढग का वृक्ष मिल गया और उसने दो बढ़िया सूख तने काट लिये। मगर उसके साथी को ऐसा ही लगता गया कि अगला वृक्ष बेहतर होगा, अगला वक्ष और भी ज्यादा अच्छा होगा। वह दिन भर ऐसे ही जगल मे भटकता रहा और जो कुछ उसे चाहिये था, उसे चुनने के बारे मे अपना इरादा न बना सका। आखिर उसने वे दो तने काट लिये, जो शुरू मे मिलनेवालों की तुलना मे कहीं बुरे थे। वह शाम होने पर तब घर लौटा, जब पहला पहाडी नये जुए का उपयोग कर खेत जोतने के बाद घर लौट रहा था।

अबूतालिब ने यह क़िस्सा मुझे इस सिलसिले मे सुनाया था कि एक दाग़िस्तानी कवि बहुत लम्बी यात्रा के बाद दो घटिया-सी कवितायें रचकर घर लौटा था।

"जो गीत अपने घर मे नहीं सीखा गया, वह घर से दूर नहीं सीखा जा सकता," बुज़ुर्ग शायर ने यह नतीजा निकाला और फिर इतना और जोड दिया—"कवि कभी-कभी उस पहाडी आदमी जसे होते ह, जो दिन भर अपनी फर की टोपी खोजता रहा, जबकि वह उसके मूर्खतापूर्ण सिर पर मौज मना रही थी।"

विषय के बारे मे कुछ और। एक ऐसा भी दिन था, जब म पहली बार अपना घर छोडकर सफ़र को निकला था। मा ने जलता हुआ लम्प खिडकी मे रख दिया था। म थोडा चलता, मुडकर देखता, फिर चलता, मगर मेरे घर का लम्प कुहासे और अधेरे को चीरकर मुझे अपनी झलक दिखाता रहा।

छोटी-सी खिडकी मे रखा हुआ लम्प अनेक वर्षों के दौरान, जब म दुनिया में घूमता रहा, मेरी आखों के सामने टिमटिमाता रहा। जब अपने घर लौटकर मने इस खिडकी में से झाका, तो मुझे वह सारी बडी दुनिया, जो म अब तक घूम चुका था, दिखाई दी।

लेखक को विषय भला कौन दे सकता है? उसे सिर, आंखें, कान और दिल देना कहीं अधिक आसान है। जो लेखक प्यार या घृणा से प्रेरित होकर नहीं, बल्कि गद्य या अधिक सही तौर पर, अपनी सूघने की शक्ति के आधार पर विषय खोजते ह, वे युग-पुत्र नहीं बन सकते। वे अपने समय के नहीं, एक दिन के बेटे होते ह। इसके अलावा बहरी दुलहन से भी उनकी तुलना की जा सकती है।

बहरी दुलहन का किस्सा। कभी किसी गांव म एक बहरी लडकी रहती थी। दूसरे गांव के एक नौजवान ने, जिसे उसके बहरेपन के बारे म कुछ भी मालूम नहीं था, उसके घर सगाई करनेवाले भेज दिये। ढंग से सारा प्रबन्ध हो गया और शादी शुरू हुई। बेशुमार मेहमान जमा हो गये। दुलहन यह नहीं चाहती थी कि शादी म शामिल होनेवाले सभी लोगों को उसके बहरेपन के बारे में मालूम हो। उसने अपनी सहेली से कहा कि वह सारा वक्त उसके क़रीब बैठी रहे। अगर लोग कोई ख़ुशी भरी बात सुनायें यानी ऐसी कि जिसपर हसना चाहिये, तो सहेली उसके बायें

कंधे पर चुटकी काटे। अगर दुख और उदासी भरी कोई बात सुनायी जाये, तो सहेली दायें कंधे पर चुटकी काटे।

शादी के वक्त दुलहन का खुद बोलना-बतियाना जरूरी नहीं होता, उसका चुप रहना ज्यादा अच्छा होता है। इसलिये कुछ वक्त तो सारा मामला ढंग से चलता रहा। जब हंसना जरूरी होता, तो दुलहन हंसती और इर्द गिर्द जमा लोग जब दुखी होते, तो वह भी दुखी हो जाती।

मगर बाद में उसकी सहेली यह भूल गयी, जो तय किया गया था, और जब बायें कंधे पर चुटकी काटनी होती, तो वह दायें पर काटती यानी सब कुछ उलट करने लगी। दुलहन दुख और गहरी सोच के क्षणों में ठहाके लगाती और, जब सब हंसते, तो वह आहें भरती, दुखी होती।

दुलहा दुलहन को गौर से देखने लगा, देखता रहा और इस नतीजे पर पहुंचा कि वह बिल्कुल मूर्ख है। उसने उसी क्षण उस रास्ते से उसे वापिस भेज दिया, जिससे वह आई थी।

तो असली लेखक को बहरी दुलहन की तरह दायीं और बायीं ओर से चुटकियों की जरूरत नहीं होनी चाहिये। उसके अपने ही दिल की पीड़ा, सिर्फ अपनी ही खुशी को उसे कलम उठाने के लिये मजबूर करना चाहिये। वह इसलिये नहीं हंसता है कि दूसरे हंसते हैं और इस कारण उसे भी ऐसा ही करना चाहिये। वह इसलिये दुखी नहीं होता कि दूसरे दुखी हैं और इस कारण उसे भी उनका साथ देना चाहिये। नहीं, शादी को तो उसे अपना ही रंग देना चाहिये। कवि जब हंसे, तो इर्द गिर्द सभी खुश हो उठें। कवि जब अपने दिल का दर्द उनके सामने रखे, तो उन सब के दिल दर्द से टीस उठें।

अगर कोई अभी भी मेरे दृष्टिकोण से सहमत नहीं और यह मानता है कि दूसरों के बताये हुए विषय पर लिखना ज्यादा आसान है, तो वे मेरे साथ घटी हुई निम्न घटना से सबक लें।

संस्मरण। तब मैं खूंजह की गढ़ीवाले प्रारम्भिक स्कूल की दूसरी कक्षा में पढ़ता था। नीली आंखोंवाली नीना नाम की एक लड़की, जो हमारी अध्यापिका की बेटी थी, मेरे साथ एक ही डेस्क पर बैठती थी। मुझे वह बहुत अच्छी लगती थी मगर उससे यह कहने की मुझे हिम्मत नहीं होती

थी। आखिर मने एक पुर्जे पर यह लिखकर उसे देने का फसला किया। मगर यह भी कुछ आसान काम नहीं था, क्योंकि उस वक्त तक मुझे रूसी में एक शब्द भी नहीं लिखना आता था। चुनाचे मने अपने एक दोस्त से मदद करने की प्रार्थना की। वह समझ में न आनेवाले कुछ रूसी शब्द बोलता गया और म रूसी अक्षरों मे उन्हें लिखता गया। म सोच रहा था कि प्यार के बहुत बढ़िया शब्द, जसे कि म नीना को लिखना चाहता था, लिख रहा हूं। कांपते हाथों से वह पुर्जा मने नीना को दिया, कांपते हाथो से उसने उसे लिया और पढ़ने लगी। अचानक उसका मुह लाल हो गया, वह क्लास से बाहर भाग गयी और फिर डेस्क पर उसने मेरे साथ नहीं बठना चाहा। बाद में पता चला कि मेरे सारे प्रेम-पत्र मे बहुत ही अश्लील और गन्दे गन्दे शब्द भरे हुए थे।

एक और घटना याद आ रही है। म साहित्य-संस्थान का विद्यार्थी था और नीना लेनिन नामक अध्यापक प्रशिक्षण संस्थान की। दिसम्बर के महीने मे एक दिन उसने मुझे अपने यहां आने की दावत दी। मुझे मालूम था कि उसने मुझे अपने जन्म दिन पर बुलाया है। जाहिर है कि मुझे तोहफ़ों की फ़िक्र हुई, मगर मुझे लगा कि अगर म नीना के बारे में कविता लिखू, उसे सब के सामने पढ़कर सुनाऊ और फिर उसे भेंट करू, तो यह सबसे अच्छा तोहफ़ा रहेगा।

तो इस तरह मने बधाई की कविता लिखी, अपने एक सहपाठी को, जो मेरी ही तरह जवान कवि था, रूसी भाषा मे उसका उल्था करने के लिये राजी किया। मेरा साथी रात भर उस कविता का अनुवाद करता रहा। जब उसने मुझे वह पढ़कर सुनाई, तो म अपनी कविता को पहचान ही नहीं पाया। उसमे अत्यधिक भावुकतापूर्ण भावनायें थीं, प्यार की तड़प और वेदना की बातें थीं। मगर म नीना को जो कुछ कहना चाहता था, उसमे से कुछ भी बाकी नहीं रह गया था।

मगर अब मुझे धोखा देना मुश्किल था। म एक बार ऐसे जाल मे फस चुका था। इसलिये मने अपने साथी से कहा—

"खर, यह कविता तुम अपनी प्रेयसी को उसके जन्म दिन पर पढ़कर सुनाना, क्योंकि यह मेरी नहीं, तुम्हारी कविता है।"

विषय के बारे में कुछ और। विषय सोई हुई मछली की भांति पेट ऊपर को किये हुए सतह पर नहीं तरा करता। वह तो गहराई मे, तेज

और निमल पानी मे होता है। उसे वहां खोजिये, भवर में से, जल प्रपात के नीचे से निकालने की सामर्थ्य पैदा कीजिये। लम्बे और कठोर श्रम से कमाये गये तथा पटरी पर संयोग से मिल जानेवाले धन का क्या एक जैसा ही मूल्य हो सकता है?

पहाडी लोगों मे कहा जाता है कि हम बहुत-से जानवर पकड सकते हैं, मगर वे सभी गीदड और खरगोश ही होंगे। एक जानवर पकडना ही बेहतर है, बशर्ते कि वह लोमडी हो। मगर कोई भी यह नहीं कह सकता कि वह कहां मिलेगी। यह जरूरी बात नहीं है कि सबसे अच्छा जानवर सबसे दूरवाले दर्रे में ही रहता हो।

एक शिकारी जिन्दगी भर कोई रुपहली लोमडी पकडने का सपना देखता रहा। उम्र भर उसकी खोज मे उसने सारे पहाड छान मारे। बुढ़ापे मे उसके लिये दूर दूर जाना मुश्किल हो गया और वह पासवाले दर्रे में, घर के बिल्कुल करीब ही शिकार करने लगा। अचानक वहीं एक दिन उसे रुपहली लोमडी मिल गयी। शिकारी ने लोमडी से पूछा—

"तू अब तक कहां छिपी रही थी? म तो जिन्दगी भर तेरी तलाश करता रहा।"

"म तो सारी उम्र इसी दर्रे मे रही हू," लोमडी ने जवाब दिया। "क्या तुम यह नहीं जानते कि खोज में तो बेशक सारी जिन्दगी बितायी जा सकती है, तो भी पाने के लिये एक दिन या एक घडी की जरूरत होती है?"

हा, हर लेखक के जीवन मे एक दिन आता है, जब वह खुद अपने को पहचान पाता है, जब उसे अपना मुख्य विषय मिल जाता है। इस विषय के साथ उसे बाद मे गद्दारी नहीं करनी चाहिये। अगर वह ऐसा करेगा, तो उसके साथ भी वसी ही बीत सकती है, जसी कि मेरे एक परिचित के साथ बीती।

मेरे एक परिचित के नाटक का किस्सा। एक दागिस्तानी लेखक ने सामूहिक फाम के जीवन के बारे मे एक नाटक लिखा। विषय चाहे बहुत ही महत्त्वपूण था, थियेटर ने नाटक स्वीकार नहीं किया और "नाटक पसन्द नहीं आया" इस बहुत ही घटिया कारण के आधार पर उसे लौटा दिया।

शायद किसी अन्य व्यक्ति के लिये तो यही कारण काफी होता, मगर नाटककार को इससे सन्तोष नहीं हुआ। वह नाराज हो गया और उसने

ठीक जगह पर शिकायती चिट्ठी लिख भेजी। उसी वक्त इस मामले पर गौर करने और जरूरी क़दम उठाने के लिये एक आयोग नियुक्त कर दिया गया। नाटक का अध्ययन करने पर उसका यह सार सामने आया – गेहू की बहुत ही बढ़िया फसल की कटाई के लिये खुशी भरे गीत गाते हुए दो टोलिया आपस मे समाजवादी प्रतियोगिता करती ह।

इस तरह के कथानक वाला नाटक आयोग को अवश्य पसन्द आता और नाटक के रास्ते मे कोई बाधा नहीं आ सकती थी, मगर तभी कुछ दूसरे हालात ने खलल डाल दिया। इसी वक्त यह तय किया गया कि क्रुमीक स्तेपियो मे, जहा हसती गाती टोलिया आपस मे मुकाबला करती हुई फसल बटोर रही थीं, गेहू की जगह कपास बोयी जाये। अब "कपास" की परिस्थितियो मे गेहू के बारे मे नाटक पेश नहीं किया जा सक्ता था। नाटककार ने सोच विचार मे ज्यादा वक्त बरबाद नहीं किया और अपने नाटक मे जरूरी तब्दीलिया करने लगा। नई बोयी गयी कपास मे अभी फूल भी नहीं आये थे कि नाटक को नयी, बढ़िया शक्ल दे दी गयी। नाटक को फिर से थियेटर मे पढ़ा जाने लगा। अभी उसपर विचार विनिमय चल ही रहा था कि एक नया फसला सामने आ गया। उसमे कहा गया था कि क्रुमीक स्तेपियो मे कपास उगाना तो गेहू से भी कम फायदेमन्द है और इसलिये वहा मकई उगायी जानी चाहिये।

मेहनती नाटककार अपने नाटक को फिर से नया रूप देने लगा। मालूम नहीं कि यह मामला आगे क्या करवट लेता, मगर इसी वक्त थियेटर जल गया। मेरे परिचित को बडी मायूसी हुई, वह नदी के खडे तट पर गया और हताशा मे अपने नाटक को नदी की तेज धारा मे बहा दिया। अब उसे नाटक के बारे मे कोई अफसोस नहीं होता।

शायद एक अन्य नाटक का किस्सा सुना देना भी ठीक रहेगा। उसे एक रूसी लेखक ने लिखा और उसका नाम था – 'जोशीले लोग'। यह गेहू कपास का नहीं, "माहीगीरी" का नाटक था। वास्तव मे यह नाटक "माहीगीरी" के बारे मे भी नहीं, बल्कि निम्न विषय से सम्बन्ध रखता था।

एक ऐसी प्रवृति पाई जाती है कि पहाडी लोगो को उनके सदियों पुराने देहातों से निकालकर मदानो मे सागर के किनारे बसाया जाये। इसे "मदानो मे बसाना" कहा जाता है। हम यहा इस मसले की तफसील मे

नहीं जायेंगे। सिर्फ इतना ही कहेंगे कि सदियों से भेड़ें पालनेवाले पहाड़ी लोग सचमुच कभी-कभी मछुए बन जाते हैं। बुरा मछुआ बढ़िया चरवाहे से कहीं बदतर है, यह भी आसानी से समझना मुश्किल है। मगर 'जोशीले लोग' नाटक में यही बताया गया था कि दूर-दराज के एक गांव के पहाड़ी लोग कैसे कास्पियन सागर के मछुए बन गये।

नाटक के सभी पात्र अवार थे और इसलिये नाटककार ने अवार थियेटर को अपना नाटक भेजा। मगर अवार थियेटर ने नाटक अस्वीकार करके लौटा दिया।

नाटककार अब क्या करे? उसकी जगह कोई दूसरा होता, तो शायद परेशान हो उठता और हिम्मत हार बैठता। मगर हम जानते हैं कि शतरंज में चाल मोहरे कभी-कभी ऐसी कठिन परिस्थिति में पड़ जाते हैं, ऐसी जगह धकेल दिये जाते हैं कि उन्हें जीने-मरने का कोई रास्ता नजर नहीं आता। अचानक इसी वक्त वे अपना घोड़ा आगे बढ़ा देते हैं। यह बहुत अप्रत्याशित और बहुत सीधी-सी चाल होती है। बस, सारा पासा ही पलट जाता है। अब सफेद मोहरों को अपनी रक्षा करनी होती है, वक्त रहते अपनी जान बचाकर भागना होता है।

'जोशीले लोग' नाटक के रचयिता ने भी ऐसी सीधी-सी चाल चली। अचानक उसने सभी अवार नामों को कुमीक नामों में बदल दिया और नाटक कुमीक थियेटर को भेज दिया। मगर शतरंजी घोड़ा चलने पर भी बात बनी नहीं। कुमीक थियेटर ने भी मछुए बन जानेवाले चरवाहों के बारे में नाटक प्रस्तुत करने से इनकार कर दिया।

हमारे दागिस्तान में अनेक जातियां हैं। नाटक के पात्र दार्गिन भी बने और लेज़गीन भी, मगर अच्छे मछुए तो फिर भी नहीं बन पाये। भूखे कुत्ते की तरह जिसे घर में खिलाने को कुछ नहीं था, नाटककार ने अपने नाटक को बाहर सड़क पर छोड़ दिया। कुत्ते ने बहुत से दरवाजों के चक्कर लगाये, मगर उसे कहीं एक भी हड्डी नहीं मिली।

कुछ साल बाद नाटककार उच्च साहित्यिक पाठ्यक्रमों में शिक्षा पाने के लिये मास्को चला गया। तब मखचकला में यह खबर पहुंची कि उसके मछुए जिप्सी बन गये हैं। जिप्सियों के "रोमेन" थियेटर ने नाटक में दिलचस्पी जाहिर की। आखिर लगड़ी दुलहन को दूल्हा मिल गया। खैर, यह शादी बहुत दिनों तक कायम नहीं रह सकी

तो लीजिये, मने अपने परिचित लेखकों के दो नाटकों की एकसाथ आलोचना कर डाली। अगर इस वक्त म लेखकों की सभा मे मच पर खडा होता, तो कभी की मुझे ये आवाजें सुनाई दी होतीं– "अपनी चर्चा करो! अपनी आलोचना करो!"

अपने बारे मे क्या कहू? म तो शायद बहुत खुशकिस्मत होता, अगर लेखकों के ऐसे ही गुनाहों के लिये, जिनकी मने अभी चर्चा की है, मुझपर आरोप लगाये जाते। मगर म तो अपने ऊपर ऐसे गुनाह का बोझ लादे हुए हू, जिनके सामने "कपास" और "मछुओं" सम्बन्धी सारे गुनाह मजाक से लगते ह, हेच और बेमानी ह। जवानी के दिनो मे मने एक ऐसी हरकत की, जिसे याद करके दिल को बहुत तकलीफ होती है।

बाद को मेरे दोस्तो ने बहुत अर्से तक और जी भरकर मुझे भला-बुरा कहा। मेरे लिये यह सजा थी। मगर सबसे बडी सजा तो म खुद अपने भातर महसूस करता हू और कोई भी मुझे इससे अधिक दण्ड नहीं दे सकता था।

पिता जी कहा करते थे कि अगर कोई नीचतापूर्ण और लज्जाजनक हरकत करोगे, तो बाद मे चाहे कितनी भी नाक क्यो न रगडो, वह हरकत तो वापस नहीं लौटा सकोगे।

पिता जी कहा करते थे कि लज्जाजनक हरकत करने और कुछ साल बाद उसके लिये पछतानेवाला आदमी उस ऋणी के समान होता है, जो पुराने और गैर-कानूनी घोषित किये जानेवाले रुपयों से अपना क़र्ज़ चुकाना चाहता है।

पिता जी यह भी कहा करते थे कि अगर तुम बुराई को मनमानी करने दोगे और उसे घर से बाहर आज़ाद छोड दोगे, तो उस जगह को पीटने से क्या लाभ होगा, जहा वह बठी थी?

बलों के चुराये जाने के बाद दरवाजे पर बडा-सा ताला लगाने मे क्या तुक है?

यह सब कुछ सही है। म यह भी जानता हू कि मार पीट के बाद घूसे चलाना बेकार है। मगर मेरे पाठक कभी-कभी मुझे फिर से ख़त लिख देते ह, बीती बात याद दिला देते ह, मेरे घाव को हरा कर डालते ह। वे मानो मेरी खिडकी पर पत्थर फेंकते ह, मानो पुकारकर कहते ह–

"रसूल हमज़ातोव, खिडकी मे से झांको, अपनी सूरत दिखाओ। हमें, अपने पाठकों को यह बताओ कि यह सब कैसे हुआ?"

"क्या और किस बारे मे बताऊ?"

"इस बारे मे कि उन्नीस सौ इकावन में तुमने शामिल को कलंकित करनेवाली कविता लिखी थी और उन्नीस सौ इकसठ मे लिखी गयी कविता मे उसका गुणगान किया। दोनों कविताओ पर रसूल हमज़ातोव का नाम है। अब हम यह जानना चाहते है कि यह एक ही रसूल है या भिन्न रसूल है और किस रसूल पर हम विश्वास करें।

बहुत ही टेढ़ा सवाल है यह। शरीर मे लगनेवाला तीर तो निकाला जा सकता है, मगर क्या दिल मे लगनेवाला तीर निकालना मुमकिन है?

मेरे प्यारे पाठक, मुझे मालूम नहीं कि तुम्हारी उम्र कितनी है। मुमकिन है कि तुम अभी बिल्कुल जवान हो। तुम्हारे जीवन मे क्या ऐसी सीमा रेखायें ऐसी हदें आई है, जो तुम्हे लांघनी पड़ी हों? मुझे एक ऐसी सीमा लांघनी पड़ी है—अपनी भावनाओ को गम्भीरतापूर्वक समझे बिना मैने प्यार किया है। बाद मे मुझे इसके लिए पछताना पड़ा।

ऐसा भी होता है कि पड़ोसियो के घरों की खिड़कियो के बीच बहुत ही तंग-सी गली होती है। हर खिड़की मे पड़ोसी एक दूसरे के सामने खड़े है। वे एक दूसरे को भला-बुरा कहते है, बड़ा छोटे पर और छोटा बड़े पर बुरी हरकतो के आरोप लगाता है। मै एक दूसरे को कोसनेवाले इन पड़ोसियों के समान हू, मगर दोनो खिड़कियो मे मै ही खड़ा हूं। सिर्फ इतना ही फर्क है कि एक खिड़की मे मै जवान हू और दूसरी मे, जैसा इस वक्त हूं।

जैसे कोई बहुत ही सुन्दर लड़की बुद्धू नौजवान को चकाचौंध कर देती है, उसी तरह समय की चमक ने मुझे चौंधिया दिया था। मै हर चीज़ को वैसे ही दोषहीन देखता था, जैसे प्रेमी अपनी प्रेयसी को।

मगर संजीदगी से बात की जाये, तो यही कहना होगा कि मै समय की छाया था। यह तो सभी जानते है कि जैसा डंडा, वैसी ही उसकी छाया। अधिकृत रूप से यह निर्णय किया गया था कि शामिल अंग्रेजों और तुर्कों का भाड़े का टट्टू था और उसका मुख्य उद्देश्य भिन्न जातियों मे फूट डालना था। जहां यह निर्णय किया गया था, मैने उस घर, उस घर के

मालिक पर एतबार किया। तभी मैंने हम लोगों के शामिल का भण्डाफोड़ करनेवाली कविता लिखी थी।

अब कभी-कभी तसल्ली देने के लिये मुझसे यह कहा जाता है—

"हमने सुना है कि तुमने यह कविता खास फरमाइश पर लिखी थी, तुम्हें उसे लिखने के लिये मजबूर किया गया था।"

यह झूठ है! किसी ने भी मेरे साथ ज़ोर-ज़बरदस्ती नहीं की, मुझे मजबूर नहीं किया। मैंने ख़ुद अपनी इच्छा से शामिल के बारे में कविता लिखी थी और ख़ुद ही उसे सम्पादक के पास लेकर गया था। बात सिर्फ इतनी है कि उस वक्त मैं उन पहाड़ी लोगों जैसा था, जो अरबी का एक अक्षर भी न जानते हुए क़ुरान के पन्ने उलटते-पलटते हैं मानो कुछ भी नहीं समझ पाते, फिर भी एक खास प्यारी-सी ख़ुशी महसूस करते हैं।

मैं समय की छाया था। तब मैं यह नहीं जानता था कि कवि कभी छाया नहीं हो सकता, कि वह हमेशा आग, प्रकाश-स्रोत होता है और इस बात से कोई फ़र्क नहीं पड़ता कि वह हल्की-सी रोशनी है या बड़ा सूरज। रोशनी की कभी छाया नहीं होती, रोशनी से तो सिर्फ रोशनी ही होती है।

शायद मैं यह बात कुछ देर से समझा हूं। पर क्या हुआ, सेब भी भिन्न भिन्न क़िस्मों के होते हैं। कुछ जल्दी पक जाते हैं और दूसरे सिर्फ पतझर में जाकर ही रसीले होते हैं। लगता है कि मैं पतझरवाली ही क़िस्म हूं।

तो ऐसे हुआ था यह सब किस्सा। जहां तक मेरे घाव का सम्बन्ध है, तो वह मेरे साथ है।

कभी न भरनेवाला मेरा, घाव हरा हो आया फिर से
फिर से दिल को चीर रहा वह, अंगारे-सा दहकाता,
दादा मुझे सुनाते रहते थे बचपन में जिसके किस्से
लोगों की बातों में उसका ज़िक्र बहुत अक्सर आता।

वह किस्से-सा, लोक-कथा-सा, लेकिन फिर भी ठोस हक़ीक़त
बड़े शौक़ से सुनता था मैं, बचपन में उसकी बातें,
और हमारे घर के ऊपर, सन्ध्या के अरुणिम अम्बर में
उसके वीर सैनिकों जैसी, तिरती बादल की पांतें।

गीत पहाड़ो का था वह तो, उसी गीत को मेरी अम्मा
कभी-कभी गाया करती थी मै तो नही, भुला पाता,
कैसे उनकी निर्मल आखो मे, आसू का कण उजला
साझ समय की चरागाह मे, शबनम कण-सा बन जाता।

वह बुजुर्ग सेनानी पहने चोगा हम पर्वतवाला का
निकट खड़ा खिड़की के मानो झाका करता था घर मे,
उसके सब हथियार बधे रहते थे दायें पहलू मे
और खूब लड़ता था वह तो खड्ग लिये बायें कर मे।

मुझ याद है उस बुजुर्ग ने, जिसका है छविचित्र सामने
बड़े भाइयो को मेरे दो, युद्ध-क्षेत्र मे विदा किया,
ऐसा टक बना देने को, उसका नाम लिखा हो जिसपर
माला भी दी और बहन ने कगन-जोड़ा भेट किया।

और पिता ने मेरे अपने स्वर्गवास से कुछ ही पहले
उसी वीर पर कविता रच दी लेकिन यह क्या गजब हुआ।
वह था ऐसा वक्त कि जब शामिल को समझ न पाये थे हम
लाछन उस पर तब लगते थे, कहते थे सब भला-बुरा।

अगर पिता के दिल को ऐसा, धक्का नही अचानक लगता
शायद जीते और बहुत दिन तभी भूल मैने भी की
कर बैठा विश्वास सहज ही लोगो की झूठी बातो पर
उसी लहर मे बहकर मैने झटपट कविता भी लिख दी।

उस बुजुर्ग का खड्ग कि जिसने बरसो तक साहस, हिम्मत से
खूब दुश्मनो से टक्कर ली उनका खून बहाया था
हो गुमराह भटक चक्कर मे अपनी कच्ची सी कविता मे
एक देशद्रोही का तेगा मैने उसे बताया था।

उसके भारी कदमो की अब रातो को आहट मिलती है
जैसे ही बुझती है बत्ती वह खिड़की मे आ जाता
कभी आहूलगो गाव बचाता रण-आगन मे लड़ता भिड़ता
या गूनीब के उस बजुर्ग-सा वह मेरे सम्मुख आता।

कहता है— मैने युद्धो मे अगारा ज्वालाओ मे भी
अपना कितना खून बहाया और बहुत पीड़ा जानी
उन्नीस घाव सहे थे तन पर बहुत कसकते बहुत टीसते
और बीसवा घाव तुम्हारा, तुझ लड़के की नादानी।

घाव खजरा के थे तन पर, घाव गोलियो के भी थे
तुमने घाव किया जो लेकिन, उसका दद वही बढकर
क्याकि किसी पवतवासी का, मुख पर वार हुआ यह पहला
मेरे दिल, सीने म सीधे उतर गया तेरा खजर।

यह मुमकिन है अब जिहाद भी, नही वक्त की माग रहा है
लेकिन कभी इसी ने तेरे, घर, पवत की रक्षा की,
लगता है मेरा तेगा भी, आज समय से पिछड गया है
आज़ादी हित कभी शत्रु की, इसने कडी परीक्षा ली।

भूल सभी आराम चैन का, एक पहाडी की दढता स
लडता रहा, न सुध थी मुझ को, गीता मौज बहारा की,
कभी-कभी कोडों से मैंने करवाई थी कडी मरम्मत
क्याकार, गायक, कविया की, सुदर रचनाकारो की।

यह सम्भव है भूल बडी की, मने उनको व्यथ सताकर
यह सम्भव है मुझे चाहिये, था गुस्से पर काब पाना
देख तुम्हारे जसे योथ तुकबन्दो को, पर, यह लगता
भूल न की थी तब भी मने, तब भी सच को पहचाना।

इसी तरह सूरज चढने तक, मुझे कोसता शाम, खडा वह
म पहचान उसे लेता हू चाहे हो तम की चादर,
रगी हिना से फूली फूली, लहराती उसकी वह दाढी
नजर मुझे आ जाती टोपी, कसी हुई पगडी उस पर।

क्या जवाब दे सकता हू म? उसके सम्मुख, तेरे सम्मुख
आ मेरी जनता मै सचमुच अपराधी हू बहुत बडा,
था इमाम, उसका था नायब, छोड गया था साथ मगर जो
वह योद्धा हाजी मुराद था, वह सेनानी बडा बडा।

पश्चाताप हुआ तब उसको, निणय किया लौट चलने का
मगर राह म दलदल आया, वह ही उसको निगल गया,
क्या इमाम के पास चलू म? कसा है बेतुका ख्याल यह
नही रास्ता वह मेरा मेरा है, और जमाना आज नया।

बे सोचे-समझे टूटी मन, तब जो कविता लिख डाली थी
शम, उनीदे से भी उसका मुश्किल माल चुका पाना,
अपनी गलती की इमाम से, माफी पाने को इच्छुक हू
पर दलदल म उसी तरह से, नही चाहता धस जाना।

अौर मुझे लगता है ऐसा, मने जिसको ठेस लगाई
किया बड़ा अपमान न उससे क्षमा-दान मिल सकता है
उसे कलंकित करनेवाली रची छिछोरी जो कविता थी
तलवारों से लिखनेवाला, उसे माफ कब करता है।

बेशक ऐसा ही होने दो पर तू मेरी प्यारी जनता
मेरा यह अपराध भुला दे तू तो मुझे क्षमा दे कर,
मेरी प्यारी धरती तू तो देख न अपने कवि को ऐसे
जैसे कोई मां बेटे को देख गुस्से से भर भर।

मुझे मालूम नहीं कि दाग़िस्तानियों ने मुझ मेरी पुरानी कविता के लिये माफ किया या नहीं, नहीं मालूम कि शामिल की छाया ने उसके लिये मुझे माफ किया या नहीं, मगर ख़ुद म अपने को कभी भी माफ नहीं करूंगा।

मेरे पिता जी ने मुझसे कहा था—

"शामिल को नहीं छेड़ना। अगर ऐसा करोगे, तो ज़िन्दगी भर चैन नहीं पाओगे।"

पिता जी की बात सच निकली।

मैं बेटा पर्वतवासी का बचपन से ही सही कड़ाई
डांट-डपट से म परिचित हूं हुई कभी तो ख़ूब पिटाई।
मेरी भूलों अपराधों पर पिता न तरस कभी खाते थे,
ख़ूब ज़ोर से कान ऐंठ कर अक्ल ठिकाने पर लाते थे।

अब म वयस्क समय अब मुझ पर
हर दिन अपनी चोटें करता
ख़ूब ज़ोर से कान खींचकर लाल-लाल वह उनको करता
वैसे ही जैसे हो जाता जब कोई बेसुर दोतारा,
वादक उसका तार खींचकर उसे नया सुर देता प्यारा।

समय! दिनों से साल और सालों से सदियां बनती हैं। मगर क्या है? वह सदियों से बनता है या सालों से? या फिर एक दिन भी न सकता है? वृक्ष पांच महीने तक हरा रहता है, मगर उसके सभी प ो पीला करने के लिये एक दिन या एक रात ही काफी होती है। इस

उलट भी होता है। पाच महीनो तक वृक्ष निपत्ता और कोयले की तरह काला रहता है। उसे हरा भरा करने के लिये एक उजली, सुहावनी सुबह ही काफी होती है। खुशी भरी एक सुबह ही उसपर फूल लाने के लिये काफी रहती है।

ऐसे वृक्ष भी ह, जो हर महीने बाद अपना रग बदलते ह, और ऐसे भी ह, जो कभी रग नहीं बदलते।

मौसमी पक्षी भी ह, जो मौसम के मुताबिक सारी दुनिया मे जहा-तहा उडते रहते ह, और उकाब भी ह, जो कभी अपने पहाड छोडकर नहीं जाते।

पक्षी हवा के रुख के खिलाफ उडना पसन्द करते ह। अच्छी मछली हमेशा धारा के विरुद्ध तरती है। सच्चा कवि अपने हृदय का आदेश मानते हुए "विश्व मत" का विरोध करने से कभी नहीं झिझकता।

नोटबुक से। मेरा एक दोस्त है, एक अवार कवि। पिछले साल उसकी कविताओ का नया सग्रह निकला है। पुस्तक की सारी कविताओ को उसने ऐसे हिस्सों मे बाट दिया है, जसे कि शहरी पलट के कमरों को अलग अलग उद्देश्य के लिये बाटा जाता है। राजनतिक या सामाजिक कविताओ वाला भाग तो जसे अध्ययन-कक्ष है, आन्तरिक भावनाओ या प्रणय की कविताओ का हिस्सा मानो शयन-कक्ष है और सामान्य ढग की कवितायें मानो दीवानखाने के अन्तगत आती ह। मगर समझ मे नहीं आता कि कृषि, अनाज और चरवाहो सम्बन्धी कविताओ को कहा जगह दी जाये—क्या रसोईघर मे?

क्या दागिस्तानी गायकों का प्रतियोगिता मे हिस्सा लेन के लिये पहाडों से आनेवाले गायक ने ठीक ही नहीं किया था? अपनी कविताओं को अलग अलग हिस्सो मे बाटनेवाले हमारे इस कवि ने गायक से अनुरोध किया कि वह हर हिस्से से एक कविता गाये। गायक ने अपने कुमुज को सुर किया, कुछ मिनट तक चुप रहा मानो अपने विचारो को एकत्रित करता रहा और फिर गाने लगा। बहुत देर तक गाता रहा वह। सभी श्रोता घबरा उठे अगर एक भाग से कविता गाते हुए ही उसने इतना वक्त लगा दिया, तो चारों भागों से कवितायें गाते हुए कितना वक्त लेगा, कब गाना खत्म होगा? मगर गायक तभी चुप हुआ और तारों पर हथेली रखकर उसने उनकी झकार को शान्त किया। इसके बाद उसने और नहीं गाया। हुआ यह कि

उसने कवि के मुख्य विचारों और भावनाओं को एक ही गाने में समेट दिया। कवि ने गायक से पूछा कि उसने ऐसा क्यों किया।

"दोस्त," गायक ने जवाब दिया, "यह मेरा कुमुज है और इसमें तीन तार है। मै पहले एक, फिर दूसरा और फिर तीसरा तार तो नहीं बजा सकता।"

विषय के बारे में कुछ और। शायद सभी को यह किस्सा मालूम नहीं है कि एक पहाड़ी आदमी नये, ऊंचे बूट पहनता था और उसे इस बात की बड़ी फिक्र रहती थी कि वे कहीं गंदे न हो जायें। इसलिये वह पंजों के बल चलता। एक दिन वह ऐसी जगह जा फंसा, जहां घुटनों तक कीचड़ था। चुनांचे बेचारे को सिर के बल खड़ा होना पड़ा।

ऐसा होता है कि कवि कभी कभी सृजन नहीं करते, बल्कि अपने को मानो रविवारीय घुड़दौड़ा में हिस्सा लेते हुए महसूस करते है। इसलिये कि इनाम का रूमाल पांच मिनट के लिये घोड़े की गर्दन की शोभा बढ़ा सके, वे उसकी पीठ को चाबुक मार-मारकर लहूलुहान करने को भी तयार रहते है। रूमाल तो उसी दिन उतारना होगा, मगर घाव बहुत अर्से तक नहीं भर पायेंगे। ऐसे कवि तालातल के अलीबुलात की तरह हमेशा इस बात के लिये तयार बर-तयार रहते है कि मगर आप तो नहीं जानते कि अलीबुलात का किस्सा क्या है?

एक बार खूंजह के नायब ने नुकेर (अंग रक्षक) अलीबुलात से कहा—"तयार हो जाओ, कल सुबह तुम्हें तालातल गांव जाना होगा।"

"मै तयार हूं," हुक्म बजानेवाले नुकेर ने जवाब दिया।

पहाड़ो की चोटियां अभी अच्छी तरह रोशन भी नहीं हुई थीं कि अलीबुलात ने अपने घोड़े पर जीन कसा और रवाना हो गया। दोपहर के खाने के वक्त तक वह खूंजह लौट आया। जब वह खूंजह के करीब पहुंच रहा था, तो कुछ परिचित पहाड़ी लोग उससे मिले। उन्होंने पूछा—

"अल्लाह तुम्हारी हिफाजत करे, बहुत दूर से लौट रहे हो क्या, अलीबुलात?"

"हां, तालातल से वापस आ रहा हूं।"

"किस काम से गये थे तालातल?"

"यह मुझे मालूम नहीं। काम के बारे मे नायब ही जानते है। उन्होंने कल मुझसे कहा था कि जाना होगा और बस, मै चला गया।"

हमारे साहित्य जगत में ऐसे अलीबुलात भी विद्यमान है।

विषय के बारे में कविता

जब किशोर था, उन्ही दिना जब किसी ब्याह शादी म जाता,
धूम धाम म, मौज-मजे म, म भी बडे रग म आता।
जाम खनकते, जाम छलकते, और छडी वे मुझे थमाते,
चुनो नाच की साथी कोई, वे तब मुझ को यह बतलाते।
लोगा की उस भीड, शोर मे, मैं घबराता, म शर्माता,
किसे चुनू नाच की साथी, इतना पर म समझ न पाता।
'इसको चुन लो, उसको चुन लो ' बडे मुझे तब यह बतलात,
अपनी समझ-बूझ दिखलाते, मुझे इशारा से समझाते।
अब मै वयस्क हुआ हू मुझ को, साज द दिया, लो तुम गाओ,
अपनी इस सुदर धरती का, गीत सकल जग मे पहुचाओ।
पर फिर से सब शिक्षा देते, फिर से मुझ को राह दिखाते,
तुम यह गाओ, यह मत गाओ, बच्चा समझ मुझे सिखलाते।

विषय के बारे में कुछ और । मने बहुत-से ऐसे युवाजन देखे ह, जो शादी करने से पहले अपने दिल से नहीं, बल्कि रिश्तेदारों, चाचा चाचियों से सलाह-मशविरा करते ह। अपने सृजन-काय मे लेखक को तो प्यार के बिना शादी हो ही नहीं सकती। चाची या मौसी की सलाह से हुई शादी के फलस्वरूप कम से कम जिन्दा बच्चे तो होते ही ह। बेशक ऐसा सुनने मे आया है कि पति-पत्नी मे जितना ज्यादा प्यार होता है, बच्चे उतने ही ज्यादा सुन्दर होते ह। मगर लेखक की प्रेमहीन शादी से तो मत पुस्तको का ही जन्म होता है। लेखक को अपने विषय से नाता जोडने के पहले यह सुन लेना चाहिये कि उसका दिल क्या कहता है।

चाचा चाचियो की सलाह पर लिखी जानेवाली कविताओ का वसा ही हाल होगा, जसा कि मेरे एक दोस्त की किताब का हुआ था।

मेरे दोस्त की किताब के बारे में । साल तो मुझे अच्छी तरह याद नहीं, मगर तब अचानक यह कहा जाने लगा कि हमारे देश को गोगोलों और श्चेद्रीनो की जरूरत है। *सोवियत व्यग्य साहित्य की अचानक जरूरत महसूस हुई।*

मेरा दोस्त थोडा कवि, थोडा गद्यकार और थोडा सम्पादक है। मतलब यह कि साहित्यकार है। उसने उपयुक्त आह्वान पर फौरन कान दिया और

8—631

व्यग्यात्मक कविताओ की एक किताब लिख डाली। उसने चापलूसों, घूसखोरों, कामचोरों और अनेक पत्नियोवालों और ऐसे ही अन्य बुरे तत्वों को अपने व्यग्य बाणो का निशाना बनाया, जो कुल मिलाकर अच्छे सोवियत जीवन पर काली छाया डालते है।

किताब दुकानो पर आई ही थी कि एक आलोचक ने अपने लेख मे कसकर लेखक की खबर ली। उसने लिखा– "हमे गोगोलों और श्चेद्रिनों की जरूरत है, लेखक ने इस नारे को शाब्दिक और बहुत ही सीधे-सरल ढग से समझा है। अब हमे पता चला है कि कसा घटिया और दुष्ट आदमी हमारे नजदीक रहता रहा है। अब हमे पता चला है कि उसका कितना छोटा और काला दिल है। जिन लोगों का उसने अपनी किताब में जिक्र किया है, वे उसे मिले कहा? हमारे सोवियत देश मे क्या सचमुच ऐसे लोग है? नहीं, सोवियत देश मे ऐसे लोग नहीं हो सकते। वे काली आत्मावाले इस व्यक्ति की काली कल्पना की उपज है और उसको कीचड उछालनेवाली किताब से हमारे दुश्मनो को ही लाभ होगा।"

बडा अधिकारी मुखतारबेगोव मेज पर मुक्का मारते हुए चिल्ला उठा–

"कहा देखा तुमने ऐसा काहिल, ऐसा निकम्मा और इसके अलावा पियक्कड टोली-मुखिया?"

"अपने गाव मे," लेखक ने नम्रता से जवाब दिया।

"यह तो झूठा आरोप है। मुझे मालूम है कि तुम्हारे गाव का सामूहिक फार्म अग्रणी है। अग्रणी सामूहिक फार्म मे ऐसा टोली मुखिया नहीं हो सकता।"

थोडे मे यह कि व्यग्यकार खुद ही अपने व्यग्य का शिकार बन गया। एक पोलिश पत्रिका मे छपे कार्टून वाली ही बात हुई। कार्टून मे दो छज्जे दिखाये गये थे, एक पहली और दूसरा चौथी मजिल पर। दोनों छज्जो मे एक एक आदमी खडा था। नीचेवाला आदमी ऊपरवाले पर ईंटें फेंकता, मगर वे चौथी मजिल तक न पहुचतीं और फेंकनेवाले के सिर पर ही वापस आ लगतीं। ऊपरवाला आदमी इतमीनान से नीचे ईंटें फेंकता जाता था और वे भी निचले छज्जे पर खडे आदमी के सिर पर लगती थीं। कार्टून के नीचे यह शीर्षक लिखा था–'नीचे और ऊपर से आलोचना।"

किस्मत के मारे इस व्यग्यकार को किसी ने यह सलाह दी कि अपने को अपराधी मान लेना ही उसके लिये सबसे अच्छा रहेगा। सो भी एक बार

ही नहीं, कई बार तथा जहां भी मुमकिन हो सके—अखबार मे, पत्रिका और हर बैठक मे। बदकिस्मत किताब के लेखक ने पछताना, रोना-पीटना शुरू किया। मगर यह काफी नहीं माना गया। बड़े अधिकारी मुखतारबेगोव ने कहा—

"कीचड़ उछालनेवाली तुम्हारी कविताओं के बाद हमें तुमपर एतबार नहीं रहा। तुम्हें अमली तौर पर अपनी कलम से यह साबित करना होगा कि तुमने अपने को सुधार लिया है।"

मेरे दोस्त के लिये सब समान था—आलोचना करने को कहो, तो भी तयार, अपनी भूल सुधारने को कहो, तो भी तयार। वह काम मे जुट गया और उसने 'मेहनती मरजानत' नाम की एक लम्बी कविता रच डाली। कविता की नायिका अग्रणी और जोशीली लड़की, आन की आन म सारे सामूहिक फाम को अग्रणी बना देती है, सभी योजनाओं की अतिपूर्ति करती है और यहा तक कि शौकिया कला-कायक्रम मे खुद रचा हुआ गाना गाकर पहला स्थान भी प्राप्त कर लेती है। इस कविता को फौरन पत्रिका मे छापा गया और पुस्तक के रूप मे भी प्रकाशित किया गया। मगर वक्त ने कुछ करवट ली। उन्हीं अखबारों ने, जिन्होंने उसे झूठी बदनामी करने और कीचड़ उछालनेवाला कहा था, अचानक यह फतवा दे दिया कि यह अव्वल दर्जे का चापलूस है। बड़े अधिकारी मुखतारबेगोव ने फिर मेज पीटते हुए कहा—

"यह तुमने कहा देखा है कि सामूहिक फाम मे कोई भी कमी त्रुटि न हो? ऐसा आदश सामूहिक फाम तुम्हें कहा मिल गया?"

अपराधी ने इस बार मौन साधे रखा। कुछ ऐसी मजबूत गाठें भी होती ह, जो हाथों से नहीं खुलतीं, मगर उन्हें दांतों से भी नहीं खोला जा सकता, क्योंकि वे गन्दगी से लथपथ होती ह। मेरा दोस्त समझ गया था कि उसके सामने ऐसी ही गाठ है और इसलिये वह सिफ सिर झुकाये बठा रहा।

दस साल तक उसकी यह खामोशी बनी रही। इन सालों के दौरान वह लेखक-सघ मे भी कभी नहीं आया। सिफ एक बार ही, जब उसे फ्लट दिया गया, वह वहां आया। आप सहमत होंगे कि उस वक्त तो आये बिना काम नहीं चल सकता था।

बड़े अधिकारी मुख्तारबेगोव को कुछ ही समय बाद धोखाधड़ी के लिये ऊंचे पद से हटा दिया गया। किसी को भी उसके लिये अफ़सोस नहीं हुआ।

प्रसंगवश यह भी बता दूं कि उसे सागर-स्नान बहुत पसन्द था। सुबह और शाम को यह बड़ी, काली "ज़ीम" कार में खास तट पर जाता और वहां अकेला ही कस्पियन सागर के ठण्डे और नमकीन पानी में डुबकियां लगाता। घर उसका सागर-तट पर ही था। मगर अब किसी ने भी मुख्तारबेगोव को नहाते नहीं देखा। आम तट पर, जहां सभी लोग नहाते थे, उसने नहाना पसन्द नहीं किया। शायद वह अपने को बदल नहीं सका, अपनी अकड़ नहीं छोड़ सका।

विषय के बारे में कुछ और। जब हम सड़क पर आते हैं, तो हमें अपने सभी ओर–जमीन पर, झाड़ियों में, वृक्षों पर बहुत से पक्षी उड़ते दिखाई देते हैं। वे आकाश में भी उड़ते हैं, कुछ ऊंचे, कुछ नीचे। इनमें अबाबीलें होती हैं, डोमकौवे, कौवे, गौरयां और ऐसे ही दूसरे पक्षी होते हैं। ऐसे पक्षियों के बीच आकाश में सिर्फ़ एक ही उक़ाब होता है। वह सबसे ऊंचा, नज़र से बहुत दूर होता है, मगर फिर भी अगर वह आकाश में है, तो घर से बाहर आनेवाले आदमी को उक़ाब ही सबसे पहले दिखाई देगा। वह दूसरे पक्षियों से इसीलिये अलग और सबसे पहले नज़र आता है कि सबसे दूर और सबसे ऊंचा होता है। इसके बाद ही घर के दरवाज़े से पांच क़दम दूर बैठी गौरया की तरफ ध्यान जाता है।

मगर उक़ाब को देख लेने से कोई उक़ाब नहीं बन जाता। किसी वीर के बारे में लिखनेवाला लेखक ख़ुद वीर नहीं हो जाता। वीरतापूर्ण कविताओं के लिये विख्यात बहुत से कायरों को मैं जानता हूं। अगर पहाड़ी सूरमा मखच दाखादायेव अपनी क़ब्र से बाहर आ सकता, तो अपने बारे में शोध प्रबन्ध लिखनेवाले "विद्वान" से वह क्या कहता?

"तुम मेरे वीरतापूर्ण जीवन के बारे में बता ही क्या सकते हो, जब अपने लिखे हुए एक भी वाक्य को सम्पादक से नहीं बचा सकते? मेरे बारे में तुम्हारे विचारों को हर सम्पादक जैसे चाहता है, बदल देता है और तुम ज़रा भी आपत्ति करने का साहस नहीं कर पाते। नहीं, तुम मखच दाखादायेव जैसे आदमी के बारे में शोध प्रबन्ध लिखने के लायक़ नहीं हो," पहाड़ी सूरमा ने अगर वे क़ब्र से बाहर आ सकते, तो यही कहा होता।

कुछ लोगों को ऐसा लगता है कि कोई महान विषय चुन लेने से वे खुद भी महान बन जायेंगे। मगर सबसे साधारण ही सबसे महान होता है। बारिश की बूंद मे ही जल प्रलय छिपा रहता है। महान और तुच्छ व्यक्ति मे यह अन्तर होता है कि तुच्छ व्यक्ति केवल बडी चीजों और घटनाओं को ही देख सकता है और अपने आस-पास की चीजों पर उसकी नजर नहीं जाती। किन्तु महान व्यक्ति छोटी-बडी सभी चीजों को देखता है और तुच्छता में भव्यता खोज निकालता है और दूसरों को दिखा सकता है।

सस्मरण। कभी कभी ऐसा भी होता है कि प्रतिभाशाली लेखक मुह लटकाये दिखाई देते ह और प्रतिभाहीन सीना ताने घूमते ह। ऐसा तब होता है, जब लेखक के नेक इरादों को ही महत्व दिया जाता है, मगर उसकी किताब कसी बन पडी है, उसके लेखक मे कितना प्रतिभा है, लेखनकला मे वह कितना पारगत है, इसका गम्भीरता से मूल्याकन नहीं किया जाता। ऐसी स्थितियों मे गुरु ज्यादा और चेले कम, माल से ज्यादा गाहक, लेखकों से ज्यादा बवकू हो जाते हैं।

ऐसे ही वक्त मे मेरे पिता जी ने शामिल के बारे मे एक बडी कविता लिखने की तीव्र इच्छा अनुभव की। कविता छपने ही वाली थी कि शामिल को इस वक्त से और हमेशा के लिये अग्रेजों-तुर्कों का भाडे का टट्टू मानने का हुक्मनामा आ गया। यह पता चला कि शामिल दागिस्तान के लोगों की आजादी के लिये नहीं, बल्कि उन्हें धोखा देने के लिये पच्चीस साल तक लडता रहा था।

अपनी वीरतापूर्ण कविता का मेरे पिता जी क्या करते। उन्हें सकेत किया गया कि हमारे अच्छे जमाने मे प्राचीन इतिहास के पृष्ठ उलटने मे क्या रखा है और अगर वे अधिक सामयिक और पाठकों के अधिक निकट किसी विषय पर नई कविता लिखें, तो ज्यादा अच्छा रहेगा।

उन दिनों हमारे परिवार के मित्र, खुशमिजाज अबूतालिब अक्सर पिता जी के पास आते थे। जुरना या बासुरी हमेशा उनके साथ होती थी।

"हमजात," अबूतालिब आराम से बठकर जुरने को सुर मे करते हुए बोले, "बहुत दुखी नहीं होओ। जब म लडका था और कविता नहीं रचता था, तो हमेशा जुरना बजाता था। कई सालों तक इसने मुझे और मेरे परिवार को रोटी दी। इसपर हर धुन बजती थी। आओ, अपने उन जवानी के दिनों की याद ताजा करें, कुछ समय के लिये कविताओं को भूल

जायें और सगीत का मजा ले। म जुरना बजाऊगा और हमजात, तुम ढोल बजाओ। ऐसे हमे राहत मिलेगी।"

"यह तुम क्या कह रहे हो, अबूतालिब! अगर हम ढोल और जुरना बजानेवाले हो जाते, तो भी इतना बुरा न होता। जुरना-वादक तो अपना जुरना बजाता है और उसकी धुन पर नतक नाचता है या नट रज्जु पर चलता है। जुरना वादक नीचे खडा होता है और नट रज्जु पर नाचता है। बताओ अबूतालिब, उन दोनो मे से किसकी अधिक बुरा हालत होती है? हम दोनो रज्जु पर चलनेवालों के समान ह। वे हमे रज्जु पर करतब करनेवाले और नतक बनाना चाहते ह।"

खुशमिजाज अबूतालिब उदास हो गये और उनके साथ ही उनका जुरना भी उदास हो गया। देर तक वे चुपचाप अपना बाजा बजाते रहे, फिर उन्होने सिर ऊपर उठाया और बोले—

"बडा मुश्किल धधा है कविता रचने का।"

दामन से हम नजर डालते
जब-जब ऊची चोटी पर
ऐसे लगता छू लेगे हम
हाथ बढा, आगे बढ कर।
मगर घनी, गहरी बर्फों म
पाषाणी पगडडी पर
हम चलते, चलते जाते ह
अत न आता कही नजर।
इसी तरह स काम हमारा
सीधा-सीधा-सा लगता,
पर शब्दो के ढेर पर म
बहुत बडा झझट पडता।
कभी-कभी तो पक्ति न बनती
शब्द अकड जाते तन कर
तब लगता कविता रचो म
दुगम पहुचना चोटी पर।

उड़ान की उतावली करने के इच्छुक पक्षी का किस्सा। भेड़ों का रेवड़ पहाड़ों से घाटी में उतर रहा था। अचानक उकाब ने आसमान से सीधे झपट्टा मारा, एक मेमने को पंजों में दबाया और उड़ गया। एक [illegible]

परिन्दे ने यह सब देखा। उसने सोचा– "भला मैं भी ऐसे ही क्यों न करूं, जैसे उकाब ने किया? मेमने की क्या बात है, मैं तो पूरी भेड़ ही उठा ले जाऊंगा।" पक्षी बहुत ऊंचा उड़ा, उसने पंख समेटे और नीचे की तरफ़ झपटा। मगर यह क़िस्सा ऐसे खत्म हुआ कि वह भेड़ के सींग से टकराया और अपनी जान से हाथ धो बैठा।

"एक बार मक्खी ने भी पत्थर फेंकना चाहा था," मरे हुए परिन्दे को हथेली पर रखे हुए चरवाहे ने कहा।

इस तरह उकाब की बराबरी करने के इच्छुक पक्षी की मक्खी से ही तुलना की गयी।

विषय के बारे में कुछ और। विषय प्यार भी है, क़सम भी है, याचना भी है, प्रार्थना भी है। पूरब में कहा जाता है कि दोहराने से प्रार्थना बिगड़ती नहीं, बेहतर ही हो जाती है।

विषय के बारे में ऐसा नहीं कहा जा सकता। अगर एक ही विषय को लगातार दोहराया जाये, तो वह घिसा पिटा हो जायेगा, उसका कोई मूल्य नहीं रहेगा। हीरा जितना अधिक बड़ा होगा, उतनी ही ज़्यादा उसकी क़ीमत होगी। हीरे की धूल की किसे ज़रूरत है?

एक बार मैंने रूसी अध्यापिका वेरा वसील्येव्ना के बारे में एक कविता रची। मैंने देखा कि पाठकों, यहां तक कि आलोचकों को भी वह कविता पसन्द आई। मुझे खुशी हुई और लगा उसी विषय को रगड़ने।

मेरी कवितायें उस शराब जैसी नहीं रहीं, जो शुरू में पीपे में थी, बल्कि उस शराब जैसी हो गयीं, जो पीपे को धो देने के बाद हासिल होती है।

पुरानी शराब का लेबल लगाकर कच्ची शराब भी बेची जा सकती है। अब मैं आपको यह सुनाता हूं कि मास्कोवासियों को अपनी घर की बनी शराब पिलाते हुए हम क्या करते थे।

मैं और काकेशिया के मेरे दूसरे दोस्त अपने घरों से मास्को लौटते हुए हमेशा अपने साथ शराब लाते थे। दोस्त इकट्ठे होते, हम पीपा खोलते और जाम उड़ाये जाने लगते। पीपे में पुरानी, खूब अच्छी तरह से तैयार और बढ़िया शराब होती। हमारे दोस्त शराब पीकर उसकी तारीफ़ करते और अपने दूसरे दोस्तों से उसकी चर्चा चलाते। बढ़िया शराब चाहनेवाले बहुत ज़्यादा होते। ज़ाहिर है कि पीपा तो आखिर खाली हो ही जाता। कभी

कभी हम यह गुनाह करते कि आम बाजारी शराब खरीदकर उसे उनके पीने में डाल देते और यह कहते कि अम्मी, घर की बनी हुई, बढ़िया शराब है। ऐसे पारखियों से, जो हमारा भण्डाफोड़ कर देते, कभी वास्ता नहीं पड़ा था। सिर्फ एक मेहमान ने ही शराब चखने के बाद मेरी तरफ देखा और मानो भर्त्सना करते हुए सिर हिलाया। बाकी तो जितनी ज्यादा पीते, उन्हें उतना ही ज्यादा मजा होता और वे उतने ही ज्यादा तारीफों के पुल बांधते।

मेरी उन कविताओं के बारे में भी, जिन्हें मैं अक्सर दोहराने लगा था, यही कहा जा सकता है। सिर्फ कुछ बहुत ही समझदार और कठोर पाठक सिर हिलाकर कहते थे—

'अरे भाई, बासागासोव भी इसी काम से आया था।"

या फिर वे यह कहते—"एक गांव के लिये एक ही मूछ काफी है।"

तब यह बात मेरी समझ मे आयी कि मै भी वही कुछ कर रहा हूं, जो बढ़िया कारीगरों ने अपनी छड़ियों के साथ किया था।

अब मैं आपको ढंग से यह सारा क़िस्सा सुनाता हूं।

जब मैं लड़का ही था, तो क़ुरबान अली नाम का एक डाकिया ढेर सारे ख़त और अख़बार लेकर हर दिन हमारे गांव मे आता। वह आबूता गांव का रहनेवाला बड़ा ही हसोड़ और मस्त-मौला था। डाक बांटते वक्त क़ुरबान अली गप शप करने और पाइप के कश लगाने के लिये ज़रूर ही मेरे पिता जी के पास आता। कह नहीं सकता कि ऐसी बातचीत के लिये उसने मेरे पिता जी को ही क्यों चुना था। बात यह है कि उसकी बातचीत का विषय हमेशा एक ही होता था—शादी के बारे में। शायद यह कहना ज्यादा सही होगा कि नयी शादी के बारे मे। कारण कि वह उन लोगों में से था, जो एक हफ्ते बाद शादी करते हैं और एक महीने बाद तलाक़ दे देते हैं।

यह उस वक्त की बात है, जब उसने तलाक दिया ही था और अपने लिये जवान विधवा की तलाश कर रहा था। उसने तो जैसे उसे खोज भी लिया था, क्योंकि हर दिन वह इसी बात की चर्चा करता था कि वह कितनी सुन्दर है जवान और मिलनसार है।

मगर अचानक जवान विधवा के बारे में बातचीत बन्द हो गयी। क़ुरबान अली पहले की तरह ही हर दिन आता, किन्तु बातचीत मौसम या

सामूहिक काम के काम-काजों और ऐसे ही सभी तरह के विषयों के बारे मे करता, कुछ ही समय बाद होनेवाली अपनी शादी के बारे मे नहीं।

"तुम किसी के साथ शादी करने की सोच रहे थे, क्या कर लो?" पिता जी ने एक दिन पूछा।

"अरे नहीं हुजूत, यह तो म सोच रहा था, मगर लगता है कि उसका तो बिल्कुल ऐसा ख्याल नहीं था। अब जवान विधवा ढूढ़ने के लिये मुझे सारे दाग़िस्तान का चक्कर लगाना पड़ेगा।"

कुरबान अली ने बहुत अर्से तक सूरत नहीं दिखाई। इसका मतलब तो यही था कि वह सचमुच गावों के चक्कर लगाता हुआ अपने लिये बीवी खोज रहा था। इस दौरान उसका बेटा डाक बाटने आता रहा। बदक़िस्मत डाकिया जब फिर से हमारे घर आया, तो हमने बड़ी बेसब्री से उससे पूछा—

"कहो, क्या हालचाल है? तुम्हारा रास्ता तो सीधा और छोटा ही रहा न?"

"शायद सीधा ही रहता, मगर दालागालोव ने उसे टेढ़ा कर दिया।"

"वह कसे?"

"बहुत सीधे-सादे ढग से। अपने उद्देश्य से म जहा कहीं भी गया, मुझे यही बताया गया—देर से आये हो। दालागालोव भी इसी काम से आया था।"

दरवेश दालागालोव औरतों के मदान का मशहूर सूरमा था। १६३८ मे उसने अठारह बार शादी की थी।

डाकिये क़ुरबान अली की बदौलत सारे दाग़िस्तान मे आसानी से यह कहावत फल गयी— "दालागालोव भी इसी काम से आया था।"

दूसरा किस्सा है एक मूख के बारे मे। यह तो सभी जानते ह कि हर गाव मे सिफ एक ही अहमक रहता है। यही अच्छी बात है। जब बहुत-से अहमक या मूख होते ह—तो बुरा होता है। जब एक भी नहीं होता, तो भी जसे कुछ कमी-सी महसूस होती है। अहमक़ों की एक दूसरे से अच्छी तरह जान-पहचान होती है और वे तो एक दूसरे के यहां मेहमान भी आते-जाते ह। इसी रिवाज के मुताबिक़ एक बार ग़ूरताकुली गाव का अहमक ख़ूजह गाव के अहमक़ के यहां मेहमान आया।

"सलाम अलकुम, अहमक!"

"वालकुम सलाम, अहमक!"

आगे सब कुछ वसे ही हुआ, जसे कि दो दोस्तों के बीच होता है। वे चूल्हे के पास बठ गये, खूब खाया पिता। तीसरे दिन ग़ूरताकुली का अहमक अपने घर जाने को तयार हुआ। मेजबान अहमक ने जसे होना चाहिये, वसे ही बडी इज्जत से मेहमान को विदा किया, तोहफ़ दिये और गाव के छोर तक छोड़ने गया। दोनों अहमकों ने एक-दूसरे से विदा ली।

मेहमाननेवाज़ी की सभी रस्मे पूरी हो चुकी थीं। कुछ ही देर पहले का मेहमान जसे ही गाव की हद से बाहर जाता है, उसके साथ मनमाना बर्ताव किया जा सकता है, क्योंकि अब वह मेहमान नहीं रहा। उसी वक्त खूजह का अहमक भागकर ग़ूरताकुली वाले अहमक के पास पहुचा और अचानक उसपर पिल पड़ा।

"किसलिये तुम मुझे पीट रहे हो?"

"मेरे यहा फिर कभी मेहमान नहीं आना। क्या तुम इतना भी नहीं जानते कि एक गाव के लिए सिर्फ एक ही अहमक काफी है?"

कभी-कभी म इस क़िस्से पर ग़ौर करता हू और मेरे दिमाग मे यह ख्याल आता है कि एक गाव के लिये एक ही अक्लमन्द भी काफी है।

नोटबुक से। किसी अमीर खान ने किसी ग़रीब से पूछा—

"बत्तख का कौन-सा हिस्सा सबसे ज्यादा मज़ेदार होता है? अगर ठीक जवाब दोगे, तो इनाम मिलेगा।"

"पिछला,' ग़रीब ने फौरन जवाब दिया।

जब बत्तख बनकर तयार हो गयी, तो खान ने इसी हिस्से को चखा और उसे बेहद पसन्द आया। उसने दूसरे ग़रीब से पूछा—

"भेस का कौन सा हिस्सा सबसे ज्यादा मज़ेदार होता है?"

दूसरा ग़रीब आदमी भी इनाम पाना चाहता था, इसलिये उसने पहले की तरह ही जवाब दिया—

'पिछला।"

खान ने उसे चखा और इस दूसरे ग़रीब को कोडे लगवाये।

बडे अफ़सोस की बात है कि उन लेखकों के लिये कोडे नहीं है, जो सोचे-समझे बिना अलग अलग मौक़ों पर एक ही बात दोहराते रहते है।

अब ऊनसूकूल की छडी के आलेख की कहानी सुनिये। मास्को के साहित्यकार व्लादिमेन बाखनोव लगडाते है और छडी के सहारे चलते है। छुट्टियो मे दागिस्तान जाते हुए मैने उनसे वादा किया कि ऊनसूकूल के प्रसिद्ध कारीगरों की नक्काशीवाली सुन्दर छडी उन्हें लाकर दूगा। घर पहुचते ही मैने अपने एक परिचित नक्काश को इस अनुरोध का पत्र लिख भेजा। नक्काश बुज़ुर्ग कारीगर और मेरे पिता के दोस्त थे और इसलिये यह आशा की जा सकती थी कि छडी जैसी बढिया होनी चाहिये, वैसी ही होगी। सिर्फ एक बात मेरी समझ मे नहीं आ रही थी कि इस छडी पर लिखवाया क्या जाये।

इसी समय एक केन्द्रीय समाचारपत्र मे साहित्यिक विषय पर एक बडा लेख निकला। उसका शीर्षक था – "आलोचना की जगह डडा।"

"बहुत खूब", मैने सोचा, "ऐसा आलेख मास्को के साहित्यिक को भेंट की जानेवाली छडी के लिये बिल्कुल ठीक रहेगा।"

दो हफ्ते बाद छडी तैयार हो गयी। ऊनसूकूल की छडियों मे यह सबसे बढ़ चढ़कर थी। उचित स्थान पर ये शब्द शोभा दे रहे थे – "व्ला० बाखनोव को। आलोचना की जगह डडा। रसूल हमज़ातोव की ओर से।"

वैसे तो मखचकला, किस्लोवोदस्क, प्यातिगोर्स्क की स्मरण चिह्नों की दुकानों तथा पहाडी गावो की मडियो मे ऊनसूकूल की छडिया बिकती है। कुछ अर्से बाद इन सभी जगहो पर "व्ला० बाखनोव को। आलोचना की जगह डडा। रसूल हमज़ातोव की ओर से" आलेख वाली छडिया बिकने लगीं। इन स्वास्थ्यप्रद स्थानों पर आनेवाले लोग सम्भवत ऐसे आलेख वाला उपहार खरीदते समय हैरान हुए होंगे। मगर सबसे अधिक हैरानी तो मुझे हुई।

हुआ यह कि बुज़ुर्ग कारीगर, जिन्होंने पहली छडी बनाई, रूसी भाषा का एक शब्द भी नहीं जानते थे। मैने कागज़ पर जो कुछ लिख भेजा था, उन्होने उसे ज्यों का त्यो छडी पर उतार दिया। उन्होने सोचा कि अगर कवि ने छडी पर ये शब्द लिखवाने चाहे है, तो इनमे ज़रूर कोई बडी समझदारी की बात छिपी होगी। तो भला यही शब्द दूसरी छडियो की शोभा क्यो न बढ़ायें?

बुज़ुर्ग कारीगर को दोष नहीं दिया जा सकता। उन्होंने भोलेपन से कवि पर विश्वास कर लिया और अपने सहज विश्वास में उदारता और

निश्छलता का परिचय दिया। मगर हम अनुभवी साहित्यकार भी तो क्या कभी-कभी इस बुजुर्ग के समान ही नहीं होते?

विषय के बारे में अन्तिम शब्द। एक विषय है, जो प्रार्थना के समान है। उसे जितना अधिक दोहराया जाता है, *वह उतना ही अधिक मूल्यवान,* उच्च और श्रेष्ठ होता जाता है। वह विषय और प्रार्थना है मेरी मातृभूमि।

बच्चे को जब किसी शरारत के लिये सजा दी जाती है, तो पहाड़ी इलाक़ों के रिवाज के अनुसार चेहरे के सिवा उसे इसकी किसी भी जगह पर मारा पीटा जा सकता है। इंसान के चेहरे को नहीं छूआ जा सकता और यह चीज़ हर पहाड़ी आदमी के लिये क़ानून है।

दाग़िस्तान तुम मेरा चेहरा हो। मैं तुम्हें छूने की मनाही करता हूं।

लड़ाई झगड़े में पहाड़ी लोग बड़े सब्र से काम लेते हैं। वे एक दूसरे को बहुत से बुरे-बुरे शब्द कहते हैं और हर कोई उन्हें बर्दाश्त करता है तथा उनके जवाब में अपने गन्दे शब्द कहता है। मगर ऐसा तभी तक होता है, जब तक कि इन गन्दे शब्दों का सिर्फ आपस में झगड़नेवालों तक ही *सम्बन्ध रहता है। पर यदि संयोग या असावधानी से कोई मां या बहन* को कुछ भला-बुरा कह बैठता है, तो समझो कि मुसीबत आ गयी–तब *खंजर चल जायेंगे।*

दाग़िस्तान–तुम मेरे लिये मां हो। वे सभी, जिन्हें मुझसे उलझना *पड़ेगा, इस बात को गांठ बांध लें। मुझे तो बेशक कैसे ही भले-बुरे शब्द कह* लो–मैं सब बर्दाश्त कर लूंगा। मगर मेरे दाग़िस्तान को नहीं छूना।

दाग़िस्तान–वह मेरा प्यार है, *मेरी प्रतिज्ञा, मेरी याचना,* मेरी प्रार्थना है। तुम ही मेरी सारी किताबों, मेरे सारे जीवन का मुख्य विषय हो।

कभी-कभी मुझसे यह कहा जाता है कि मैं केवल तुम्हारे अतीत की चर्चा करूं, पुराने रस्म रिवाजों, दन्त-कथाओं और गीतों, शादियों और तलवारों, लड़ाइयों और दोस्तियों, मुरीदों के इस्पाती कलेजों और वफ़ादार कुमारियों, गरिमा और साहस, नौजवानों के खून और माताओं के आंसुओं का ही वर्णन करूं।

कभी-कभी मुझसे सिर्फ तुम्हारे वर्तमान का ही बयान करने को कहा जाता है। मुझसे अनुरोध किया जाता है कि मैं राजकीय फ़ार्मों और सामूहिक फ़ार्मों, टोली और उप-टोली मुखियाओं, पुस्तकालयों और थियेटरों, तुम्हारी श्रम-सम्बन्धी उपलब्धियों का उल्लेख करूं।

म अपने को इस या उस, अतीत या वर्तमान तक ही सीमित नहीं कर सकता। मेरे लिये तो एक दाग़िस्तान है, जो एक हज़ार साल की ज़िन्दगी देख चुका है। मेरे लिये उसका अतीत, वर्तमान और भविष्य घुल मिलकर एक हो गये ह। म उसे अलग अलग कालों मे विभाजित नहीं कर सकता।

दूसरे राज्यों और देशों का इतिहास तो सिफ खून से ही नहीं, क़लम और स्याही से काग़ज़ पर भी कभी का लिखा जा चुका है। उसे तो सनिक और सेनापति ही नहीं, लेखक और इतिहासकार भी लिख चुके ह। दाग़िस्तान का इतिहास तो तलवारों ने लिखा है। सिफ बीसवीं सदी ने ही दाग़िस्तान को क़लम दी है।

दाग़िस्तान, म तुम्हारी प्राचीन लड़ाइयों के चिह्नों को देख आया हू, उन अनेक रण क्षेत्रों में हो आया हू, जिनमें तुम्हारे सपूतों की हड्डियां बोयी गयी ह। सामूहिक फार्मों के गेहू या मक्का के खेत इस बात के लिये मुझसे नाराज़ न हों। कारण कि जब म अपनी कविताओं मे आधुनिक दाग़िस्तान की चर्चा करता हूं, तो अतीत इसके लिये मेरी भत्सना नहीं करता।

दूर-दराज़ के देशा की यात्राओं के बाद जब म अपने घर लौटता हू, तो पहाड़ी लोग मुझे घेर लेते ह और जो कुछ मने देखा होता है, उसे बयान करने को कहते ह। वे मेरे गिद घेरा डालकर बठ जाते ह और सुनते ह। अधिक से अधिक म तीन घण्टे ही बोल पाता हू और म उन्हें फ्रांस, भारत, जापान या तुर्की के बारे में बताता रहता हू। मगर तीन घण्टों के बाद अपने आप और अनजाने ही दाग़िस्तान के बारे में बातचीत शुरू हो जाती है। म अपने पहाड़ी लोगों से दाग़िस्तान की चर्चा करने लगता हू और वे मुझे ऐसे सुनते रहते ह मानो पहली बार सुन रहे हों, यद्यपि वे खुद ही तो दाग़िस्तान ह।

महमूद बड़े कवि थे। उनका मुख्य विषय था—मरियम के प्रति उनका प्यार। उनके एक घनिष्ठतम मित्र ने महमूद से लोरी रचने को कहा, क्योंकि उसके यहां बेटा हुआ था। महमूद ने अपनी क़लम आज़माई, मगर उन्हें कामयाबी नहीं मिली। महमूद की लिखी लोरी सुनकर बच्चा पालने मे रोता रहता, जबकि उससे उसे नींद आनी चाहिये थी। दूसरे मित्र ने महमूद से अनुरोध किया कि वह उसकी पत्नी के बारे मे, जिसका देहान्त हो गया था, शोक-गीत रच दे। महमूद ने ऐसा किया मगर उन्हें सफलता

नहीं मिली। महमूद का शोक-गीत सुनकर किसी की भी आखों में आंसू नहीं आये। इसके उलट, कुछ तो मुस्करा भी दिये।

किन्तु मरियम के प्रति महमूद के असफल प्यार से सम्बन्धित उनके गीत सुनकर लोग अब तक रोते ह।

महमूद की काव्य-साधना का मुख्य विषय था—मरियम। मेरा मुख्य विषय है—दाग़िस्तान। मेरा प्यार महान हो या तुच्छ, मेरी सच्चाई छिछली हो या गहरी, मेरी भावनायें पुरातन हों या नूतन, मगर म तुम्हारे बारे मे ही लिखता हू, दाग़िस्तान। जब म क़लम उठाता हू, तो वह बरबस मेरे हाथ मे कापने लगती है।

पिता जी कहा करते थे कि अगर तरबूजों का खेत बिल्कुल सड़क किनारे है, तो पास से गुजरनेवाला हर राहगीर कच्चा तरबूज तोड़ लेगा।

कहते हैं कि जिस पत्थर को उठा नहीं सकते, उसे हाथ नहीं लगाओ। इतनी दूर तक नहीं तरो, जहा से लौट नहीं सकते।

कहते हैं कि अगर नाले मे टखनो तक पानी है, तो पतलून को घुटनो से ऊपर नहीं उठाओ।

विधा

मूर्ख चीख से हैरान करता है,
बुद्धिमान जचती हुई कहावत से।

वसन्त आया – गीत गाओ।
जाड़ा आया – किस्सा सुनाओ।

लीजिये, मैं उस पहाड़ के सामने खड़ा हूं, जिसे लांघना है। बढ़िया घोड़ा मुझे हर दर्रे के पार ले जायेगा। पहाड़ – मेरा विषय है, घोड़ा – मेरी भाषा है। मगर अब मुझे वह पगडंडी चुननी है, जो मुझे खड़े पहाड़ के पार ले जायेगी।

मेरे सभी पहाड़ी पूर्वजों को सीधी पगडंडी पसन्द आती रही है। उसपर चढ़ना कठिन और खतरनाक होता है, मगर वह छोटी होती है वह जान भी ले सकती है, जल्दी से मंज़िल पर भी पहुंचा सकती है।

या फिर मैं उस किले के सामने खड़ा हूं, जिसपर क़ब्ज़ा करना है। मेरे पास बहुत ही बढ़िया हथियार है, जो लड़ाई में मुझे कभी धोखा नहीं देगा। किला है मेरा विषय और भाषा है मेरा हथियार। मगर मुझे ऐसा तरीक़ा चुनना है, जिससे इस अभेद्य दुर्ग पर आसानी से अधिकार किया जा सके। इसपर अचानक धावा बोला जाये या धीरे धीरे घेरा डालना बेहतर होगा?

एक खेत में बाजरा बोया हुआ है और नज़दीक ही पहाड़ी नदी में पानी है। मगर इस पानी को खेत तक कैसे लाया जाये?

चूल्हे में लकड़ी है, पतीला और कुछ वह भी है, जो पतीले में डाला जाना है। मगर फिर भी यह सवाल तो है ही कि दोपहर के खाने के लिये क्या पकाया जाये?

सम्पादक महोदय ने अपने पत्र में मुझे इस बात की छूट दी थी कि मैं अपने लिये कोई भी साहित्यिक विधा चुन सकता हूं – कहानी या उपन्यास, कविता या लेख। जितनी अधिक सम्भावनायें होती हैं, चुनाव उतना ही ज्यादा कठिन होता है।

नोटबुक से। हमारे साहित्य-सस्थान मे ऐसे हुआ था। पहले वर्ष की पढ़ाई के समय बीस कवि थे, चार गद्यकार और एक नाटककार। दूसरे वर्ष मे – पन्द्रह कवि, आठ गद्यकार, एक नाटककार और एक आलोचक। तीसरे वर्ष मे – आठ कवि, दस गद्यकार, एक नाटककार और छ आलोचक। पांचवें वर्ष के अन्त मे – एक कवि, एक गद्यकार, एक नाटककार और शेष सभी – आलोचक।

खैर, यह तो अतिशयोक्ति है, चुटकुला है। मगर यह तो सच है कि बहुत-से कविता से अपना साहित्यिक जीवन आरम्भ करते हैं, उसके बाद कहानी-उपन्यास, फिर नाटक और उसके बाद लेख लिखने लगते हैं। हां, आजकल तो फिल्म सिनेरियो लिखने का ज्यादा फ़ैशन है।

कुछ बादशाहों और शाहों ने अपनी मलिकाओं और बेगमों को इसलिए छोड दिया था कि उनके सन्तान नहीं हुई थी। मगर कुछ बीवियां बदलने के बाद उन्हें इस बात का यक़ीन हो गया कि इसके लिये वे बिल्कुल दोषी नहीं थीं, दूसरी तरफ कोई भी किसान जिन्दगी भर एक ही बीवी के साथ रहता है और उसी से एक दर्जन बच्चे पैदा कर लेता है।

मैं तो यह मानता हूं कि शराब पियो, मगर रोटी से मुंह न मोडो। गीत गाओ, मगर किस्से भी सुनो। कवितायें रचो, मगर सीधी-सादी कहानी को दूर न भगाओ।

गद्य। एक वह भी जमाना था, जब मैं पालने मे लेटा रहता था और मेरी मां लोरी गाया करती थीं, उन्हें सिर्फ एक ही लोरी आती थी। हमारे पिता जी बेशक जाने-माने कवि थे, अपने बेटों के लिये उन्होंने एक भी गीत नहीं रचा। वे हमें बड़े शौक से तरह-तरह के किस्से-कहानियां और घटनायें सुनाते थे। यह उनका गद्य था।

पिता जी को अपनी कविताओं की चर्चा करना पसन्द नहीं था। मेरे ख्याल मे वे काव्य रचना को गम्भीर काम नहीं मानते थे। उनके संजीदा काम थे – जमीन जोतना, खलिहान को ठीक-ठाक करना, गाय और घोड़े की देख भाल करना, छत पर से बर्फ साफ करना और गांव को गांव, यहां तक कि हलके के मामलों मे सरगर्म हिस्सा लेना।

कविता रचने के बाद मेरे पिता इस बात की खास चिंता नहीं करते थे कि वह कहां छपती है। केन्द्रीय समाचारपत्र हो या गांव के पायनियरों का दीवारी समाचारपत्र। इस बात की तरफ मेरा ध्यान गया था कि दीवारी समाचारपत्र में स्थान दिये जाने पर उन्हें ज्यादा खुशी होती थी।

वे अक्सर उन शब्दों को याद किया करते थे, जो प्यार के विख्यात गायक, कवि महमूद को उनके पिता अनासील मुहम्मद ने कहे थे। प्यार और प्यार के गीतों से बेहाल, भूखे और ज़र्द चेहरेवाले निखट्टू बेटे जैसे कवि महमूद ने जब घर आकर रोटी मांगी, तो उनके पिता ने बड़े इतमीनान से यह जवाब दिया—

"कविता खाओ और प्यार पियो। मैं तुम्हारे लिये हल जोतता जोतता थक गया हूं!"

इसमें कोई शक नहीं कि गीत के बिना तो पक्षी भी नहीं रह सकता। मगर पक्षी का मुख्य काम तो है—घोंसला बनाना, चुग्गा हासिल करना, अपने बच्चों का पेट भरना।

पिता जी के लिये उनकी कवितायें पक्षी के तराने के समान ही थीं—सुन्दर, सुखद, किन्तु अनिवार्य नहीं। वे उन्हें सुबह के वक्त कहे जानेवाले "शुभ प्रभात" और रात को बिस्तर पर जाते वक्त कहे जानेवाले "शुभ रात्रि" शब्दों, पर्व की बधाई या दुःख के शोक-सन्देश की तरह ही मानते थे।

ऐसी धारणा है कि कवि इस दुनिया से कुछ निराले होते हैं—हर कोई अपने ही ढंग से। मगर पिता जी अपने स्वभाव और मानसिक संरचना की दृष्टि से साधारण पहाड़ी आदमी थे। सबसे अधिक तो उन्हें मंडली में बैठकर, जब लोग एक दूसरे को टोकते नहीं, मजे से बातचीत करना, तरह-तरह के किस्से-कहानियां और घटनायें सुनाना यानी गद्य ही अधिक पसन्द था।

पिता जी ने विख्यात कवि महमूद को अपनी कवितायें दिखायीं। कवि को पिता जी की कवितायें देखकर हैरानी हुई और बोले कि ये उनकी समझ में नहीं आतीं और कुल मिलाकर वे यह समझ ही नहीं पाते कि गऊ, ट्रैक्टर, कुत्तों और ख़ज़ह गांव की पगडंडी के बारे में कैसे कवितायें रची जा सकती हैं।

"तो किस बारे में कवितायें रची जायें?" पिता जी ने नम्रता से पूछा।

"प्यार, केवल प्यार के बारे में! प्यार का महल बनाना चाहिए।"

9—631

महमूद की कविता

महल बनायें इस धरती पर, मन प्यार अनूठे के
मगर बाड के नीचे म खुद, मौसम भी बिगडा, बिगडा,
मधुर भावनाग्रो का मने एक बनाया शाही पुल
टूट गया म उसे देखता अब पत्थर पर पडा-पडा।

पिता जी ने प्यार का महल नहीं बनाया। उन्हें उसके निर्माण की चिन्ता भी नहीं थी। उनकी चिन्ता, उनका महल, उनकी कविता जिनमे ओत प्रोत थी, वे थे—उनका पहाडी घर, परिवार, बच्चे, उनका गाव, घोडा, देश, शान्ति और धरती, आकाश, बारिश, सूरज और घास।

हा, एक बार उन्होंने प्यार की कविता, उस नारी के बारे मे कविता भी लिखी थी, जिसे वे प्यार करते थे। मगर इसलिए कि कोई उस कविता को पढ़ न सके, उन्होंने उसे अरबी मे रचा था। यह कविता केवल उनके और उनकी प्रेयसी के लिए थी।

हा, पिता जी को धीरे धीरे आगे बढ़नेवाला बुद्धिमत्तापूर्ण किस्सा बहुत अच्छा लगता था। शाम के झुटपुटे मे वे मुझे अपनी गोद मे बठा लेते, भेड की खाल के सुगंधित कोट के पल्ले से ढक देते और किस्से सुनाते जाते, सुनाते जाते। वे उनकी चर्चा करते जो विदेशो मे चले गये थे और जो अपनी मातृभूमि मे रह गये थे। वे रास्तो और नदियो का जिक्र करते, यह बताते कि फूल कसे खिलते ह और क्यो उनपर मधुमक्खियां बठती ह। वे यह वणन करते कि कसे सूर्योदय और सूर्यास्त होता है।

वे मुझे यह बताते कि रई की एक बाल मे कितने दाने होते ह और सुदर इन्द्रधनुष का कसे जन्म होता है।

अगर किसी दूसरे गाव से हमारे गाव की तरफ आता हुआ कोई राहगीर दूरी पर दिखाई देता, तो पिता जी सविस्तार यह बता सकते थे कि वह कौन है, किस मतलब से आ रहा है, किसके यहां ठहरेगा

ओह, पिता जी यह सब कुछ मुझ क्यो बताते थे? कहीं ज्यादा अच्छा होता, अगर वे इन सब चीजों को लिख डालते। तो यह उनका गद्य होता, कवि हमजात त्सादासा का गद्य।

उनके लिए कहानी और जीवन एक ही चीज थे। विचार को वे कहानी

ग्रौर कहानी को विचार मानते थे। कविता की तुलना वे मन की तरंग से करते थे।

पिता जी अगर अपनी सभी कहानियां लिख डालते, तो बहुत अच्छा होता। कारण कि जब मैं बड़ा हुआ, तो मेरे व्यक्तित्व में मेरे हृदय ने ही प्रधानता प्राप्त की। जब कोई पक्षी क़रीब से उड़ता हुआ गुज़रता, तो मैं यह सोचे बिना ही कि वह किधर ग्रौर क्यों उड़ा जा रहा है, उसे उड़ते हुए ही पकड़ना चाहता। पिता जी ने चाहे कितनी ही कोशिश क्यों न की, फिर भी अपने बचपन में मां की एकमात्र लोरी मेरे लिए उनके सभी किस्से-कहानियों से ज़्यादा प्यारी बनी रही।

गीत के साथ मेरा बचपन बीता, तरुणावस्था में भी गीत ही मेरे साथ रहा, उसी के साथ मैं पूरी तरह वयस्क हुआ ग्रौर मेरे बाल पके।

मगर अब मैं यह समझता हूं कि मैं चाहे कहीं भी क्यों न भटकता रहा, मैंने कैसे भी गीत क्यों न गाये, हर समय एक चट्टान हमेशा यह इन्तज़ार करती रही कि कब उक़ाब आकर उस पर बैठेगा, एक वृक्ष था, जो लगातार यह राह देखता रहा कि कब पक्षी उस पर घोंसला बनायेगा, एक घर लगातार इस प्रतीक्षा में रहा कि कब उसके दरवाज़े पर दस्तक होगी, गद्य लगातार यह इंतज़ार करता रहा कि कब कवि उसके पास आयेगा।

तो मैं अब उस चट्टान पर उतरता हूं, जो मेरी राह देखती है, दरवाज़े पर दस्तक देता हूं कि उसे खोल दिया जाये, मुझे अन्दर जाने दिया जाये। मैं समझ गया हूं कि पृथ्वी पर मैंने जो कुछ देखा है, मैं जो कुछ सोचता ग्रौर अनुभव करता हूं, उस सब को कविता में बयान नहीं कर सकता।

मैं यह बात समझता हूं कि गद्य कविता नहीं है, जिसे खड़े-खड़े गाया जा सकता है। इसके लिए मेज़ के करीब बैठना होगा, आस्तीनें चढ़ानी होंगी, बड़े सवेरे जागने के लिए अलाम घड़ी को चाबी देनी होगी, तेज़ चाय तैयार करनी होगी ताकि रात को नींद न आ जाये।

हां, अगर बुनियाद सही ढंग से रखी गई है ग्रौर मचान ढंग से बनाई गई है, तो मकान की तामीर भी आगे बढ़ेगी। मगर यह कहानी होगी, लघु उपन्यास, कथा या क़िस्सा, दंत-कथा या विचार-संग्रह अथवा केवल लेख–यह मुझे मालूम नहीं।

कुछ सम्पादक और आलोचक मुझसे यह कहेंगे कि मैंने न तो उपन्यास न क़िस्सा और न लघु-उपन्यास ही लिखा है, कुल मिलाकर यह कि न जा क्या लिख डाला है। कुछ दूसरे सम्पादक और आलोचक कहेंगे कि य पहली, दूसरी और तीसरी चीज भी है, यह भी है, वह भी है।

म कोई आपत्ति नहीं करूगा। मेरी लेखनी से जो कुछ भी निकलेगा उसे बाद मे आप चाहे जो भी नाम दे दें। म किताबी क़ानूनों के मुताबि नहीं, बल्कि अपने दिल की इच्छानुसार लिखता हू। दिल के लिए तं किसी तरह के क़ानून नहीं ह। शायद यह कहना ज्यादा सही होगा कि उसके अपने कानून ह, जो सभी पर समान रूप से लागू नहीं होते।

म मन ही मन सोचता हू कि अगर एक ही पतीले मे मास, चावल, फल, मिर्च और एकसाथ नमक तथा शहद डाल दूगा, तो कहीं खाने का मजा तो किरकिरा नहीं कर डालूगा। या इसके विपरीत यह बहुत ही मजेदार, अद्भुत भोजन बनेगा। अच्छा है कि वही इसके बारे मे राय दें, जो इसे खायेंगे।

मेरी कहानी, मेरे विचार, मेरी कथा! बचपन मे कभी-कभी ऐसा भी होता था कि जाडे की रात मे म सो नहीं पाता था, क्योंकि या तो भाइयो या पिता जी क लौटने का बडी बेसब्री से इतजार करता था। म दरवाजे के पास होनेवाली चरमर या दूर की आहट पर कान लगाये रहता और तब मिनट घण्टों मे बदल जाते।

ऐसी रातो मे दादा मेरे पास बठकर धीरे धीरे कुछ सुनाने लगते। कभी कोई लोक कथा, कभी गीत, कभी कोई अक्लमन्दी की बात, कोई कहावत जो कभी तो हास्यपूर्ण होती, तो कभी भयानक। मेरे लिए मिनट और घण्टे ग़ायब हो जाते और रह जाती केवल दादा जी की आवाज और कल्पना की उडान से बननेवाले चित्र। भाई या पिता जी आते, दादा की बातो मे खलल डालते और तब मुझे इस बात का अफ़्सोस होता कि वे अपने आगमन से दिलचस्प क़िस्से का रग भग कर देते ह।

फिर जब म खुद बडा हो गया, दुनिया भर मे घूमने और उसी तरह अपने घर लौटने की जल्दी करने लगा जसे कभी मेरे भाई या पिता जी करते थे, तो जितना घर के पास पहुचता, मेरा दिल उतना ही ज्यादा और बेचनी से धडकने लगता। म रास्ते मे बाक़ी रह गये दर्रे गिनता। उसी वक्त कोई हमराही दिलचस्प क़िस्सा अपने जीवन की कोई घटना

की तरह यह मेरे कम्बल मे आ दुबकती है। पहाड़ी के पीछे से सामने आते वाले सुबह के सूरज की किरण की भांति वह मेरे खिड़की खोलते ही अन्दर घुस आती है। यह शराब की अन्तिम और सबसे मीठी बूंदों के साथ गिलास के तल मे मेरा इन्तजार करती है। यह उस औरत की भांति हर जगह मेरा पीछा करती है, जिसे अचानक त्याग दिया गया है और जो अपने भूतपूर्व प्रेमी को रास्ते मे मिलने पर यह कहती है—

"क्या तुमने सचमुच मुझसे नाता तोड़ने का निर्णय कर लिया है? मगर जरा सोच लो, मेरे बिना रह लोगे? तुम पहाड़ी बकरे हो और ठण्डे जगलो मे चरने के आदी हो। तुम सालमन हो और तेज ठण्डी धारा के अभ्यस्त हो। क्या तुम यह सोचते हो कि शान्त, गर्म झील मे रहना तुम्हें अच्छा लगेगा? पर खैर, अगर तुमने मुझसे अलग होने का ही फैसला कर लिया है, तो आओ आखिरी को कुछ देर साथ बैठ ले।"

कविता, क्या तुम नहीं जानतीं कि म कभी तुमसे अलग नहीं हो सकता? क्या म अपने अन्तर मे जन्म लेनेवाली सभी खुशियो, सभी आसुओं से अलग हो सकता हू?

तुम उस लड़की जैसी हो, जिसका तब जन्म हुआ, जब सभी लड़के की राह देख रहे थे। तुम उस लड़की के समान हो, जो पैदा होकर खुद ही अपने बारे मे यह कहे—"म जानती हू कि आप लोग मेरा इन्तजार नहीं कर रहे थे और फिलहाल आप मे से कोई भी मुझे प्यार नहीं करता। पर कोई बात नहीं, मुझे जरा बड़ी होने और खिलने दो, चोटिया गूथने और गीत गाने दो। तब देखेंगे कि क्या इस दुनिया मे कोई ऐसा आदमी है, जो मुझे प्यार न करने की हिम्मत करेगा।"

कविता,

काम खत्म हो जाने पर हम करते है मन रजन
चलते चलते थकते ह तो दम लेते ह कुछ क्षण।
मेरे लिये कठिन तुम मजिल, तुम हो मधुर पडाव
तुम ही हो श्रम साध्य काम तो तुम ही मन बहलाव।

लोरी बनकर तुमने मेरा, बचपन सरस बनाया,
तुम्हें वीरता या वसन्त के, सपनो मे फिर पाया।
खिला प्यार का कुसुम हृदय मे, तुम ही उसमे बोली
पर मेरे ही साथ प्यार ने, मन मे पलके खोली।

लडका था तो तुमसे जन्मे, मा की छाया झलकी,
फिर तू बनी प्रेमिका मेरी, मदिरा बनकर छलकी।
मेरे विवश बुढापे म, सुख लेगी बेटी बनकर,
तू स्मृति बन रह जायेगी, जब हो जाऊगा खण्डहर।

कभी-कभी लगता है मुझको, तुम पवत दुगम, दुष्कर
कभी-कभी लगता है जसे, तुम हो सधी हुई नभचर।
तुम उडान म, पख समान,
युद्ध भूमि म, शस्त्र महान।
मेरे लिये सभी कुछ कविता, केवल चैन नही पाता
अच्छा है या बुरा, न जानू, बस, सेवा करता जाता।

श्रम का अन्त कहा पर होता, शुरू कहा पर मन बहलाव?
कूच कहा तक जारी रहता कहा राह का मधुर पडाव?
तू ही मेरा कठिन सफर है तू ही है पथ का विश्राम
तू ही मन बहलाव राह का, तू ही मेरा मुश्किल काम।

पिता जी कहा करते थे कि सिरखाऊ बक्की को चुप कराने के लिए किसी सम्मानित बुजुग या मेहमान को बोलना शुरू कर देना चाहिए। अगर बक्की इसके बाद भी अपनी बेतुकी बकवास बन्द न करे, तो गीत गाना शुरू कर दो। अगर गीत का भी उसपर कोई असर न हो, तो बेझिझक उसे कालर से पकडकर घर से बाहर निकाल दो। अपनी बकबक से गीत मे बाधा डालनेवाले हर आदमी की भी इसी तरह अच्छी मरम्मत की जा सकती है।

कविता, तुम तो खुद ही दूसरो से कहीं ज्यादा अच्छी तरह यह जानती हो कि तुम्हारी चर्चा करने से तुम न तो बेहतर और न ही ऊची हो जाओगी। क्या बातो से गीत की महत्ता बढायी जा सकती है? क्या केतली के पानी से पहाडी धारा का प्रवाह तेज किया जा सकता है? क्या

फूकों से तेज हवा को और तेज किया जा सकता है? क्या मुट्ठी भर बर्फ से गगन-चुम्बी पहाड़ी चोटियों की भव्यता बढ़ायी जा सकती है? क्या पोशाक की काट या मूछों के फैशन से बेटे के प्रति मां का प्यार बढ़ाया जा सकता है?

कविता, तुम्हारे बिना मैं यतीम हो जाता।

कविता,

तेरे बिना हमारी दुनिया, होती जैसे गुफा अंधेरी
सूरज क्या होता है यह तो बिल्कुल इतना समझ न पाती,
या वह ऐसा अम्बर होती जिसमें तारा एक न चमके
या फिर ऐसा प्यार कि जिसमें आलिंगन का स्नेह, न बाती।

दुनिया होती सागर जैसी, मगर नीलिमा से अनजानी
हिम आच्छादित, धवल छटा से, जो मनमोहक चिर, सुन्दर
या फिर ऐसा उपवन होती, जिसमें कलियां, सुमन न खिलते
जहां न गाता मधुर बुलबुले जहां न टिड्डो का मृदु स्वर।

पातहीन सब तरुवर होते भद्दे भाडे, काले काले
गर्मी नहीं, न जाड़ा होता न वसंत केवल पतझर
लोग असभ्य सभी हो जाते दीन-हीन-से, भाव शून्य से
रहा गीत तो गीत न लेता जन्म कभी इस धरती पर।

अक्सर लोगों में यह कहा जाता है कि "संसार की रचना के एक सौ बरस पहले ही कवि का जन्म हुआ था"। इस तरह वे शायद यह कहना चाहते हैं कि यदि कवि संसार की रचना में हिस्सा न लेता, तो दुनिया इतनी सुन्दर न बनती।

हम तीन भाई थे और हमारी एक बहन थी। बहन सबसे बड़ी थी। सभी पहाड़ी औरतों की तरह उसके भाग्य में भी बहुत काम लिखा था, दुःख-दर्द और आंसू लिखे थे। पिता जी बार-बार हमसे यह कहा करते थे—

"भाई तो, तुम तीन हो और बहन तुम्हारी एक है। उसको सहेजो, उसकी चिन्ता किया करो। तुम्हारे लिए बहन से बढ़कर अधिक निकट का अन्य कोई व्यक्ति नहीं हो सकता।"

यह सच है, मुझे बहन सबसे ज्यादा प्यारी है। मगर मेरी एक अन्य बहन भी है और मैं नहीं जानता कि उन दोनों मे से कौन-सी मुझे अधिक प्रिय है। मेरी दूसरी बहन है—कविता। उसके बिना म जिन्दा नहीं रह सकता।

कभी-कभी म अपने से यह प्रश्न करता हू कि क्या चीज कविता का स्थान ले सकती है। इसमे कोई शक नहीं कि कविता के अलावा पहाड हू, बफ और नद-नाले हू, बारिश और सितारे हू, सूरज और अनाज के खेत हू मगर क्या पहाड, बारिश, फूल और सूरज का कविता के बिना और कविता का इनके बिना काम चल सकता है? कविता के बिना पहाड विराट पत्थर बन जायेंगे, बारिश परेशान करनेवाले पानी और डबरो मे बदल जायेगी और सूय गर्मी देनेवाला अन्तरिक्षीय पिंड बनकर रह जायेगा।

फिर से म यह सवाल करता हू—क्या चीज कविता का स्थान ले सकती है? हा, दूर-दराज के देश हू, पक्षियों के तराने हू, आकाश है और दिल की धडकन है। मगर कविता के बिना कुछ भी तो ऐसा नहीं रह जाता। दूर-दराज के लुभावने देशों की जगह केवल भौगोलिक अय ही रह जायेगा, महासागर की जगह पानी का अटपटा अपार भण्डार ही रह जायेगा, पक्षियों के तराने नर-मादा की जरूरी पुकार ही बन जायेंगे, नीले आकाश की जगह कई गसो का मिश्रण और दिल की धडकन की जगह सिफ खून का दौरा ही बनकर रह जायेगा।

निश्चय ही कोमलता, नेकी, दया, प्यार, सुन्दरता, साहस, घृणा और गव भी हू मगर ये सभी भावनायें कविता से ही जन्मी हू, उसी तरह जसे कविता ने इनसे जन्म पाया है। वे कविता के बिना जीवित नहीं रह सकतीं और कविता उनके बिना!

मेरी कविता मेरा सृजन करती है और म अपनी कविता का। एक-दूसरे के बिना हम निर्जीव हू—इतना ही नहीं, हमारा अस्तित्व ही नहीं रहता। मेरे जिस्म मे हड्डिया हू। कोई अजनबी आख यह नहीं बता सकती कि मेरी कौन-सी हड्डिया मजबूत और सही-सलामत हू तथा कौन-सी टूटी

थीं और बाद को जुड़ गयीं। मगर एक्सरे से सब कुछ नज़र आ जायेगा और मेरे अन्दर जो कुछ गुप्त तथा रहस्यपूर्ण है, उसे सभी देख सकेंगे।

मेरी पसलियों, रीढ़ की हड्डी और फेफड़ों की तुलना में मेरी आत्मा कहीं गहरी और अधिक विश्वसनीय ढंग से छिपी हुई है। किन्तु कविता की किरणें मुझे रोशन कर देती हैं और मेरी आत्मा की हर गतिविधि लोगों के सामने आ जाती है। कविता की जादुई किरणों से प्रकाशित मेरी आत्मा बिल्कुल निरावरण और पारदर्शी होकर मानो हथेली पर रख दी जाती है और लोग मुझे आर-पार देख सकते हैं।

आधुनिक गणन-यन्त्रों में हज़ारों तार और चक्र लगे होते हैं। बड़ी-बड़ी संख्या के जटिल प्रश्न उन्हें हल करने को दिये जाते हैं। बिजली की तरंगें असंख्य चक्रों और तारों के बीच से दौड़ती है। इस जटिल यन्त्र में जो प्रक्रियायें होती हैं, कोई आंख या कोई मस्तिष्क उन्हें नहीं जान सकता। मगर बाद में आखिरी जवाब, परिणाम के रूप में कोई एक संख्या हमारे सामने आ जाती है।

मेरे शरीर के असंख्य तारों के बीच से कैसे प्रभावों, प्यार और घृणा की कैसी तरगें दौड़ती हैं, यह कोई नहीं जान सकता। मेरे रोम-रोम पर अपनी छाप छोड़नेवाली अनुभूतियों से बाद में कविता जन्म लेती है। मेरी आत्मा अन्तिम और उच्चतम रूप में इसी का सृजन कर सकती है, इसे ही जन्म दे सकती है।

बहुत घूमा फिरा हूं मैं इस दुनिया में। कभी पैदल तो, कभी घोड़े पर, कभी हवाई जहाज़ में कुर्सी पर ऐंसे टेक लगाकर मानो ऊंघ रहा हूं, कभी रेलगाड़ी की ऊपरवाली बर्थ पर लेटकर और कभी तेज़ कार में।

पगडंडी या घोड़े पर मुझे देखकर लोग यह कह सकते थे कि वह रसूल हमज़ातोव है। वह अकेला ही जा रहा है और शायद उसे अकेलेपन के कारण ऊब महसूस हो रही होगी। मगर मैं कभी भी एकाकी नहीं होता। मेरी बहन—कविता हमेशा मेरे साथ रहती है। एक मिनट को भी हम दोनों जुदा नहीं होते। कभी-कभी तो नींद में भी मैं काव्य रचना करता हूं, या पहले की लिखी हुई अपनी कवितायें याद करता हूं, या दूसरे कवियों की कवितायें पढ़ता हूं।

पहले मैं यह सोचता था कि धरती पर बहुत कम कवि हैं। शायद कवियों को दूसरे लोगों के बीच बहुत ऊब अनुभव होती होगी। जीवन में

हर किसी की अपनी दिलचस्पी होती है यानी जिसके बारे मे साथियों या
पड़ो सियों से बातचीत की जा सकती है—काम के बारे मे, बीवी, वेतन,
छुट्टी के दिन, घर गिरस्ती, माहीगीरी, सिनेमा या बीमारी के बारे मे
म सोचता था कि इन सभी बातों के सम्बन्ध मे कवि भी लोगों से बातचीत
कर सकता है, मगर जिस काव्यमय रूप मे वह दुनिया को ग्रहण करता
है, उसके बारे मे वह किससे चर्चा करेगा?

मगर बाद मे यह बात मेरी समझ मे आई कि अकवि इस दुनिया मे
कोई नहीं ह। हर व्यक्ति की आत्मा मे कुछ कवि बसा हुआ है। कम से
कम कविता हर किसी के यहा उसी तरह मेहमान बनकर आती है, जसे
दोस्त अपने दोस्त के पास आता है।

हमारे लोगों मे गीत के प्रति प्यार उतना ही स्वाभाविक और समझ
मे आ नेवाला है, जितना बच्चों के प्रति प्यार। हां, हम सभी कवि ह।
हमारे बीच केवल इतना ही अन्तर है कि कुछ इसलिए कविता रचते ह
कि ऐसा कर सकते ह। दूसरे इसलिए काव्य रचना करते ह, कि उन्हे ऐसा
लगता है कि वे ऐसा करने मे समर्थ ह। मगर तीसरे बिल्कुल कविता नहीं
रचते। शायद ये, तीसरे ही असली कवि ह?

वह जमाना भी था, जब म कविता नहीं रचता था। तो क्या म
तब कवि नहीं था? क्या तब मेरा हृदय कम धड़कता था और खून मे
कम गर्मी होती थी? क्या दुख-दद से मेरा हृदय कम टीसता था और
खुशी से कम नाचता था? क्या तब सभी कुछ जानने की पिपासा मुझमे
कम थी? क्या तब मेरी आखों को यह दुनिया इतनी ही सुदर नहीं लगती
थी जितनी अब? क्या काली घटाओ के बीच बडा सा नीला सितारा
देखकर म इसी तरह भाव विभोर नहीं हो उठता था? क्या निझर की
झर झर मे मुझे मधुर सगीत की अनुभूति नहीं होती थी? क्या सारसों
की आवाजें और घोड़ों की हिनहिनाहट सुनकर म विह्वल नहीं हो उठता
था? क्या कोई पुराना गीत या बुजुर्गों के बढ़िया कारनामे सुनकर मेरी
आखें डबडबा नहीं आती थीं?

मुझे याद आता है कि जब म छोटा था, तो एक पड़ोसी के घोड़े
चराने का काम करने लगा था। तीन दिन के काम के बदले मे पड़ोसी
को मुझे एक किस्सा सुनाना पड़ता था।

मुझे याद आता है कि तभी म चरवाहों के पास पहाड़ों में जाया करता था। आधा दिन उधर जाने और आधा दिन लौटने में लगता। और म वहा जाता था एक कविता सुनने।

ऊनसुफूल की नाशपातिया, गिमरा के अगूर, बूत्सरा का शहद, अवार गीत।

मुझे याद आता है कि जब म दूसरे दर्जे मे पढ़ता था, तो एक दिन म अपने त्सादा गाव से खडी पहाडी पगडडियो पर चढ़ता हुआ बूत्सरा गाव गया, जो बीस किलोमीटर दूर है। यहा मेरे पिता जी के एक बुजुर्ग दोस्त रहते थे, जिन्हें बहुत-से पुराने गीत, कवितायें और दन्त-कथायें याद थीं। बुजुर्ग चार दिन तक सुबह से शाम तक मुझे यह सब कुछ सुनाते रहे और मुझसे जसे बन पडा, म उनके गीत लिखता रहा। म कविताओं और गीतों से भरा हुआ थला लिये खुश-खुश लौट रहा था।

बूत्सरा गाव के ऊपर एक पहाड सिर उठाये खडा है। जब म इस पहाड पर चढ़ गया, तो न जाने कहां से बडे-बडे और भयानक एलसेशन कुत्ते मेरी तरफ लपके। वे कम से कम एक दजन रहे होंगे। हरी घास पर वे ऐसे ही तजी से झपटते आ रहे थे, जसे टारपीडो किसी जहाज के काले पहलू की ओर निशाना साधे हुए झपटती चली आती ह। उनके बडे-बड पीले और गीले दातोंवाले जबडे मुझे दिखाई दे रहे थे। बस एक मिनट और बीत जाता, तो वे मुझे चीर डालते। मगर इसी वक्त मुझे चरवाहे की आवाज सुनाई दी—

"लेट जाओ! हिलो डुलो नहीं।"

म लेट गया, धरती से चिपक गया और निर्जीव-सा हो गया। हिलते डुलते हुए मुझे डर लगता था और शायद मने तो सास भी रोक ली थी। सिफ मेरा दिल ही ऐसे जोर से धक धक कर रहा था कि मुझे यों लगा मानो उसकी धडकन दूर तक सुनाई दे रही है। कुत्त कुछ भी न समझ पाते हुए मेरे पास रुक गये, मुझे और कविताओं से भरे मेरे थले को सूघते रहे। कुत्ते यह सोचकर कि उनसे कोई भूल हो गयी है, उलझन में एक-दूसरे की तरफ देखते और अपनी कल्पना के मुख्य शिकार को पकडने के लिए आगे भाग गये। जल्दी ही वे मोड के पीछे गायब हो गये।

चरवाहे के आने तक म लेटा रहा।

"किसके बेटे हो?"

"म रसूल हू, त्सावा के हमज़ात का बेटा।" मने इस आशा से जान-बूझकर पिता जी का नाम लिया था कि उसे सुनकर चरवाहा मेरी ज्यादा चिंता करेगा और मुझे किसी तरह की तकलीफ नहीं होने देगा।

"यहा पहाड पर क्या कर रहे हो?"

"म कविताओं के लिए बूत्सरा गया था। यह रहीं पले मे।"

चरवाहे ने कवितायें निकालकर उन्हे गौर से देखा।

"तो तुम भी कवि बनना चाहते हो? तो फिर तुम कुत्तो से क्यो डर गये? तुम्हारे पथ पर क्या इसी तरह के कुत्ते तुमपर झपटेंगे? मेरे एलसेशन कुत्तो की तरह वे कवितायें सूघकर आगे नहीं भाग जायेंगे। तुम्हे डरना नहीं चाहिए, किसी भी चीज़ से डरना नहीं चाहिए। जानते हो यह कौन-सा पहाड है? इसी पहाड से हाजी मुराद सन्तरियो की आखो मे धूल झोंककर नीचे कूद गया था। सन्तरी मुह बाये देखते रह गये थे और हाजी मुराद बच निकला था। अपने वतन में तो पहाड भी मदद करते ह।"

पहले म ऐसा समझता था कि काव्यमयी हलचल, जो मुझपर हावी हो गयी है, वह बेचनी, जो निरन्तर मेरी आत्मा मे बसी रहती है, प्यार, जो मेरे हृदय मे जमकर बठ गया है, यह सब और खून का उबाल तक भी वक्ती चीज़ है और जल्दी ही यह खत्म हो जायेगा। मगर मेरा सिर सफेद हो चला है, बच्चे बडे बडे हो गये ह और मेरी किताबें पुरानी होती जा रही हैं, मगर एक भी भावना ने मेरा साथ नहीं छोडा है। मेरी कविता मेरी बहुत ही वफादार सगिनी रही है।

अब म उसे सम्बोधित करता हू।

कविता, दुनिया और ज़िन्दगी के लम्बे सफर पर तुमने कभी मेरा साथ नहीं छोडा और अब, जबकि म गद्य के बडे समतल विस्तारों मे बढ़ने जा रहा हू, तुम अब भी मेरा साथ नहीं छोडोगी। म जानता हू कि कहानी को छन्दों मे बाधना बेमानी है। इस तरह बहुत ही अच्छी कहानी को बहुत ही बुरी कविता बनाया जा सकता है। मगर कहानी मे कविता तो खाने मे नमक का काम दे सकती है। मेरे तो समूचे जीवन के लिए ही कविता नमक के समान रही है। उसके बिना मेरा जीवन फीका और

बदमजगी होता। हम पहाड़ी लोग मेज पर खाना लगाते समय नमकदानी रखना कभी नहीं भूलते।

गद्य दूर तक उड़ सकता है, मगर कविता की उड़ान ऊंची होती है। गद्य उस बड़ हवाई जहाज के समान है, जो बड़ इतमीनान से सारी दुनिया के गिर्द चक्कर लगा सकता है। कविता लड़ाकू हवाई जहाज है, जो बिजली की तरह अपनी जगह से लपकता है, आन की आन मे आसमान की गहराइयो मे जा पहुचता है और गद्य के बड़े हवाई जहाज को, वह चाहे कितना ही ऊचा क्या न उड़ रहा हो, जा पकड़ता है।

अपनी पुस्तक म म विभिन्न विधाओं को मिलाना और उसे अवार स्तान की सीमाओं से दूर भजना चाहता हू। भला क्यों न वह एसा? हमारी कवितायें तो एक अर्से से दागिस्तान की हदों मे बहुत दूर पाठकों के दिलों पर अपनी राहें-पगडडियां बना रही ह। कुछ कहानियों को भी विदेश जाने के अनुमति-पत्र मिल गये ह। हां, हमारे नाटक अभी घर में ही बठे ह। शायद उनके कागजात की जाच हो रही है या उन्हें अभी अच्छा व्यवहार और तौर-तरीक़े सिखाने की जरूरत है।

अगर मेरे दिमाग मे नाटक लिखने का विचार आ जाता, तो सारा दागिस्तान, गांव, शहर, सभी देश और सारी दुनिया उसक घटना-स्थल होते। पहाड, आकाश, तेज नदियां, सागर और धरती मच-सज्जा होते। बीती सदियां, वत्तमान और पूरा भविष्य उसका घटना-काल होता। सहस्राब्दी को म क्षणो मे व्यक्त करता। उसके पात्र होत—म खुद, मेरे पिता जी, मेर बच्चे, मेरे दोस्त और कभी के मर खप गये तथा ऐसे लोग भी, जिनका अभी जन्म ही नहीं हुआ।

यह नाटक मेरी मुख्य रचना, मेरा 'युद्ध और शान्ति', मेरा 'डोन क्विक्सोत', मेरा दविक कामेडी' होता। मगर म न केवल नाटक लिखने, बल्कि अपनी भावी पुस्तक की दीवार मे एक 'नाटकीय" पत्थर रखने की भी जोखिम मोल नहीं लूगा। नाटक को म किसी दूसरे वक्त, बल्कि दूसरे लेखकों के लिए रहने देता हू। बारी बारी से गद्य और पद्य ही लिखूगा। कविता—तेज घुड़सवारी है और गद्य—पदल यात्रा। पदल ज्यादा दूर तक जाया जा सकता है। घोडे पर जल्दी से जाना सम्भव है। कभी म पदल चलूगा, तो कभी घुड़सवारी करूगा। जो कुछ कहानी क रूप मे सुना सकता हू, सुनाऊगा, जो कुछ गद्य के रूप मे सुना नहीं सकूगा, उस

लम्बे-लम्बे पत्ता-सी लम्बी आखें
धुधली धुधली उनम आसू की दो बूदें चमक रही,
जब हसता हू मुझे ध्यान स तब दखा
छिपा न हा मरी पलको म आसू की दो बू" रही।

नोटबुक से। सिबुख गाव के एक पहाडी ने पहाड क दामन म सफेद बादल देखे तो यह समझा कि फूले फूले सफेद ऊन का ढेर है और उसने नीचे छलाग लगा दी। फूले फूले बादल ऊन या रूई के ढेर से चाहे कितने ही मिलते-जुलते क्यों न हो, फिर भी वे रूई कभी नहीं बन सकेगे।

केवल रूप को ध्यान मे रखकर लिखी गयी पुस्तक रूप की दृष्टि से चाहे कितनी भी सुन्दर क्यों न हो, फिर भी वह मानवीय आत्मा को कभी नहीं छू पायगी।

केवल रूप की तरफ ध्यान देना उचित नहीं। सागर तट पर सारा जीवन बिता देनेवाले एक मछुए ने जगल मे चींटियो का ढेर देखा, तो उसे केवियर का ढेर समझ लिया। सागर पर कभी न जानेवाले एक पहाडी ने जब केवियर का ढेर देखा, तो उसे चीटियो की बाबी मान बठा।

नोटबुक से कुछ और।

वक्ष एक हा, शोभा दता जिस पर तमगा गोली का भी पड़े निशान
चेहरा एक कि आसू जिस पर झर आत ह, खिल उठती है मृदु मुस्कान।
होठ वही है, कभी जहर को वे छूत ह, कभी शहद का करते पान,
गगन एक है, उसमे ही तो उडें कबूतर औ' उकाब भी भरे उडान।
बादल काला, पर उसम जल ज्वाला दोना, सग सग रहते गतिमान,
कील एक भी साथ साथ ही उस पर लटक, साज और खजर भी म्यान।

नोटबुक से कुछ और। पहली बार प्यार करनेवाली जवान पहाडी लडकी ने सुबह खिडकी मे से बाहर झाका, तो खुशी स चिल्ला उठी—

"इन वृक्षों पर कितने सुन्दर फूल आ गये ह!"

'वृक्षा पर तुम्हे फूल कहां नजर आ रहे ह?' उसकी बूढी मां ने आपत्ति की। 'यह तो बर्फ है, पतझर का अन्त और जाडे का आरम्भ हो रहा है।'

सुबह एक ही थी, मगर एक नारी के लिए वसन्त की और दूसरी के लिए जाड़े की। मेरे भीतर दो भिन्न व्यक्ति रहते है जिनका म एक रूप हू। उनमे से एक जवान है और दूसरा बूढ़ा, एक फूल है, दूसरा बर्फ, एक वसन्त है और दूसरा जाडा। अगर मेरी किताब मे आपको गद्य और पद्य दोनो मिले, तो हैरान न होइयेगा।

"तो क्या तुम एक हाथ म दो तरबूज उठाने की कोशिश नहीं कर रहे हो?" मुझसे पूछा जा सकता है।

"नहीं, म ऐसा नहीं कर रहा हू," यही मेरा जवाब है।

जब म विभिन्न विधाओ को एकसाथ मिलाता हू, तो इसका यह मतलब नहीं है कि म तरह-तरह के फलो को काटकर, एकसाथ मिलाकर उनका सलाद बनाना चाहता हू। मगर म तो उन्हे एक समझदार माली की तरह मिलाकर, उनका सकरण करके एक नयी किस्म तयार करना चाहता हू।

मालूम नहीं कि इसका कसा फल सामने आयेगा। मगर हर काम मे ऐसा ही होता है। आग जलाते वक्त हम उसके सारे परिणामो की कल्पना नहीं कर सकते। मगर इसका यह मतलब नहीं है कि हर बार आग जलाते वक्त डरा जाय। तो लीजिये, म दियासलाई जलाता हू, उसे सूखी टहनी के पास ले जाता हू और हाथ की ओट करके उसे हवा से बचाता हू। आग जलने लगती है। मुझे इस बात का डर नहीं है कि फिलहाल जो आग इतनी दुबल और सहमी-सहमी-सी है, वह अचानक काबू मे न आनेवाले दरिन्दे का रूप ले लेगी। म इसके बारे मे नहीं सोचता हू, बस, आग जला रहा हू।

शामिल ने अपनी तलवार पर एक अपनी ही कहावत खुदवा रखी थी—"युद्ध-क्षेत्र की ओर अपना घोड़ा बढ़ाते हुए जो आदमी परिणामो की चिन्ता करता है, वह वीर नहीं।"

कहते हैं कि चतुर हाथो मे साप का जहर भी फायदेमन्द हो सकता है और मूख के हाथो मे शहद भी नुकसान पहुचा सकता है।

कहते हैं कि अगर तुम कहानी सुना नहीं सकते, तो गाओ, अगर गा नहीं सकते, तो कुछ सुनाओ।

"अरे, जो कुछ उसने आज बताया, हम त्साडावासी बीस बार यह सभी कुछ पहले भी सुन चुके है। मगर वह सुनाता ऐसे ढग से है कि न चाहते हुए भी उसे सुनना ही पडता है। शाबाश है इस आनदीवासी को, अल्लाह उसकी उम्र दराज करे।"

ढग के बारे में कुछ और। हर दरिन्दा अपने ढग से चालाक होता है, शिकारी से बच निकलने का उसका अपना ढग होता है। हर शिकारी का दरिन्दे को फांसने, उसका शिकार करने का अपना ढग होता है। ठीक इसी तरह हर लेखक का अपना ढग, लिखने का अपना तरीका, अपना मिजाज और अपनी शैली होती है।

युवा कवि के रूप मे जब म मास्को के साहित्य-सस्थान मे पढ़ने गया, तो मने अपने को नये और अपरिचित वातावरण मे पाया। सभी कुछ मुझे शिक्षा देता था—खुद मास्को, सेमिनार, सेमिनारो मे आनेवाले प्रमुख कवि, प्रोफेसरगण, मेरे सहपाठी और होस्टल के साथी। सभी ओर से मुझपर शिक्षा की बौछार होती थी और इसलिए कुछ समय को म जसे कि भूल भुलया मे फस गया, भटक गया और एक नये, एक अजीब ढग से, जिसका प्रचार साहित्य मे अभी तक अस्तित्व नहीं था, लिखने लगा।

म यह नहीं छिपाऊगा कि उन दिनों म अपनी कविताओ को रूसी मे अनूदित देखने को बहुत लालायित था। म रूसी पाठक की ओर लपक रहा था और मुझे लगा कि मेरा नया ढग रूसी पाठक के अधिक निकट होगा, वह आसानी से उसकी समझ मे आ जायेगा। मने अपनी अवार मातृभाषा के सगीत, कविता की लय-ताल की ओर बिल्कुल ध्यान देना छोड दिया। कविता के रूप, अलकारहीन भाव ने प्रमुख स्थान ले लिया। म यह सोचता था कि उचित ढग का विकास कर रहा हू, मगर वास्तव मे—अब यह बात समझता हू—चालाक बन रहा था।

खुशकिस्मती से म जल्दी ही यह समझ गया कि कविता और चालाकी ऐसी दो तलवारें ह, जो एक म्यान मे नहीं समा सकतीं। मगर मेरे बुद्धिमान पिता मुझे और भी पहले समझ गये थे। मेरी नयी कवितायें पढ़कर उन्हें यह स्पष्ट हो गया कि भेड की मोटी दुम के लिए म खुद भेड को गवाना चाहता हू, कि म उस बजर पथरीली जमीन को जोतना और बोना चाहता हू, जिसे लाख सींचने पर भी उसमे कुछ पदा नहीं होगा, कि म आकाश के बिना बारिश चाहता हू।

पिता जी फौरन यह सब कुछ समझ गये, मगर वे बहुत ही सावधान और नीतिकुशल व्यक्ति थे। एक दिन बातचीत के दौरान बोले—

"रसूल, मुझे इस बात से चिंता हो रही है कि तुम्हारा लिखने का ढंग बदलने लगा है।"

"पिता जी, मैं अब बालिग हूं और लिखने के ढंग की तरफ सिर्फ स्कूल में ही ध्यान दिया जाता है। बालिग से सिर्फ यही नहीं पूछा जाता कि उसने कैसे लिखा है, बल्कि यह कि क्या लिखा है।"

"मिलीशियामैन या ग्राम-सोवियत के प्रमाणपत्र देनेवाले सेक्रेटरी के बारे में तो शायद ऐसा ही सही है। मगर कवि के लिए उसका ढंग, उसकी शैली— लगभग आधा काम है। कविता में चाहे कितना भी मौलिक विचार क्यों न व्यक्त किया जाये, उसे सुन्दर अवश्य होना चाहिए। सुन्दर ही नहीं, अपने ढंग से सुन्दर होना चाहिए। कवि के लिए अपनी शैली खोज पाना, अपने को खोज लेना ही कवि बनना है।

"तुम बहुत जल्दी कर रहे हो, मगर तेज और उछल कूद करनेवाला सोता कभी सागर तक नहीं पहुंच पाता। अधिक शांत और इतमीनान से बहनेवाली दूसरी धारा उसे निगल जाती है।

"अधिक घोंसले बदलने और यह न जाननेवाला परिन्दा कि कौन सा घोंसला चुने, आखिर घोंसले के बिना ही रह जाता है। क्या अपना घोंसला बना लेना अधिक आसान नहीं, तब चुनने का सवाल ही नहीं रहेगा।"

अब, जबकि मैं चालीस के पार पहुंच चुका हूं, अपनी चालीस किताबों के पृष्ठ उलटता हूं, तो यह पाता हूं कि मेरे खेत में, जहां मैंने गेहूं बोया था, पराये खेतों के ऐसे पौधे भी उग आये हैं, जिन्हें मैंने नहीं बोया था। बेशक ये झाड़-झखाड़ नहीं, बल्कि अच्छे—जौ, जई और रई—के पौधे हैं, मगर फिर भी मेरे गेहूं के खेत में ये पराये हैं।

अपने रेवड़ में मुझे दूसरों की भेड़ें नजर आ रही हैं। वे कभी भी ऊंचाई और पहाड़ी हवा की आदी नहीं हो पायेंगी।

खुद अपने में मैं कभी-कभी दूसरे लोगों को अनुभव करता हूं। मगर इस किताब में मैं अपना रूप ही रहना चाहता हूं। अच्छा हूं या बुरा—जैसा हूं, उसी रूप में मुझे ग्रहण कीजिये।

पहाड़ों में जब कोई पहाड़ी आदमी शादी में शामिल होने आता है, तो अपने से पहले वहां जमा हुए लोगों से वह यह पूछता है—

"तुम खुद ही यहां काफी हो या म भी आ जाऊं?"

शादी मे शामिल पहाड़ी यह जवाब देते ह—

"अगर तुम वास्तव मे ही तुम हो, तो अन्दर आ जाओ।"

तो यह है वह मेरी किताब, जिससे मुझे यह साबित करना है कि म—म हू। म लेखक होना चाहता हू—लेखक की भूमिका नहीं निभाना चाहता। देखिये तो, अभिनेता रगमच पर कैसे ब्राडी पीता है। लीजिये, वह नशे मे धुत्त हो गया, जबान से ठीक-ठीक शब्द नहीं निकलते, सिर छाती पर झुक गया। मगर जिस बोतल से वह पी रहा है, उसमे ब्राडी नहीं, चाय है। चाय से नशा नहीं होता। मेरे ख्याल मे मेरी इस बात से वे तो सहमत होगे, जिन्होंने कभी ब्राडी नहीं पी।

ऐसा प्रतीत होता है कि अगर किसी नाटक मे कवि की भूमिका होती है, तो नाटककार के लिए इस कवि की कवितायें रचना ही सबसे ज्यादा मुश्किल काम होता है। इसलिए नाटक मे यदि कोई कवि होता है, तो वह अपनी कवितायें नहीं सुनाता। मगर कविता के बिना भला कवि क्या होगा? दुकान की शो विडो की रौनक बढ़ानेवाले गत्ते के मॉडल से वह कसे भिन्न है? मुझे किसी के जसा—उमर खयाम, पुश्किन या बायरन के जसा भी नहीं होना चाहिए।

कुछ भसचोर किसी की भस चुराने पर उसके सींग उखाड देते ह या दुम काट डालते ह। कार चुरानेवाले चोर उसपर दूसरा रग कर देते ह। मगर सारी चालाकी के बावजूद चोरी तो चोरी रहती है।

पाठको की बातचीत मे मुझे यह सुनकर सबसे ज्यादा खुशी होती कि रसूल ने रसूल के ही ढग मे किताब लिखी है।

चहकनेवाले परिदो के मुकाबले मे मुझे गानेवाले परिदे ज्यादा पसन्द ह। कूडे-करकट मे से कुछ चुगनेवाले पक्षी की तुलना मे उडता हुआ पक्षी मुझे अधिक अच्छा लगता है। तग बन्दरगाह मे खडे जहाज के मुकाबले मे नीले सागर की लहरों पर तरता हुआ जहाज मुझे कहीं अधिक अच्छा लगता है।

हल्की फुल्की नावो को देखिये। वे सभी तरह की लहरो पर कसे उछलती ह। बडे और भारी जहाजो को देखिये! वे तो तूफान के वक्त भी हिचकोले नहीं खाते।

शराब की एक बूद पिये बिना ही मूख शोर मचाते और लडाई झगडा करते ह। बुद्धिमान बडा जाम पीने के बाद भी धीरे धीरे, शातिपूवक और सजीदगी से बात करते ह।

रसूल की किताब, तुम लोगो के सामने अपने को ऐसे पेश करो, जसे कि रसूल की किताब को शोभा देता है।

किसी पहाडी के घर मे अगर कोई अपरिचित मेहमान आ जाता है, तो तीन दिन से पहले उससे उसका नाम और यह नहीं पूछा जाता कि वह कहा से आया है।

मेरी पुस्तक को भी आप इसी तरह स्वीकारें। यह नहीं पूछें कि वह कौन है, कहा से आयी है, किसने लिखी है। उसे खुद ही अपना परिचय देने दें।

म जसा हू, उससे अच्छा या बुरा नहीं होना चाहता। बीस साल की उम्र मे अगर ताकत नहीं है – तो इतजार नहीं करो, वह नहीं आयेगी। तीस साल की उम्र मे अगर अक्ल नहीं है – तो इतजार नहीं करो, वह नहीं आयेगी। चालीस साल की उम्र मे अगर धन नहीं – तो इतजार नहीं करो, वह नहीं आयेगा। ऐसी है एक रूसी कहावत। हमारे पहाडो मे कहा जाता है – अगर चालीस साल मे आदमी उकाब नहीं बना – तो वह कभी नहीं उड पायेगा। मेरी घोडागाडी को मेरे ही रास्ते पर चलने दो।

जब बारिश होती है, तो हमारे गाव के ऊपर खडे पहाड से बहुत-सी छोटी छोटी धारायें नीचे बहकर आती ह। नीचे वे सभी घुल मिलकर चक्की चलाती झील बन जाती ह। फिर इस झील से सिफ एक ही बडी नदी बहती है।

हमारे इदगिद के पहाडो से बहुत-सी तग पगडडिया हमारे गाव की ओर आती ह। धाराओ की तरह वे सभी हमारे गाव मे आकर मिल जाती ह। लेकिन अगर गाव से हलका, नगर या बडी दुनिया में जाना हो, तो उसके लिए केवल एक ही चौडी सडक है।

म नहीं जानता कि सडक या नदी – किससे अपनी तुलना करू। मगर म इतना जानता हू कि मेरे बहुत-से हमवतनों के विचार, मेरे बहुत-से हमवतनों के शब्द और भावनायें पहाडी धाराओं या टेढ़ी मेढ़ी पगडडियों की तरह मुझमे आकर घुल मिल गयी ह। मेरी अपनी पगडडी, मेरी राह मुझे गांव से कविता-क्षेत्र मे ले गयी है।

म दुनिया के बहुत से हिस्सों मे हो आया हू, बहुत से देशो की यात्रा कर चुका हू और तरह-तरह के लोगो से मिला हू। बडी बडी शानदार दावता और स्वागत समारोहों मे जाने का मुझे मौका मिला है। ये स्वागत-समारोह राष्ट्रपतियों और बादशाहो के भी थे, प्रधान मन्त्रियो और साधारण मन्त्रियो तथा राजदूतो के भी। इन समारोहों मे जूते और चादें कसे चमकती ह, कसे बढ़िया ढग से टाइया बधी होती ह, कसे बफ से सफेद कफ होते ह, कसे शिष्टतापूवक सिर झुकाये जाते है और मुस्कानें बिखरायी जाती ह, हर शब्द और हाव भाव कितना सधा बधा होता है! ऐसे समारोहो मे कलाकार प्रधान मन्त्रियो जसे लगते ह और प्रधान मन्त्री कलाकारो जसे।

ऐसे समारोहों मे म कभी भी खुद को अपने रूप मे अनुभव नहीं करता। म ऐसे हाव भाव प्रकट करता हू, जो करना नहीं चाहता, ऐसे शब्द कहता हू, जिन्हें कहने को मन नहीं होता। इन समारोहो का चमक-दमक मे से अचानक मुझे त्सादा के अपने चूल्हे और उसके गिद बठे हुए अपने परिजनो की या किसी होटल के कमरे मे जमा खुशमिजाज दोस्तो की झलक मिलती है। उस वक्त उन बहुत से पक्वाना की जगह लहसुन वाले खीनकाल खाने की तीव्र इच्छा होती है! अहा, आस्तीनें चढाकर अपने घर के चूल्हे के गिद दोस्तों के बीच बैठकर लहसुनवाले खीनकाल इस तरह हड़पने मे कितना मजा है कि बाहे घी से तर हो जायें!

कुछ किताबें पढ़ते हुए मुझे ऐसे लगता है, मानो वे कूटनीतिक समारोह मे उपस्थित हो। उनमे हाव भाव, गतिविधि और भाषण की स्वतन्त्रता नहीं होती।

मेरी किताब, तुम कूटनीतिक समारोह मे मेहमान नहीं बनना। तुम केवल वही शब्द कहना, जो तुम्हारे वास्तविक चरित्र के अनुरूप ह, ऐसे शब्द नहीं, जो केवल शिष्टतावश कहने होते ह।

मने ऐसे लोग देखे ह, जो जब तक अपने घर, अपने परिवार, अपने बीवी-बच्चा और दोस्तों मे होते ह, लोग रहते ह। मगर जसे ही अपने दफ्तर की कुर्सी पर जा बठते ह, रूखे, भावनाहीन और क्रूर हो जाते ह। उनका तो जसे कायापलट हो जाता है। हर नये पद, हर नयी कुर्सी के साथ उनका चरित्र, व्यवहार और चेहरा बदलता जाता है।

मेरी पुस्तक, तुम स्थिर रहना, अपना चरित्र नहीं बदलना, वैसे ही जसे म अपना चरित्र नहीं बदलता हू। स्वागत-समारोहो को नहीं, दोस्तों

और अपने चूल्हे के धुएं को प्यार करना, कन्सर्टों को नहीं, धुनों को प्यार करना, धरती की आवाज सुनना, सभाओं का शोर नहीं। ऐसा भी तो होता है कि सभाओं में एक बात कही जाती है और सभाओं के बाद बिल्कुल दूसरी ही।

नोटबुक में। कौन ऐसा दाग़िस्तानी होगा, जो सुलेमान स्तालस्की की बड़ी फर की टोपी, भेड़ की सुगंधित खाल के भारी कोट और काफ़ चमड़े के हल्के-फुल्के जूतों से परिचित न रहा हो! मेरे ख्याल में तो केवल दाग़िस्तानी ही नहीं, दूसरे लोग भी ऐसी टोपी और ऐसे जूता के बिना सुलेमान की कल्पना नहीं कर सकते थे।

तो सुलेमान स्तालस्की को पुरस्कृत किया गया और मक्सिम गोर्की ने उन्हें २०वीं शताब्दी का होमर कहा। सुलेमान को मास्को आमंत्रित किया गया। मास्को में एक दाग़िस्तानी मन्त्री उनसे मिले।

"अरे, प्यारे सुलेमान," मन्त्री ने कवि से कहा, "मास्को में तो गांव का सा रंग-ढंग अच्छा नहीं लगता। आपको अपना यह भेस बदलना होगा।"

दाग़िस्तानी सरकार के आदेशानुसार सुलेमान के लिए ऊनी सूट सिलवाया गया, उनके लिए नये जूते, कनटोपा और कराकूल की फर के कालरवाला ओवरकोट भी खरीदा गया। सुलेमान ने हर चीज को बहुत ध्यान से देखा। ओवरकोट को हाथ पर लटकाकर आंका, जूतों के तले आपस में बजाये और बाद में सभी चीजों को जैसे-तैसे लपेटकर सूटकेस में रख लिया।

'शुक्रिया। अच्छी, नयी चीजें हैं। मेरे बेटे मुसलिम के लिए बिल्कुल ठीक रहेंगी। मैं तो सुलेमान ही रहना चाहता हूं। न तो सूट और न बूट के लिए अपना नाम बदलना चाहता हूं। मेरे अपने जूते मुझसे नाराज हो जायेंगे।"

अपने बाहरी रूप की इस मौलिकता के प्रति भी सुलेमान का यह लगाव मेरे पिता जी को बहुत पसन्द आया।

नोटबुक से। सुलेमान के बेटा ने उन्हें कई बार लिखना-पढ़ना सिखाने की कोशिश की। सुलेमान ने हर बार बड़ी लगन से यह काम शुरू किया, मगर बाद में कागज रखकर यह कहा—

"नहीं, बच्चो। जसे ही म पेंसिल हाथ मे लेता हू, कविता फौरन मुझसे दूर भाग जाती है। कारण कि म कविता के बारे मे नहीं, बल्कि यह सोचने लगता हू कि इस कम्बख्त पेंसिल को कसे हाथ में थामना चाहिए।"

नोटबुक से। श्राफन्दी कापीयेव सुलेमान के दोस्त थे। उन्होंने रूसी भाषा मे सुलेमान की कविताओं का अनुवाद किया। तुच्छ और घटिया लोगो को इस दोस्ती से ईर्ष्या होती थी। उन्होने कापीयेव को विख्यात कवि की नजरो मे गिराना चाहा और बदनाम भी किया। उन्होने सुलेमान से कहा–

"तुम तो रूसी पढ़ नहीं सकते, मगर हम जानते ह कि श्राफन्दी कापीयेव अनुवाद करते हुए तुम्हारी कविताओं को बिगाड देता है। जहा चाहता है, उन्ह बढा देता है, जहा चाहता है, घटा देता है और बहुत सी पक्तियो को अपने ही ढग से बदल डालता है।"

एक दिन साधारण बातचीत के दौरान सुलेमान ने यह चर्चा चलाई–

"दोस्त," वे बोले, "मने सुना है कि तुम मेरे बच्चो को पीटते हो?"

श्राफन्दी फौरन समझ गये कि किस बात की तरफ इशारा किया जा रहा है।

"तुम्हारी कवितायें तुम्हारे बच्चे नहीं ह, सुलेमान। वे तो तुम खुद सुलेमान स्ताल्स्की हो।"

"तब, म बूढा तो बच्चो से भी ज्यादा इज्जत का हक्दार हू।"

"मगर सुलेमान, तुम्हारे लिए क्या ज्यादा महत्त्वपूण है कविता की पक्तिया या उनकी शली और आत्मा? तुम्हारे सामने शराब की बोतल रखी है। अगर यह शराब खराब हो जाये, तो इसकी मात्रा तो कम नहीं हो जायेगी, मगर यह वह शराब नहीं रहेगी, जिसे हम पीते ह और मजा लेते ह। सवाल शराब की मात्रा का नहीं, उसकी खुशबू, जायके और नशा देने की शक्ति का है।"

"तुम ठीक कहते हो, यही सबसे ज्यादा महत्त्वपूण है।"

वास्तव मे ऐसा ही हुआ कि श्राफन्दी कापीयेव ने ही सुलेमान को रूसी पाठकों तक पहुचाया।

नोटबुक से।

"तुम्हारे पिता की कविताओं की मुझे किसी तरह भी चाबी नहीं मिलती," श्राफन्दी ने मुझसे शिकायत की। हमजात त्सादासा की कविताओं

का भी उन्होने रूसी मे अनुवाद किया था। "तुम्हारे पिता का अपना ही ताला है। ऐसा लगता है कि वे हंस रहे है, मगर वास्तव मे उदास होते है। ऐसा प्रतीत होता है कि वे प्रशसा कर रहे है, मगर वास्तव मे व्यग्य, यहा तक कि मजाक करते होते है। ऐसा लगता है कि कोस रहे है, मगर वास्तव मे प्रशसा करते होते है। यह सब कुछ म समझता हू, मगर रूसी भाषा मे व्यक्त नहीं कर पाता। म उनकी कविता की शली, उनका भाव तो व्यक्त कर सकता हू, मगर मुझे तो खुद हमजात चाहिए, वसे ही जीते जागते जसा कि हम उन्हे जानते है। रूसी भाषा के पाठकों को उन्हे इसी रूप मे जानना चाहिए। वे मानो सभी लोगो जसे है, फिर भी बाकी सब से अलग है।"

कवि की कवितायें भी ऐसी ही होनी चाहिए।

संस्मरण से। अब मेरे गाववाले मुझे कवि रसूल हमजातोव के रूप मे जानते है। मगर कभी ऐसा भी वक्त था, जब सभी मुझे भुलक्कड और गडबड झाला व्यक्ति मानते थे। म किसी काम मे उलझा होता और उसी वक्त किसी दूसरी चीज़ के बारे मे भी सोचता रहता। नतीजा यह होता कि कमीज उल्टी पहन लेता, ओवरकोट के बटन गलत ढग से लगा लेता और ऐसे ही बाहर चला जाता। बूटो के फीते न बाधता और अगर बाधता, तो ऐसे कि वे फौरन खुल जाते। उस वक्त मेरे बारे मे कहा जाता था—

"यह कसे हुआ कि ऐसे सलीकेदार, ऐसे ढगवाले और शान्त पिता के घर मे ऐसे ऊधमी और बेढगे बेटे ने जन्म लिया है? इन दोनो मे से कौन बूढ़ा और कौन जवान है—वह जो फीते बाधना भूल जाता है या वह जो कभी कुछ नहीं भूलता?"

'हा," म ऐसी फुजूल बात के जवाब मे कहता, "मने पिता जी का बुढापा ले लिया है और उन्हें अपनी जवानी दे दी है।"

हां मेरे पिता जी आखिरी दम तक जवान आदमी की तरह सलीकेदार और चुस्त बने रहे। बाहरी और भीतरी तौर पर वे सदा सधे-बधे, अनुशासित और नपे-तुले रहे। गाव के सभी लोग यह जानते थे कि मेरे पिता भड का कोट पहनकर किस वक्त अपने घर की छत पर आते है। पिता जी के छत पर आने के समय के अनुसार वे अपनी घड़ियां ठीक कर सकते थे। हमारे गाव के एक नौजवान ने सेना से अपने मा-बाप के नाम

खत मे यह लिखा-"हम तडके ही उठते है। हमे ठीक उसी वक्त जगाया जाता है, जब हमज़ात अपनी छत पर आते है।"

अगर कोई सुबह के वक्त हमज़ात से मिलना चाहता, तो उसे यह मालूम होता था कि कितने बजकर कितने मिनट पर खूज़ह की ओर जानेवाले रास्ते पर पहुचना चाहिए। हमज़ात हमेशा एक ही वक्त पर घर से काम के लिए रवाना होते थे।

लोग उनके बारे मे सभी कुछ जानते थे। उन्हें मालूम था कि किस जगह तक वे घोडे की लगाम थामकर चलते है और कहा घोडे पर सवार होते है। उनकी मामूली काली क़मीज़, बिरजिस और घुटनों तक के उनके उन जूतो से भी वे परिचित थे, जिन्हें उन्होंने खुद बनाया था और हर सुबह अपने हाथ से साफ करते थे। उनकी पेटी, एक बार भी उस्तरे से न साफ किये गये और ढग से हजामत बने सिर, उनकी फर टोपी से भी वाक़िफ़ थे, जिसे वे सही अन्दाज़ से सिर पर रखते थे। टोपी की कराकुल फर न तो बहुत घुघराली थी और न ही बहुत झबरीली।

पिता जी का अपना एक स्वरूप था और जो कुछ वे पहनते तथा करते, इस स्वरूप के बहुत अनुरूप था। हमज़ात की पोशाक और गतिविधि मे किसी दूसरी चीज़ की कल्पना करना ही असम्भव था।

खुद उन्हें भी किसी तरह के परिवर्तन पसन्द नहीं थे। जब उनका कोई कपडा फट जाता और नया खरीदना होता, तो वे बिल्कुल वैसा ही खोजते। नयी पोशाक बेशक बिल्कुल उसी माप और उसी डिज़ाइन की होती, फिर भी पिता जी पहले कुछ दिनो मे अपने को अजीब अजीब और अटपटा सा महसूस करते रहते।

एक बार उनकी पेटी घिसकर टूट गयी। नयी पेटी खरीद लेना मामूली बात थी। मगर हमज़ात ने उसी पेटी को, जिसके वे अभ्यस्त थे, बडे यत्न से सी लिया और कुछ समय तक उसे ही इस्तेमाल करते रहे। वे कजूस नहीं थे, पैसों की भी उन्हें कुछ कमी नहीं थी, मगर जिस चीज़ के वे आदी हो गये थे, उससे अलग होते हुए उन्हें दुख होता था। आखिर यह पेटी फिर से टूट गयी और पिता जी को नयी पेटी खरीदनी ही पडी। तब भी उन्होंने नयी पेटी के साथ पुराना बकलस सी लिया।

अपनी फर टोपी को वे ज़िन्दा मेमने की तरह सहलाते। अगर उन्हें

अपनी यह पेटी ही, जिसके वे अभ्यस्त थे, इतनी प्यारी थी, तो सोचिये कि फर टोपी कितनी प्यारी होगी!

१६४१ की गर्मी म जब देशभक्तिपूर्ण युद्ध शुरू हुआ, तो दाग़िस्तान की सरकार ने पिता जी स यह अनुरोध किया कि वे पहाड़ों क बजाय मख़चकला में आ बस। ऊचे, ठड पहाड़ों के बाद शहर म उन्हें घुटन और गर्मी महसूस हुई। ऊचे, पहाड़ी इलाकों क लिए उपयुक्त पोशाक उन्हें गम शहरी हवा में भारी महसूस होने लगी। फर की टोपी तो ख़ास तौर पर जलवायु के अनुकूल न प्रतीत हुई। पिता जी ने कई टोप और हल्की टोपियां पहनकर देखीं, मगर वे हमज़ात क व्यक्तित्व को एकदम इतना बदल देती थीं कि हम बच्चों क बहुत मनाने के बावजूद वे उन्हें उतारकर एक तरफ फेंक देते थे।

तो हमज़ात उस फर की टोपी को हाथ मे लिये हुए ही मखचकला मे घूमते रहते। कभी वे उसे उतार लेते, कभी पहन लेते, मगर एक मिनट को भी उसे अपने से अलग न करते।

लोग जग जसी मुसीबत के भी आदी हो जाते ह और ज़िन्दगी अपनी, बेशक एक नयी, युद्धकालीन लय की अभ्यस्त हो जाती है। पिता जी फिर से जब-तब पहाड़ों पर जाने लगे। कसे चन की सांस लेते थे वे वहा, कितनी खुशी से वे अपनी फर की टोपी पहनते थे, जिसे उन्होने कभी अपने से अलग नहीं किया था। उन दिनो वे उस आदमी की तरह होते, जिसके पास या तो बहुत समय तक पीने को सिगरेट न रही हो या जिसे इसकी कडी मनाही कर दी गई हो और फिर अचानक उसे इतमीनान से तेज देसी तम्बाकू की सिगरेट लपेटने, चन और बड़े मजे से सिगरेट पीने और लम्बे कश खींचने की सम्भावना मिल गई हो।

मेरे पिता जी ने कभी तम्बाकूनोशी नहीं की थी, मगर वे दूसरी छोटी मोटी चीजो से, सृजन और अपनी धरती के प्रति प्यार का तो खर ज़िक्र ही क्या किया जाये, और भी अधिक खुशी हासिल करते थे।

पिता जी की नोटबुक से। "रजब बेशक मेरा दोस्त है, मगर उसने मेरे साथ दुश्मन से भी बुरा बर्ताव किया। उसने मेरे खिलाफ उस्तरे को अपना सहयोगी बनाया," मेरे पिता जी ने अपनी नोटबुक मे एक बार यह लिखा था। किस्सा यो हुआ था। १६३४ मे पिता जी प्रथम लेखक सम्मेलन मे भाग लेने के लिए मास्को गये। अवार लेखक रजब दीनमागामायेव तब

ज़िंदा थे। वे मेरे पिता जी को नाई की दूकान पर खींच ले गये ताकि उनके सिर और दाढ़ी के बाल कुछ छटवा दिये जायें। रजब ने जान-बूझकर ऐसा करवाया या नाई यह नहीं समझा कि उससे क्या करने को कहा गया है, मगर उसने पिता जी की एक बार भी साफ न की गयी दाढ़ी को बिल्कुल मूंड डाला। पिता जी का बाद में ही इसकी तरफ ध्यान गया। दर्पण में एकदम पराया, अजनबी चेहरा देखकर वे चिल्ला उठे, उन्होंने हाथों से मुंह ढांप लिया और नाई की दूकान से बाहर भाग गये। इसके बाद वे सम्मेलन की बैठकों में नहीं गये, लोगों को अपनी सूरत दिखाने की उन्हें हिम्मत नहीं हुई।

"मैं तो जीवन में अपना चेहरा नहीं बदल पाया," पिता जी ने बाद में कहा, "कविता में अपना चेहरा कैसे बदल सकता हूं?"

पिता जी को जीवन में और उसी तरह कविता में भी बनावट पसन्द नहीं थी। हां, एक बार वे परायी और बनावटी मुद्रा के लगभग आदी हो गये थे।

संस्मरण से। एक बार कुछ गांववासी मखचकला में पिता जी के पास मेहमान आये। उन्होंने देखा कि उनसे बातचीत करते हुए पिता जी किसी अस्वाभाविक, अनभ्यस्त मुद्रा में बैठते हैं यानी अपनी ठोडी को तीन उंगलियों पर टिकाये रहते हैं। एक पहाड़ी ने कहा –

"पहले तो हमने कभी तुम्हें तीन उंगलियों पर ठोडी टिकाकर बैठे नहीं देखा था। कब से तुम ऐसा करने लगे हो? और किसलिए? ऐसा करना तुम्हें ज़रा भी नहीं जंचता। यह तुम्हारी आदत नहीं है, हमज़ात।"

"हां, मुझे इसे छोड़ना ही चाहिए," हमज़ात ने जवाब दिया। "यह चित्रकार मुहिद्दीन जमाल का कुसूर है। उसने तीन महीने तक मेरा चित्र बनाने के लिए मुझे अपने सामने बैठाये रखा। तीन महीने तक मैं तीन उंगलियों पर ठोडी टिकाये उसके सामने बुत बना बैठा रहा। चित्रकार ने ऐसा ही चाहा और मुझे उसका हुक्म मानना पड़ा।"

"बहुत परेशानी हुई होगी तुम्हें?"

"बैठने से तो नहीं, मगर यह मुद्रा बनाये रखने से। कभी कभी मुझे ऐसा लगता था कि ठोडी को सहारा देनेवाली तीन उंगलियां मेरी अपनी नहीं हैं। फिर कभी मुझे ऐसा महसूस होता कि मेरी तीन उंगलियां किसी दूसरे की ठोडी को सहारा दे रही हैं। तीन महीनों तक मैं लगातार हर

दिन ऐसे ही बठा रहा और आखिर इसका आदी हो गया। चित्रकार के सामने बठने का सिलसिला खत्म हो चुका, तस्वीर बन चुकी और दीवार पर लटकी हुई है, मगर म, जसा कि तुम देख रहे हो, अभी तक अपनी ठोडी को तीन उगलियों पर टिकाये रहता हू। जानते हो न कि दिल का रोगी दिल मे दद न होने पर भी छाती के बायीं ओर अपना हाथ रख रहता है। खर, कोई बात नहीं, म इस आदत से छुटकारा पा लूगा।"

पिता जी की नोटबुक मे इस बात का भी जिक्र मिलता है कि कसे उन्होंने नये दात लगवाये।

दातों के डाक्टर ने उनसे पूछा कि वे कौन-से—सोने, चांदी या इस्पात के दात लगवाना पसन्द करेंगे। हमज़ात को कोई जवाब नहीं सूझा और उन्होने वहा उपस्थित दोस्तो की तरफ सलाह और मदद के लिए देखा।

"सोने के लगवा लो," एक दोस्त ने कहा, "सोना बहुत अच्छी धातु है।"

"इस्पात के लगवा लो," दूसरे दोस्त ने सलाह दी, "इस्पात ज्यादा मजबूत होता है और ऐसे दांत कभी नहीं टूटेंगे।"

"मगर इसका नतीजा क्या होगा," हमज़ात ने आपत्ति की, "अगर म सोने या इस्पात के दात लगवाकर गाव लौटूगा, तो लोग मुझे ऐसे देखेंगे मानो मेरे मुह मे बत्तिया जल रही हो। लोग मुझे नहीं, मेरे दातों पर ही नज़र टिकाये रहेंगे। दात मेरे चेहरे पर हावी हो जायेंगे। क्या हड्डी के, ऐसे ही दात लगाना सम्भव नहीं ताकि किसी को यह पता न चले कि मने नये दात लगवाये ह। म ऐसे दात लगवाने को तयार हू, जिनमे यह न पता चले कि वे नये ह।"

दातो के डाक्टर ने ऐसा ही किया और दात लगा दिये, जो उनके पहले, कुदरती दातो जसे थे।

इसके बाद जब कभी उन्हें किसी कवि की कविता मे परायी या कहीं से ली गयी पक्तियो की झलक मिलती, तो वे कहते—

"इसकी कविता मे मुझे नकली दात चमकते दिखाई दे रहे ह।"

सोने के दातों से भी सेब खाया जा सकता है, मगर मेरा ख्याल है कि वह इतना रसीला और जायकेदार नहीं लगेगा जितना अपने दातो से खाने पर।

मस्मरण। १६४७ में मछचवसा के थियेटर में एक बड़ा समारोह हुआ कवि हमजात त्सादासा की सत्तरवीं जयन्ती मनायी जा रही थी। बहुत से भाषण हुए, बहुत-सी बधाइयां दी गयीं, बहुत-सी कवितायें पढ़ी गयीं और ढेरों उपहार भेंट किये गये। जिसकी जयन्ती मनायी जा रही थी, आखिर उसे यानी मेरे पिता जी से कुछ बोलने को कहा गया। हमजात मच पर आये, इतमीनान से उन्होंने अपनी एक जेब से इस दिन के लिए विशेष रूप से लिखी गयी कवितायें निकालीं और ऐनक निकालने के लिए बसे ही इतमीनान से दूसरी जेब मे हाथ डाला मगर इसी वक्त पिता जी बेचैन हो उठे। उन्होंने एक जेब टटोली, फिर दूसरी। सभी समझ गये कि जयन्ती के नायक हमजात अपना चश्मा साथ लाना भूल गये है।

उसी वक्त किसी को चश्मा लाने के लिए भेज दिया गया। मगर हमजात मच पर खड़े थे और कुछ भी तो नहीं कर सकते थे। तब हमजात के दोस्त अबूतालिब ने उन्हें अपना चश्मा दिया, जो मानो फिट बठ गया। पिता जी उसे चढ़ाकर कविता पढ़ने लगे। वे अपनी कविता पढ़ रहे थे, मगर उनकी आवाज, उनकी पूरी मुद्रा म कुछ अविश्वास, कुछ घबराहट थी, और सभी को ऐसा प्रतीत होता था मानो वे अपनी नहीं, किसी दूसरे व्यक्ति की, ऐसे सयोगवश हाथ मे आ जानेवाली यह कविता पढ़ रहे थे, जिन्हें वे खुद भी पहली बार देख रहे हों।

पिता जी जब दूसरी कविता पढ़ने लगे, तो जिस नौजवान को चश्मा लाने के लिए भेजा गया था, वह भागता हुआ हाल मे आ पहुचा। हमजात ने अबूतालिब का चश्मा उतारकर अपना चश्मा चढ़ाया, तो फौरन उनकी आकृति बदल गयी, उसी वक्त उनकी आवाज मे ज़ोर आ गया। हाल मे बठे लोगो ने खूब ज़ोर से तालियां बजायीं मानो अभी असली हमजात त्सादासा मच पर आये हो और इसके पहले उन्हीं की शक्ल-सूरतवाला कोई दूसरा आदमी उनके सामने खड़ा रहा हो।

"चश्मे ने तो मेरी जयन्ती का मजा ही किरकिरा कर दिया होता," हमजात ने मुस्कराते हुए कहा।

"क्या मेरा चश्मा कुछ बुरा है?" अबूतालिब ने ऊची आवाज मे पूछा।

"बहुत ही अच्छा है, मगर फिर भी वह तुम्हारा चश्मा है। हर आदमी की अपनी आखें ह और चश्मा भी अपना ही होना चाहिए।"

पिता जी को न तो बहुत तेज रोशनी पसन्द थी और न ही घना अंधेरा। उन्हें बहुत ही गाढ़ा और बहुत ही पतला, बहुत ही ठंडा और बहुत ही गम, बहुत ही महगा और बहुत ही सस्ता, बहुत ही पिछड़ा हुआ और बहुत ही अग्रणी, ऐसा कुछ भी पसन्द नहीं था।

उन्हें भेडिये की क्रूरता और खरगोश की दुबलता अच्छी नहीं लगती थी। सत्ता की निरकुशता और अधीनो की दासता पसन्द नहीं थी। वे कहा करते थे—

"ऐसे सूखो नहीं कि अकडकर टूट जाओ, मगर इतने गोले भी नहीं होवो कि चीथडे की तरह तुम्हें निचोड लिया जाये।"

मगर पिता जी उन लोगो मे से नहीं थे, जो बारिश की एक बूद से भीग जाते ह और हवा का हल्का-सा झोका लगने पर सूख जाते ह। वे साधारण व्यक्ति थे और उनमे हमारे लोगो की सभी आदतें और सभी गुण विद्यमान थे और वे बड़े सुदर ढग से उनमे साथ-साथ बने रहे।

सस्मरण। एक बार पिता जी के साथ हमें एक बीमार रिश्तेदार की तीमारदारी के लिए मखचक्ला से गाव जाना था। उस समय अब्दुर्रहमान दानीयालोव दागिस्तानी सरकार के प्रधान थे। यह मालूम होने पर कि हम पहाड जा रहे ह, उन्होने हमारे लिए काली सरकारी कार भेज दी। शायद वह "ज़ीम" थी।

जब तक हमारी कार शहरी सडकों को मापती रही, पिता जी बड रग मे रहे। मगर जसे ही शहर के बाहर की सडक पर हमारी कार गयी, टट्टुओ और घोडो पर सवार या पदल पहाडी लोगो को पीछे छोडने लगी, पिता जी नम और आरामदेह सीट पर बेचनी से इधर उधर हिलने डलने लगे। उस वक्त अपनी जवानी के रग मे म तो जहा खिडकी से अपना सिर बाहर निकालने की कोशिश करता था ताकि सभी यह देख सके कि हम कार मे जा रहे ह, वहां पिता जी अधिक से अधिक पीछे हटते गये, छिप-से गये।

बारिश हो रही थी। होरसातल गांव की नदी के क़रीब पहुचने पर हमने देखा कि एक बलगाडी नदी के ऐन बीच मे फस गयी है और उसपर एक बूढ़ा सवार है। पिता जी ने फौरन कार रुकवाई, नदी मे घुस गये और बूढ़े की मदद करने लगे। बूढ़े के साथ मिलकर उन्होंने बलों को हांका

और पहियों को आगे धकेला। बलगाड़ी जल्दी ही समतल रास्ते पर आ गयी। हमारी कार आगे बढ़ी। कुछ किलोमीटरों के फ़ासले पर एक और नदिया रास्ते में आई। पिता जी ने फिर से कार रोकने को कहा और बलगाड़ीवाले बूढ़े का इन्तज़ार करने लगे।

"बूढ़े की गाड़ी ज़रूर यहां अटक जायेगी। मुझे मालूम है कि बलों को कसे इस नदी के पार ले जाया जा सकता है। मैं बूढ़े का इंतज़ार और उसकी मदद करूगा।"

वास्तव मे ऐसा ही हुआ। हमने इंतज़ार किया और चू चर करती हुई बलगाड़ी जब दूसरी नदी के पास पहुची, तो पिता जी बड़ी होशियारी से बलों को नदी के पार ले गये।

"बूयनाक्स्क से जब म तरह-तरह का सामान लेकर पहाड़ो को जाता था, तो कई बार इसी तरह की मुसीबत मे फस जाया करता था," कार के पास आकर और अपने कपड़ों के छोर से हाथ पोछते हुए पिता जी ने हमसे कहा। दूर जाती हुई बलगाड़ी को देखकर वे ऐसे दुखी मन से मुस्करा दिये मानो उसके साथ ही उनका सारा अतीत, उनका सारा जीवन जा रहा हो।

खूंज़ह के पठार पर चढ़ते हुए एक ट्रक हमारी कार से ज़रा छू गई। एक पहिया टूट गया। पिता जी को तो जसे इस बात से खुशी हुई और वे पदल ही गाव की तरफ़ चल दिये। हमने उन्हें बहुत मनाया कि दूसरा पहिया लग जाने तक रुक जायें, मगर वे राज़ी न हुए।

"मुझे तो शादी मे शामिल होने के लिए भी ऐसी कार मे जाते हुए शम आती और बीमार दोस्त की तीमारदारी के लिए तो एसे ठाठ से जाने की कोई ज़रूरत ही नहीं। म बहुत खुश हू कि कार खराब हो गयी, म पदल ही जाता हू।"

पिता जी बचपन से ही अपनी जानी-पहचानी उस पगडडी पर चल दिये, जिसपर हमारे गाव मे जाने के लिए पहाड़ी लोगों की कई पीढ़िया चल चुकी थीं। कार ठीक हुई तो हम बड़े रास्ते से गाव की ओर चल दिये और पिता जी के साथ-साथ ही गाव पहुचे।

बाद मे अब्दुरहमान दानीयालोव ने चिन्ता प्रकट करते हुए रास्ते की दुघटना के बारे में पूछा।

पिता जी ने मज़ाक मे जवाब दिया—

"कार जरूरत से ज्यादा ही बढ़िया है। अगर जरा घटिया होती, तो शायद उसका कुछ भी न बिगड़ता।"

संस्मरण। अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में मेरे पिता जी बहुत बीमार रहे। पहाड़ों की यात्रा के समय, जहा वे निर्वाचकों से भेंट करने गये थे, बीमारी ने उन्हें अचानक घर दबाया था। सोवियत सघ की सर्वोच्च सोवियत के चुनाव नजदीक आ रहे थे और हमजात त्सादासा का नाम उम्मीदवार के रूप में पेश किया गया था।

हलके के केन्द्र तक वे कार में गये, मगर उन दिनों पहाड़ी गावों में केवल घोड़ों पर ही जाना सम्भव था। आम तौर पर वे घोड़े को धीरे धीरे से जाते थे और अक्सर तो उसकी लगाम थामकर चलते रहते थे। हमजात को पैदल चलना सबसे ज्यादा पसन्द था।

स्थानीय अधिकारियों ने हमजात की तरफ बहुत ध्यान दिया। सर्वोच्च सोवियत के भावी सदस्य के लिए वे जवान और बहुत तेज घोड़ा लाये। अधिकारियों को दोष देना अनुचित होगा, उन्होंने तो अपनी तरफ से यही करने की कोशिश की, जो उन्हें बहुत अच्छा प्रतीत हुआ। उन्होंने तो यही समझा कि ऐसे प्यारे मेहमान को अपने हलके का सबसे अच्छा घोड़ा सवारी के लिए देना चाहिए।

बहत्तर साल के बुजुर्ग अपने मेजबानों को नाराज नहीं करना चाहते थे और अपने बीते दिनों को याद कर जवान की तरह कूदकर घोड़े पर सवार हो गये। घोड़ों पर सवार जवानों से घिरे हुए बुजुर्ग शायद नायबों के बीच इमाम जैसे लग रहे थे।

जवानों ने अपने घोड़ों पर चाबुक सटकारे और विभिन्न दिशाओं के विभिन्न गावों में यह सूचना देने चले गये कि हमजात जल्दी ही वहां पहुंचेंगे। दूसरे घोड़ों की देखा देखी हमजात का घोड़ा भी जोश में आकर हवा से बातें करने लगा। बुजुर्ग उसे क़ाबू में न ला सके और तेज घुड़दौड़ शुरू हो गयी। हमजात को जोर के झटके लगे, वे जीन पर अत्यधिक उछलते रहे, उनकी हालत अधिकाधिक बुरी होती गयी और आखिर काठी से नीचे जा गिरे। वे बीमार होकर मखचकला लौटे और यह बीमारी उनकी जान लेकर ही रही।

"कविताओं के साथ भी ऐसा ही होता है," पिता जी खांसते हुए कहते। "कवि को अपने अभ्यस्त घोड़े पर ही सवारी करनी चाहिए,

पराये, अनजाने घोड़े पर नहीं बठना चाहिए। पराया घोड़ा तो जीन से नीचे फेंक सकता है।"

अपने पिता जी के बारे में म बहुत देर तक बहुत कुछ बता सकता हू। मगर अब मे उनके दोस्त अबूतालिब के बारे मे कुछ बताना चाहता हू। कल का सारा दिन मने उन्हीं के साथ बिताया था।

अबूतालिब के साथ बिताया गया दिन। किसी कारणवश अधूरी रह जानेवाली, ठीक वक्त पर खत्म न की जानेवाली कविता को फिर से बठकर लिखना और पूरा करना मेरे लिए सबसे ज्यादा मुश्किल काम होता है। पहाड़ी लोगों मे ऐसा कहा जाता है कि मेढकी इसीलिए अब तक दुम के बिना है कि उसने दुम चिपकाने का काम अगले दिन पर छोड़ दिया था।

दो हफ्ते पहले शुरू की गयी एक लम्बी कविता को खत्म करने का मने सुबह से ही इरादा बना लिया था। काम मुश्किल था और मने अपनी आया फ़ोस्या से कहा—

"अगर कोई मेरे बारे में पूछे, तो कह देना कि म घर पर नहीं हू। जिसे मेरी जरूरत हो, वह दोपहर के खाने के बाद आ जाये।"

ऐसी हिदायत देकर म ऊपरवाले कमरे मे चला गया और इतमीनान से काम मे जुट गया। मगर सड़क की आवाजें तो मेरे कानों तक पहुच रही थीं और मुझे बाहरी फाटक की चीं चर सुनायी दी। कुछ क्षण बाद घर के दरवाजे की घंटी बज उठी। फ़ोस्या की आवाज तो मुझे सुनाई नहीं दी, मगर अबूतालिब का स्वर मुझ तक पहुच गया। मुझे अपनी कुर्सी दहकते तवे या कटीली झाड़ी जसी महसूस होने लगी। कभी ऐसा नहीं हुआ था कि हमजात त्सादासा के घर पर, जो अब रसूल हमजातोव का घर था, अबूतालिब का स्वागत न हुआ हो, कि उन्हें घर की दहलीज से वापस लौटना पड़ा हो। ऐसा कभी नहीं हुआ था और हो भी नहीं सकता था। मगर म बड़ी अटपटी स्थिति मे था—एक तरफ तो अबूतालिब को लौटने नहीं दिया जा सकता था और दूसरी तरफ फ़ोस्या को झूठा साबित करना उचित नहीं था, जिसने ईमानदारी से मेरा अनुरोध पूरा करते हुए अबूतालिब से यह कह भी दिया था कि म दोपहर के खाने के बाद ही घर पर लौटूगा।

मने अपने दिमाग की नहीं, दिल की बात मानी। मने खिड़की में से सिर बाहर निकालकर अपने पिता जी के दोस्त को आवाज दी—

"अन्दर आ जाइये, अबूतालिब, म यहां हू।"

"आह, अल्लाह तुम्हारा भला करे! क्या रसावा के हमजात का बटा लेनदारों से छिपता है?" अबूतालिब ने झटपट अपनी फर की टोपी उतारी और फ़ोस्या के करीब से गुजरते हुए उसकी तरफ भाव से इशारा करके कहा–"रसूल, इस औरत से कह दो कि जब अबूतालिब इस घर में आता है, तो दरवाजे अपने आप ही खुल जाते ह और यह कि उस वक्त तुम, रसूल, हमेशा घर पर होते हो। अगर तुम घर पर नहीं भी हो, तो भी अबूतालिब इस घर मे खा-पी सकता है और जरूरत होने पर सो भी सकता है।"

"फ़ोस्या का कोई कुसूर नहीं है। मेरी बीवी फातिमात काम पर जाते हुए उसे सब से यह कहने का हिदायत कर गई थी कि म घर पर नहीं हू। बीवी मेरी बडी फिक्र करती है।"

"खुशकिस्मत ह वे जिनकी बीवियां ह और जिनके सिर वे अपने सभी गुनाह मढ़ सकते ह। पर फातिमात क्या यह भूल गई कि आज बहस्पतिवार है?" अपनी गीली, झबरीली फर की टोपी झाडते हुए अबूतालिब ने कहा।

"बहस्पति को क्या खास बात होती है?"

"इस दिन म गुसल करता हू। क्या तुमने इस बात की तरफ ध्यान नहीं दिया कि म हर बहस्पति को हमामघर जाता हू और चूकि हमामघर तुम्हारे घर के पास है, इसलिए हमेशा यह उम्मीद की जा सकती है कि म कुछ देर बठने, गपशप करने और सिगरेट के कश लगाने के लिए तुम्हारे यहा भी आ सकता हू।"

"आपको हमामघर जाने की क्या जरूरत पडी है, अबूतालिब? आपके तो फ्लट मे ही गुसलखाना और गम पानी भी है।"

"गुसलखाना और फव्वारा–ये तो रई की रोटी के टुकडे जसे ह, मगर हमामघर है शादी की दावत के समान। मेरा एक बाग़ है और हजारों सालो से पहाडो से बहकर आनेवाला एक सोता भी है। म इस सोते के पानी से अपने पडो की सिचाई करता हू। मगर क्या म जलपात्र से सभी पेड़ों को सींच सकता था? हमामघर को म जोरदार पहाडी सोता मानता हू और तुम्हारे शावर और गुसलखाने को जलपात्र। नहीं रसूल, इन खिलौनों को तुम बच्चो के कवि नूरुद्दीन यूसुपोव के लिए ही रहन दो। सुना है कि

अब यह कठपुतलियों के लिए सिनेरियो लिखना है। उसकी कठपुतलियों के लिए वे बढ़िया रहेंगे।"

"हमामघर के बाद चाय पीना बढ़िया रहेगा," जब हम बरामदे से कमरे में आये, तो मैंने अबूतालिब को यह सुझाव दिया।

"वल्लाह–चाय भी चलेगी, बिल्लाह–शोरबा भी कुछ बुरा नहीं रहेगा, तल्लाह–शराब से भी काम चल जायेगा। मगर गुसल के बाद वोद्का ही सबसे अच्छी रहेगी।"

"शोरबा तो हमारे यहां है, मगर कल का। इस वक्त सुबह है, अभी ताज़ा शोरबा नहीं पका।"

"हम कल के शोरबे से शुरू करेंगे और तब तक ताज़ा भी तयार हो जायेगा।"

फ़ोस्या ने जब तक मेज़ लगाई, मैंने विदेशी शराबों के अपने संग्रह का प्रदर्शन शुरू किया।

सागर पार के विभिन्न देशों से रंग-बिरंगी सुन्दर बोतलों में मैं रम, ब्रांडी, जिन, ह्विस्की, काल्वादोस, अबसेन्ट, वेमूत, स्लिवोवित्सा और हंगरियाई ऊनीकूम आदि लाया था। ब्रांडियां भी तरह-तरह की थीं–मार्टीनी, काम्यू और प्लीस्का।

"जो भी पीना चाहते हैं, वही अपने लिए चुन लें, अबूतालिब।"

"रसूल, यह सब बकवास तुम मेरे सामने से उठा लो। अगर पिलाना ही चाहते हो, तो सफ़ेद निशानवाला साधारण वोद्का पिलाओ। सफ़ेद निशानवाली वोद्का सिर्फ़ इसीलिए अच्छी नहीं है कि हम उसे जानते हैं, बल्कि इसलिए भी कि वह हमें जानती है। जो कुछ तुम मुझे दिखा रहे हो, मुमकिन है कि ये बहुत ज़ायक़ेदार हों, मगर ये सभी बोतलें बहुत दूर से आई हैं, वे परायी, मेरे लिए अनजानी भाषाओं में बोलती हैं और मैं जिस भाषा में बोलता हूं, वह उनकी समझ में नहीं आयेगी। इसके अलावा आदत और मिज़ाज का भी सवाल है। नहीं, हम एक-दूसरे को बिल्कुल नहीं जानते। ये बोतलें अपरिचित मेहमानों जैसी हैं, जिनके साथ पहले बातचीत और जान-पहचान करना, अच्छी तरह घुलना मिलना ज़रूरी है। मुझे अंदेशा है कि हम एक-दूसरे को समझ नहीं पायेंगे। इन्हें अपने दोस्तों–मास्को के लेखकों के लिए रहने दो। इन्हें उनके लिए ही रख छोड़ो, जो सगी मां द्वारा अपने घर में पकाये गये खाने का स्वाद भूल चुके हैं।

मेरे संग्रह मे वोद्का की एक भी बोतल नहीं थी। मने ऐसे जाहिर किया कि अभी दुकान से बोतल ले आता हू। मुझे आशा थी कि अबूतालिब ऐसा करने से मना करेंगे, क्योंकि बाहर बारिश थी, ठडी हवा चल रही थी और इसके अलावा घर मे पीने को बहुत कुछ था। वसे तो यह सनक ही थी कि मेज पर बेहतरीन फ्रांसीसी ब्राडियों की बोतलें होते हुए भी वोद्का की मांग की जाये।

अबूतालिब सचमुच ही मुझे जाने से रोकने लगे—

"रसूल, बेशक तुम्हारे बाल पक गये ह, फिर भी फौरन यह पता चलता है कि तुम अभी बच्चे ही हो। क्या वोद्का लाने को तुम्हें खुद जाना चाहिए, क्या तुमसे कम उम्र के लोग नहीं ह? बाहर अहाते मे जाओ, पड़ोस मे रहनेवाले किसी छोकरे से कहो, वही जाकर ले आयेगा। मुझे कहीं जाने की जल्दी नहीं है, म खुशी से उसके लौटने का इतजार करूगा।"

अबूतालिब ने जसा कहा, मुझे वसा ही करना पडा। मने पड़ोस में रहनेवाले एक छोकरे को पसे दिये और वही वोदका लेने भाग गया। अबूतालिब ने इसी बीच इधर उधर नजर दौडाई।

"तुम्हारे घर मे पहाड से आया हुआ कोई मेहमान दिखाई नहीं दे रहा। क्या सचमुच एक भी मेहमान नहीं है?"

"आज तो कोई नहीं है।"

"जब मेरे दोस्त और तुम्हारे पिता हमजात जिदा थे, तो इस घर मे हमेशा मेहमान होते थे। मेहमानो का होना इसलिए अच्छा रहता है कि उनके पास हमेशा तम्बाकू होता है।"

"तम्बाकूनोशी को तो मेरे यहां भी कुछ मिल जायेगा।" मने तरह तरह की बढ़िया सिगरेटों का डिब्बा निकालकर सामने रख दिया।

"ये चिकनी सफेद नलियां मेरे लिए नहीं ह। ये तो तुम मास्कोवालों के लिए ही ठीक ह। मुझे तो सिर्फ अपना तेज पहाडी तम्बाकू ही पसद है। अपनी तम्बाकू की थली निकालनी होगी।"

अबूतालिब ने कुरते के नीचे से बडी सारी थली निकाली और उसे उलटकर उसके तल की सीवन को खुरचा और एक सिगरेट बनाने के लिए तम्बाकू निकाला। बडी निपुणता से उन्होंने सिगरेट लपेटी और जबान से थूक लगाकर चिपकाया।

"खुद बनाई गई इस सिगरेट से भला तुम्हारी इन सीधी डिब्बियों की तुलना हो सकती है? मेरी इस सिगरेट का अपना रूप है, वह किसी और से मिलती-जुलती नहीं। मगर तुम्हारी सभी सिगरेटें एक जैसी हैं। अब तुम्हीं बताओ मुझे कि डिब्बे में से बनी-बनायी सिगरेट निकालने में या अपने हाथ से ऐसी सिगरेट बनाने में ज्यादा मजा है? बात यह है कि मैं तो जब इसे बनाता हूं, तो उस वक्त भी खुशी हासिल करता हूं। मैं भला यह खुशी क्यों गंवाऊं?"

मैंने स्विस या बेल्जियम का लाइटर जलाया, मगर अबूतालिब ने जलते हुए लाइटरवाला मेरा हाथ परे हटा दिया। उन्होंने जेब से इस्पात का एक टुकड़ा, छोटा-सा चकमक और बटे हुए सूत का टुकड़ा निकाला। सूत उन्होंने चकमक पर रखा और इस्पात का टुकड़ा मारकर चिंगारी पैदा की। इसके बाद उन्होंने सूत को हिला-डुलाकर उसे जोर से जलने को विवश किया और उससे सिगरेट जलाई। जलते हुए सूत को मेरी नाक के पास ले जाकर बोले—

"सूंघो तो, कैसी गंध है इसकी? बढ़िया है न? और तुम्हारे लाइटर से कैसी गंध आती है?"

कुछ देर को अबूतालिब धुएं के बादल में खो गये। धुआं कुछ गायब हो जाने पर अबूतालिब ने पूछा—

"यह बताओ रसूल, कि तुम्हारा सिर अभी से क्यों सफेद हो गया?"

"मालूम नहीं, अबूतालिब।"

"मगर मुझे मालूम है कि मेरा सिर क्यों सफेद है।"

"भला क्यों?"

"मेरा सिर इसलिए सफेद हो गया है कि मुझे वोदका लाने के लिए दुकान पर जानेवाले इन छोकरों का हमेशा बहुत इंतजार करना पड़ता है। हां, रसूल, बच्चे तब तक मां-बाप की परेशानियों को नहीं समझ पाते, जब तक उनके अपने बच्चे नहीं हो जाते। ठीक इसी तरह वे, जो पीते नहीं, हमें नहीं समझ पाते। वोदका लाने के लिए उसे भेजना चाहिए, जो खुद उसे प्यार करता हो, तब देर नहीं होगी।"

इसी बीच फ़ोस्या ने मेज लगा दी। कुछ देर बाद मेज के बीचोंबीच वोदका की बोतल भी आ गयी।

"ओह," अबूतालिब ने कहा, "साधारण सामूहिक किसानो के बीच मानो सियुज का अध्यक्ष आ गया हो।" उन्होने वोद्का की बोतल लेकर उसे बच्चे की तरह झुलाया—"अरे, रे, कितनी बढ़िया बोतल है। शायद इसे लानेवाला लडका बहुत ही भला आदमी बनेगा।"

इसी वक्त मेज पर रखे छोटे-छोटे जामो की तरफ अबूतालिब का ध्यान गया। उनके माथे पर ऐसे बल पड गये मानो मुह मे कोई बहुत कडवी चीज आ गयी हो या दात मे दर्द हो। उन्होने जाम को इधर उधर घुमाकर देखा, उसमे झाका—शायद वह उसमे अपनी सिगरेट का टोटा डालना और इस तरह उस चीज के प्रति अपनी तिरस्कार भावना व्यक्त करना चाहते थे, जो इसी की अधिकारिणी थी।

मने जाजियनो द्वारा भेंट किया गया बडा-सा सींग जाम अबूतालिब की तरफ बढा दिया।

बुजुर्ग कवि ने भिन्न दिशाओ से देर तक उसे ग़ौर से देखा और फिर अपनी राय जाहिर की—

"अच्छा सींग है, मगर यदि इसपर चादी न मढ़ी होती, तो और भी ज्यादा सुदर लगता। सींग पर यह नक्काशीवाली चादी दूल्हे की पेटी जसी लगती है। क्या जरूरत है इसकी? क्या चादी से वोदका अधिक नशेवाली या ज्यादा मजेदार हो जायेगी? नहीं, रसूल, तुम मुझे मामूली गिलास दो, जो जिन्दगी भर मेरे हाथ मे रहा है। मुझे मालूम है कि गिलास मे कितने घूट होते ह, कब मुझे रुकना और कब पीना जारी रखना चाहिए।"

मने अबूतालिब की यह इच्छा भी पूरी कर दी। उन्होने वोदका गिलास मे ढाली, उसमे डबल रोटी का छोटा-सा टुकडा डाला और दागिन भाषा मे कहा—

"देरखाब!" इसके बाद एक ही बार मे गिलास खाली कर दिया, सास ली और कहा—"पीने से पहले हमेशा 'देरखाब' कहना चाहिए। यह सही है कि उसका अर्थ स्पष्ट करना मुश्किल है, यह भी मुमकिन है कि उसका कोई विशेष अर्थ हो भी ही नहीं, पर क्या 'देरखाब' शब्द ऐसे ही समझ मे नहीं आ जाता!"

वोदका पीने के बाद अबूतालिब ने शोरबे की तश्तरी अपने क़रीब खींच ली, एक अलग प्लेट मे मास निकाल लिया और शोरबे मे डबल

रोटी के टुकड़े डाले। वे धीरे धीरे, गर्म और जायकेदार शोरबे के हर चमचे का मज़ा ले लेकर उसे खाने लगे। जब-तब वे इतमीनान से मास का छोटा सा टुकड़ा काटकर भी मुह मे डाल लेते। मेरे ख्याल मे अगर वे उसे किसी दूसरी तरह खाते या अपने जेबी चाकू के बजाय किसी और चीज से काटते, तो शायद मास उन्हें इतना मजेदार न लगता।

शोरवा और मास खाने के बाद अबूतालिब ने मेज पर से डबल रोटी के सभी कण इकट्ठे किये और उन्हें मुह मे डाल लिया। इसके बाद उन्होंने थोडी-सी वोदका और पी तथा मूछों पर हाथ फेरा।

"शायद अब चाय पीना पसन्द करेंगे?"

"अब फिर से तम्बाकू मेरी चाय होगा। रसूल, मुझे यह बताओ कि सिगरेट दूसरी सभी चीजों से किस बात मे भिन्न है?"

"मालूम नहीं।"

"बाकी सभी चीजो को जब खींचा जाता है, तो वे लम्बी हो जाती ह और यह उलटे छोटी रह जाती है," अपनी इस भोली भाली पहेली से खुश होते हुए वे हस दिये।

"आप बहुत ज्यादा सिगरेटें पीते ह, अबूतालिब, आपकी सेहत के लिए क्या ये बुरी नहीं ह?"

"कहते ह कि बढ़िया खाने के बाद तो खुद अल्लाह भी तम्बाकूनोशी करता है।"

सिगरेट पीने क बाद अबूतालिब ने अचानक यह पूछा।

"लेखक-सघ का प्रबन्ध-समिति की बठक कब होगी?"

"कल।"

"लेखक सहायता कोश मे इस बार जनुद्दीन की अर्जी पर गौर किया जायेगा या नहीं?"

"मालूम नहीं, मगर आपको इससे क्या लेना-देना है?"

"तुम्हे एक किस्सा सुनाता हू। जब म किशोर था, तो बछडे चराता था। मेरे बछड़े बडे ही भले थे। म मजे से धूप मे हरी घास पर लेटा रहता और वे मेरे आसपास चरते रहते। सभी बहुत खुश थे—म भी, बछड़े भी और बछडो की मालिकिन भी। मगर बाद मे मुसीबत आ गयी—एक दबग बछड़े ने जई के खेत का रास्ता मालूम कर लिया। उसके पीछे-पीछे बाकी बछडे भी उधर ही जाने लगे। बस, मेरी चन की जिन्दगी खत्म हो

गयी। बछडो को जई के खेत की ओर जाने से म न रोक सका और इसलिए हर वक्त उनके करीब ही बने रहना पडता था। हमारे कवियो के लिए लेखक सहायता कोश भी ऐसा ही बन गया है। जब तक उन्हें इस कोश की गन्ध नहीं आई थी, वे चन से रहते थे, किताबें लिखते थे। मालूम नहीं कि पहल किसने की, मगर अब तो जई चरनेवाले मेरे बछडो की तरह सभी साहित्यकार सहायता कोश के सपने देखते ह। अब वे कविता की तुलना मे सहायता कोश के बारे मे कहीं अधिक सोचते ह। सुबह उठते ही वे कवितायें नहीं, आर्थिक सहायता पाने के लिए तरह-तरह की अर्जियां लिखने बठ जाते ह। सो म भी एक अर्जी लिखना चाहता हू और तुम लोग प्रबन्ध समिति मे उसपर विचार करना।"

"किस बारे मे, अबूतालिब? किस चीज की जरूरत है आपको?"

"यह तो तुम्हे मालूम ही है कि अब तक एक भी डाक्टर मेरा बदन नहीं देख पाया है। फिर भी मने सेनेटोरियम का पास लेने का निणय किया है।"

"यही समझिये कि पास आपकी जेब मे है। मगर लेखक सघ के बजाय दागिस्तान की सर्वोच्च सोवियत से इसके लिए अनुरोध करना क्या आपके लिए ज्यादा अच्छा नहीं रहेगा? आप तो सर्वोच्च सोवियत के अध्यक्षमण्डल के सदस्य ह। लेखको के सेनेटोरियम के मुकाबले मे सरकारी सेनेटोरियम बेहतर है।"

अबूतालिब सिर हिलाने और जबान चटकारने लगा। उनकी यह चटकारी बहुत ही भिन्न भावनाओ-हष, निराश, आश्चय और जसा कि इस समय था-असहमति को व्यक्त कर सकती थी।

"नहीं, रसूल, पहली बात तो यह है कि सर्वोच्च सोवियत के लिए मुझे अस्थायी रूप से, सिफ चार साल के लिए चुना गया है और लेखक म जिन्दगी भर के लिए हू। दूसरे, दोनो सेनेटोरियमो मे कुछ न कुछ त्रुटियां तो होगी ही। तो बताओ कि तुम्हारी और खापालायेव की आलोचना करना ज्यादा आसान होगा या सर्वोच्च सोवियत की?"

"तो अर्जी लिख दीजिये, कल उसपर गौर कर लेंगे।"

"अर्जी तो मिर्जा लिख देगा, मने तो कभी नहीं लिखी, मगर तुम लोग पास तयार कर लो," इतना कहकर अबूतालिब खडे हो गय, बाहर जाने को तयार हो गये।

"अबूतालिब, अब आप कहां जायेंगे?"

"प्रकाशनगृह जाना चाहता हूं। सुना है कि मेरी नई किताब छप गई है। देखना चाहिए कि बेटा है या बेटी।"

"शाम को अध्यापिका प्रशिक्षण संस्थान में आइयेगा, लेखकों की विद्यार्थियों से भेंट होगी।"

"अच्छी बात है। जुरना साथ लेता आऊं?"

"आह, अबूतालिब, आप जुरना-वादक नहीं, कवि हैं। कविता-संग्रह साथ लेते आइये, यही ज्यादा अच्छा रहेगा।"

"तो मुलाकात होगी," अबूतालिब यह कहकर चले गये।

अध्यापिका प्रशिक्षण संस्थान में कवि-सम्मेलन शाम के सात बजे शुरू होनेवाला था। बहुजातीय दागिस्तान के कवि जमा हो रहे थे। सात बजे। मैंने इधर-उधर नजर दौड़ाई। अबूतालिब कहीं नजर नहीं आये। उनके बिना ही कवि-सम्मेलन आरम्भ करना पड़ा। मंच पर एक के बाद एक कवि आता रहा। हर किसी ने अपनी भाषा में कविता सुनाई। किसी ने लाक, किसी ने कुमीक, किसी ने लेजगीन और किसी ने अवार भाषा में। एक युवा कवि जब अपनी लम्बी कविता सुना रहा था, तो हाल में बैठे लोगों ने जोर से तालियां बजानी शुरू कीं। यह अबूतालिब गफूरोव मंच पर आये थे। लड़कियों ने तालियां बजाकर उनका स्वागत किया था।

अन्य दो कवियों की कवितायें सुनने के बाद मैंने अबूतालिब को इशारा किया कि वे कविता-पाठ करने को तैयार हो जायें। अबूतालिब ने फौरन गम्भीर मुद्रा बना ली, ऐसे ऐंठ गये मानो फोटो खिंचवाने जा रहे हों और मूंछों पर ताव देने लगे। "देख रहे हो न, तैयार हो रहा हूं," बुजुर्ग शायर मानो इस तरह मुझसे यह कहना चाहते थे।

मंच पर आकर अबूतालिब ने लड़कियों से कभी रूसी, कभी अवार, और कभी लाक भाषा में कुछ बातचीत की। वे दागिस्तान की हर भाषा कुछ कुछ जानते हैं। लाक भाषा में उन्होंने दो कवितायें सुनायीं।

अबूतालिब ने अपना यह साहित्यिक कार्यक्रम ऐसे जल्दी जल्दी समाप्त किया मानो यह प्रस्तावना या भूमिका हो और वे मुख्य चीज के लिए समय बचा रहे हों। हाथ से इशारा करके उन्होंने तालियां बन्द करवाईं और लड़कियों से पूछा—

"चाहती हो कि मैं आपको जुरना सुनाऊं?"

"चाहती हैं, चाहती हैं, सुनाइये!" लड़कियां चिल्लायीं।

अबूतालिब मच के पीछे से ज़ुरना और मुरली ले आये और धीरे धीरे कभी एक, तो कभी दूसरा साज़ बजाने लगे। मगर सभी समझ रहे थे कि यह तो सिर्फ तयारी हो रही है, साज़ो को सुर में किया जा रहा है मानो आवाज़ को आज़माकर देखा जा रहा है। यह यकीन हो जाने पर कि साज़ सुर मे हो गये ह, अबूतालिब ने अचानक मेज़ से पानी का भरा गिलास उठाया और पानी ज़ुरने मे उडेल दिया।

"खुद पीने से पहले घोड को पिलाओ," पहाडी लोग एसा कहते ह।
"खुद पीने से पहले ज़ुरने को पिलाओ," पहाडों मे ज़ुरना-वादक कहते ह।

अबूतालिब ज़ुरना बजाने और उसके साथ-साथ खुद भी कभी एक तो कभी दूसरी दिशा मे हिलने डुलने लगे। जवान लडकियों से भरा हाल देखकर अबूतालिब रग मे आ गये थे। शायद उस रात अबूतालिब का ज़ुरना सारे मखचक़ला मे सुनाई दिया होगा।

अध्यक्षमण्डल मे अपनी जगह पर बठते हुए अबूतालिब ने सरलता से पूछा —

"क्यों कसा बजाया मने ज़ुरना? बढ़िया न?"

"हा, बढिया।"

"तो तुमने ऐसे धीरे धीरे तालियां क्यों बजायीं? अभी और तालियां बजाओ।"

अबूतालिब के ये शब्द सुनकर श्रोता खुशमिज़ाजी से हस दिये।

कवि सम्मेलन का म ही सचालन कर रहा था और मुझे सचमच ही यह अच्छा नहीं लगा था कि अबूतालिब जसे बढ़िया कवि ज़ुरना-वादक के रूप मे सामने आये थे। यह तो बिल्कुल वसी ही बात थी मानो हसी कवि येसेनिन कवितायें सुनाने के बजाय मच पर नाचने लगें। येसेनिन नाच तो शायद सकते ही थे। मगर हर चीज का अपना वक्त होता है। शायद अध्यक्षमण्डल मे बठा हुआ म नाक भौंह सिकोडता रहा था और मने तालियां भी कम बजायी थीं और इसीलिए अबूतालिब के शब्द सुनकर लोग हस दिये थे।

लडकियो के एक दल के साथ चौडी सीढी उतरकर हम वहा गये, जहा हमने ओवरकोट उतारे थे। ओवरकोट पहनकर मने दपण मे अपने को देखा। उन दिनो ऊचे, चौडे और पडवाले ओवरकोटो का फशन था। म ऐसा ही ओवरकोट पहने था। अबूतालिब ने यह देखकर सिर हिलाया —

"पहले तो दुम्बे यानी चर्बीवाली बढ़िया खुराक खाकर कधे चौड़े होते थे और अब रुई से। पहले तो कुमुज के साथ गीत गाये जाते थे और अब कागज सामने रखकर पढ़े जाते है। बड़ी तब्दीलियां हो गयी है दुनिया में। मुझे वे पसन्द नहीं है।"

"कवि-सम्मेलन मे देर से क्यो आये थे, अबूतालिब?"

"म तो बिल्कुल तयार होकर घर से निकलने ही वाला था कि अचानक अवार थियेटर का एक कलाकार मेरे पास भागा आया "

"अवार थियेटर को आपकी क्या जरूरत पड़ गयी?"

"बात यह है कि उनके खेल मे शादी का दृश्य आता है। अब तो शादी के बिना एक भी खेल नहीं होता। मगर जुरना-वादक बीमार हो गया। जुरने के बिना भला क्या शादी हो सकती है? इसलिए उन्होने मुझे सिर्फ दस मिनट तक जुरना बजाने के लिए बुलवा भेजा। मगर जब तक हम थियेटर पहुचे, जब तक शादी शुरु हुई, वक्त तो बीतता गया। मने ऐसे दो गीत बजाये कि दर्शक खेल को भूल भालकर सिर्फ मुझे ही सुनते रहे। अगर म देर गये रात तक जुरना बजाता रहता, तो भी वे बठे सुनते रहते।"

"प्रसिद्ध कवि अबूतालिब गफूरोव और जनतन्त्र की सर्वोच्च सोवियत के अध्यक्षमण्डल के सदस्य की जगह अगर म होता, तो जुरना-वादक के रूप में कभी वहां न जाता।"

"अबूतालिब तुमसे यह बेहतर जानता है कि उसे क्या करना और क्या नहीं करना चाहिए।"

"आप प्रकाशनगृह तो हो आयें न? आपकी किताब का क्या हाल है?"

"अल्लाह का शुक्र है कि किताब छप गयी। अल्लाह का शुक्र है कि कुछ पसे मिल गये। अल्लाह का शुक्र है कि कर्ज अदा कर दिया। अल्लाह का शुक्र है कि बत्तख खरीद ली।"

"तो 'मागारीच' (दावत) होगी?"

"किसकी?"

"सम्पादक, चित्रकार और लेखपाल की। उन सभी की, जिन्होंने पुस्तक के प्रकाशन मे भाग लिया है।"

"सम्पादक को 'मागारीच'?" अबूतालिब तो गुस्से से चलते चलते रुक भी गये। "उसको 'मागारीच' नहीं, 'मोगोरोब' होनी चाहिए।"

अवार भाषा में 'मोगोरोष' का अर्थ है मरम्मत या पिटाई करना। अपने बढ़िया शब्द खिलवाड़ से खुश होकर अबूतालिब देर तक हंसते रहे। इसके बाद अपनी बात जारी रखते हुए बोले—

"सुनो रसूल, लोग कहते हैं कि अगर कोई दागिस्तानी अपने बेटों की सुन्नत करायेगा, तो उसे नौकरी, यहां तक कि पार्टी से भी बर्खास्त किया जा सकता है। उन सम्पादकों का पत्ता क्यों नहीं काटा जाता, जो मेरी कविताओं को मुड़-तुड़ बनाते हैं, उनके टुकड़े-टुकड़े करते हैं? सम्पादित कविता देखते ही मैं तुम्हें यह बता सकता हूं कि सम्पादक किस गांव का रहनेवाला है। हम लाकों के हर गांव की अपनी बोली है। सम्पादक मेरा अपने गांव की बोली में ढालने की कोशिश करता है।" अबूतालिब अचानक खामोश हो गये और फिर मुस्कराकर बोले—"हां, वह औरत जो करारनामे पर दस्तखत कराती है, वह बढ़िया है। अहा, क्या बढ़िया औरत है वह! इस औरत का मैंने बहुत-बहुत शुक्रिया अदा किया।"

"और क्या कहा आपने उसे? शायद कोई तोहफा दिया?"

"मैंने उससे कहा कि अगर उसके यहां कोई खराब, बदरंग या टूटा फूटा बर्तन हो, तो वह उसे मेरे पास ले आये। मैं उसकी मरम्मत कर दूंगा, टांका लगा दूंगा और वह नये जैसा हो जायेगा।"

अबूतालिब की यह शरारत मुझे अवार थियेटर में उनके जुरना-वादन से भी ज्यादा खली। थाड़ के पास तांबे के टुकड़ों का ढेर देखकर मैंने बुजुर्ग शायर को जान-बूझकर चिढ़ाते हुए कहा—

"पहले जब आप टीनगर थे, तो शायद उन दिनों पुराने बर्तन यहां इस तरह न पड़े रहते। आप इन्हें इकट्ठा करके घर ले जाते?"

"नहीं, मुझे इन्हें ले जाने का मौका न मिलता, रसूल," अबूतालिब ने खुशमिजाजी से जवाब दिया। "इन्हें तो मुझसे पहले ही दूसरे उठा ले गये होते।"

रास्ते में हमें देर से जानेवाला एक राहगीर मिल गया। अबूतालिब ने किसी तरह की हिचक झिझक के बिना उसे रोका, उससे तम्बाकू और दियासलाई मांगी और सिगरेट पीने लगे।

साफ बात यह है कि अबूतालिब की ऐसी हरकतें मुझे अच्छी नहीं लगीं। दागिस्तान के जन-कवि, अपने सारे जनतंत्र के विख्यात व्यक्ति और सरकार के सदस्य, वे कभी तो रंगमंच पर जुरना बजाते थे, कभी

प्रकाशनगृह की सेक्रेटरी के बतनो की मरम्मत करने को तयार थे, कभी देर से रात को मखचकला की सडक पर मिल जानेवाले अजनबी राहगीर से तम्बाकू मागते थे। मगर मने बुजुग की लानत-मलामत नहीं की। मुझे डर था कि वे नाराज हो जायेंगे। चुनाचे मने उनसे यह कहा –

"आप काफी बडी उम्र के हो चुके ह, अबूतालिब। अगर आप सिगरेट पीना छोड दें, तो क्या यह आपकी सेहत के लिए ज्यादा अच्छा नहीं रहेगा?"

"मतलब यह कि आज सिगरेट पीना छोड दो, कल बतना की मरम्मत करना छोड दो और परसो जुरना बजाना छोड दो। ऐसा करने पर तो म अपने आप ही कविता रचना बन्द कर दूगा, वे खुद-ब-खुद ही मुझसे दूर भाग जायेंगी। वे उसी अबूतालिब से परिचित ह और प्यार करती ह, जो बतनो की मरम्मत करता है, सिगरेटें पीता है और जुरना बजाता है। अगर म अबूतालिब ही नहीं रहूगा, तो मेरी कविताओ को मेरी क्या जरूरत रहेगी? म अबूतालिब गफूरोव हू, रसूल हमजातोव नहीं, जो सिगरेट नहीं पीना चाहता और बतनों की मरम्मत नहीं कर सकता, मगर लेखक सघ का सचालन करने मे समथ है। इसी तरह म न तो यूसुफ खापालायेव हू, न नूरुद्दीन यूसुफोव, न मक्सिम गोर्की और न ही जोश्चेको "

(उन दिनों जोश्चेन्को की कडी आलोचना हो रही थी और इसलिए अबूतालिब को उसका नाम भी याद आ गया।)

"पहाडी बकरा पहाडो के सिवा कहा छिप सकता है? नाला दर्रे के सिवा कहा बह सकता है? तुम मेरे सिर पर परायी फर की टोपी नहीं रखो। तुम हाथ धोकर मेरे अतीत के पीछे क्यों पडे हो? हा, म कभी जुरना वादक, चरवाहा और टीनगर था। मगर क्या मुझे अपने अतीत पर शम आती है? वह अतीत भी तो मेरा ही था, मुझ अबूतालिब का। रसूल, म इस वक्त तुमसे जो कह रहा हू, मेरे इन शब्दो को याद कर लो। अगर तुम अतीत पर पिस्तौल से गोली चलाओगे, तो भविष्य तुमपर तोप से गोले बरसायेगा। मने बीवियों को छोडा और बीवियो ने मुझे। मगर म जो काम करना जानता हू, वह मुझे छोडकर नहीं जा सकता और न ही म उसे छोड सकता हू।"

हां, यही थे बुज़ुर्ग शायर अबूतालिब, मेरे पिता के दोस्त! वे ऐसे ही थे और इसी रूप में उन्हें ग्रहण करना चाहिए। अगर वे बदल जाते, तो अबूतालिब और कवि भी न रहते।

एक और क़िस्सा सुनाता हूं, जिसका शीर्षक हो सकता है

अबूतालिब का नया पलेट। यह तब की बात है, जब मुझे दागिस्तान के लेखक-संघ का अध्यक्ष चुना ही गया था। यह ऐसा पद है, जिसमें कर्त्तव्यों की तुलना में अधिकार ज्यादा है। अगर कोई ख़ुद ही अपने लिए काम न खोजे, तो मज़े से अपना मूलभूत काम यानी कवितायें रचना जारी रख सकता है। मगर मैं उस वक़्त जोशीला नौजवान था। मैंने सरगर्मी दिखानी शुरू की। मैं अपने पद से सम्बन्धित सभी तरह के काम ढूंढने लगा—

मेरे ख़्याल में अगर कोई आदमी अपने घर की मज़बूती और दृढ़ता जांचना चाहता है, तो वह शहतीरों, कोने के आधार-स्तम्भों यानी सभी तरह के स्तम्भों को ही जांचना शुरू करता है। मैंने ध्यान से देखा और इस नतीजे पर पहुंचा कि चार जन-कवि—सेइरगीन ताहिर ख़ुरिमूस्की, कुमीक अली ग़ाजीयेव, अवार ज़ाहिद हाजीयेव और लाक अबूतालिब गफ़ूरोव दागिस्तान के लेखक-संघ के आधार-स्तम्भ हैं। यह समझने के बाद मैंने अपनी कारवाई की योजना बनाई। मैंने यह तय किया कि अगर दागिस्तान के सरकारी प्रतिनिधि से इन चार महारथियों की भेंट कराई जाये, तो अच्छा रहे। कवि उसे अपनी जरूरतें बतायेंगे और सरकारी प्रतिनिधि कवियों के सामने अपनी इच्छायें व्यक्त कर सकेगा।

तो प्रादेशिक पार्टी समिति के सेक्रेटरी अब्दुररहमान दानीयालोव से हमारी बातें हो रही थीं। चाय की चुसकियां लेते हुए अनौपचारिक ढंग से खुलकर बातें की जा रही थीं। मेरे कवियों की ख़ुशी का तो पारावार नहीं था और चारों एक ही आवाज़ में यह कह रहे थे कि हमारे लेखक संघ का नया प्रधान रसूल हमज़ातोव कितना अच्छा आदमी है। साथी दानीयालोव को जन-कवियों से बातचीत करते हुए ख़ुशी हो रही थी और वे भी मन ही मन रसूल की तारीफ़ कर रहे थे। मगर मैं ऐसे ज़ाहिर कर रहा था मानो मेरा इस मामले से कोई सरोकार ही न हो।

हम लोगों ने दागिस्तान, जीवन और कविताओं की चर्चा की। आख़िर प्रादेशिक समिति के सेक्रेटरी ने कहा कि हर कवि अपनी कोई न कोई

इच्छा व्यक्त करे। तब हमारे खुरियुख के [illegible] बात कही—

"साथी दानीयालोव, मुझे इस बात के बारे में कुछ कहना है कि [illegible] पड़ने पर बहुत-सी भेड़ें चरागाहों में मर जाती हैं। क्या सर्दियों में बहुत ज्यादा आदमियों को वहां भेजना मुमकिन नहीं, ताकि वे वहां पर काफ़ी चारा तैयार कर लिया करें?"

साथी दानीयालोव ने कवि के शब्द नोट कर लिए और पूछा—

"कुछ और भी कहना है आपको?"

"हमारे खुरियुख गांव के सामूहिक फ़ार्म के लिए [illegible] देना सम्भव नहीं?"

अब गाजीयेव अली की बारी आई। उन्होंने [illegible] हुए मुंह खोला और सेक्रेटरी समेत, हम सभी को अपने पुराने और [illegible] दांत दिखाये।

"क्या मेरे मुंह में अच्छे, नए दांत नहीं लगाए जा सकते? इनसे खाने में तकलीफ़ होती है। दांतों के बिना [illegible] नहीं जाता। जब कविता-पाठ करता हूं, तो [illegible] है।"

गाजीयेव ने उसी वक्त इस बात का [illegible] और यह प्रस्ताव भी किया कि दांतों के बिना कविता-पाठ में [illegible] होती है। उन्होंने खासाफ़्यूत नगर कार्यकारिणी समिति के [illegible] को कविता के रूप में भेजी गयी अर्ज़ी सुनाई। कविता में बूढ़े कवि ने घर [illegible] के लिए कोयला देने की मांग [illegible] की थी।

"तो मिला कोयला?" [illegible] ने पूछा।

"पिछले साल से मामला लटकता चला आ रहा है।"

सेक्रेटरी ने फिर से कागज़ पर कुछ लिखा और हम आख़िर [illegible] की बात सुनने के लिए तैयार हुए।

"जवान लोग कमरों में [illegible] के बजाय [illegible] हैं। अपनी चीख-चिल्लाहट से वे अच्छे गाने-बजाने का अपमान करते हैं। अब लोग [illegible] हैं कि गायकों को आत्म-प्रशंसा [illegible] के लिए मजबूर करते हैं। यह बन्द होना चाहिए। रेडियो पर [illegible] के बारे में बहुत ही ज्यादा गाया जाता है। कुछ गायक तो [illegible] हूरों का स्तुति-गान करते हैं। साथी दानीयालोव, उन्हें कहिये कि वे हूरों का नहीं, बल्कि हमारे [illegible] के अग्रणी श्रमिकों का गौरव-गान करें।"

अपनी बात कहने के बाद हाजीयेव मेरी ओर मुड़े और कान में फुसफुसाये –

"इसके अलावा, यह भी पता चला है कि कल शाहतामानोव और सुलेमानोव ने रेस्तरा मे शराब पी। लेखकों के लिए शराब पीने की मनाही करनी चाहिए। इस सिलसिले मे म तुमसे अकेले मे बात करने आऊंगा।"

इसके बाद अबूतालिब की बारी आई।

"प्यारे अब्दुरहमान," अबूतालिब ने प्रथम सेक्रेटरी को सम्बोधित करते हुए कहा, "मेरी नवीनतम पत्नी ने मेरे लिये बेटा जना है।"

"'नवीनतम' पत्नी से आपका क्या मतलब है?"

"मेरी बहुत सी बीविया हो चुकी ह। म कर ही क्या सकता ह – अखबारों मे मेरे फोटो छपते ह, रेडियो पर मेरी चर्चा की जाती है, खूब चिल्ला चिल्लाकर लोगों को बताया जाता है कि म दागिस्तान का जन-कवि हू, ससद-सदस्य हू, राजकीय पुरस्कारों से सम्मानित हो चुका हू। भोली भाली नारिया इन बातो के फेर मे पड जाती ह, धोखा खा जाती ह। वे सोचती ह कि अगर म इतना नामी गरामी आदमी हू, तो महल में रहता हूगा, मेरे यहा माल-मते से सदूक और दौलत से थलिया भरी होगी। बस, वे मुझसे शादी कर लेती ह। मगर बाद मे वे ग़रीब अबूतालिब को तलघर मे बठा पाती ह। यह उन्हे अच्छा नहीं लगता और वे मुझे छोडकर भाग जाती ह। इसीलिए मेरी बहुत बार शादी हुई है। हा, प्यारे अब्दुरहमान, मेरे गीत तो बुलबुलो की तरह आकाश मे उडानें भरते ह मगर म खुद तलघर मे ही जिन्दगी काटता जा रहा हू। दयनीय तलघर से म अपने स्वर्णिम गीत आकाश मे उडाता हू। अब मेरी नयी बीवी, जिसने मुझे बेटा दिया है, इस बात की धमकी दे रही है कि अगर म अच्छा और नया फ्लट हासिल नहीं करूगा, तो वह मुझे छोडकर चली जायेगी। वह बच्चे को छाती से चिपकाये हुए चल देगी सुनो अब्दुरहमान, वह अभी गयी नहीं, मगर मुझे उसके लिए अफसोस होने लगा है, तुम मेरा परिवार नहीं तोडो, मुझे ऐसा चूल्हा दे दो, जहा म अपना पतीला टिका सकू। म ससर को पार कर चुका हू और मेरी गाडी ऊपर की तरफ नहीं, नीचे को जा रही है। इसके अलावा यह भी सुन लो कि अगर तुम मुझे फ्लट दे दोगे, तो म तुम्हे भी अपने यहा आने की दावत दूगा।'

एक हफ्ता भी नहीं बीता कि अबूतालिब को नये फ्लैट की चाबी मिल गयी। अलविदा प्यारे तलघर! हमारे अबूतालिब पुश्किन सड़क के एक नये मकान की तीसरी मंजिल के तीन कमरोंवाले फ्लैट में चले गये थे।

एक दिन सड़क पर अबूतालिब से मेरी मुलाकात हो गयी। मुझे देखकर उन्होंने ऐसा जाहिर किया मानो लोहे के टुकड़ों के अम्बार में, जिसके पास से वे गुजर रहे थे, कुछ ढूंढ़ रहे हों।

"सलाम अबूतालिब, कैसी जिन्दगी चल रही है नयी जगह पर? फ्लैट तो पसन्द है न?"

"कई दिनों से घंटी ढूंढ़ रहा हूं ताकि उसे घर के पास लटकाकर बजाऊं और तुम्हें, हमारा गांव के हमसाल के बेटे को, अपने यहां मेहमान बुलाऊं। तीन बार मैंने सागर की तरफ खिड़की खोली और इस उम्मीद से जुरना बजाया कि तुम उसे सुनोगे और उसकी पुकार पर कान देकर चले आओगे। मगर ऐसा लगता है कि बहुत बड़ी घण्टी के बिना काम नहीं चलेगा। चलकर ढूंढ़ता हूं।"

हम इसी वक्त अबूतालिब का नया घर देखने चल दिये। वहां तो सिर्फ दीवारें ही दीवारें थीं। फर्श पर जहां-तहां वे ऊल-जलूल चीजें पड़ी थीं, जिन्हें अबूतालिब तलघर से अपने साथ ले आये थे। पुराना जुरना, कुमुज, लुहार की पुरानी धौंकनियां (खुदा ही जाने कि नये फ्लैट में उन्हें उनकी क्या जरूरत थी), मिट्टी के तेल के पुराने स्टोव, चिलमचियां, बालटियां, गागरें, घुटनों तक के बूट, भेड़ की खाल का कोट। पहाड़ों पर से बूढ़े लोग अबूतालिब के यहां मेहमान आते और सो भी अपने किसी काम धंधे के सिलसिले में दौड़ धूप करने। उनकी खुरजियां भी पुरानी होतीं। किसी ऐसे ही मेहमान की खाली खुरजी हाथ में उठाये हुए अबूतालिब ने कहा –

"किस्मत की मारी खुरजी, तू खाली क्यों है? अगर तू भेड़ के मांस जैसी किसी भारी चीज से भरी होती, तो मेरे मेहमान को इंतजार न करना पड़ता। इसीलिए कि तू खाली है, लोगों को कितनी बार बेकार ही चार पहाड़ पर चढ़ना पड़ता है!"

तो अबूतालिब ने नजरों से ऐसी जगह ढूंढ़ते हुए, जहां मुझे बिठा सकते, खाली खुरजी को बुरी तरह कोसा। आखिर जब उन्हें ऐसी कोई जगह न मिली, तो उन्होंने बड़ा-सा छुरा मेरे हाथ में थमाया और मुझे

खिड़की के पास ले जाकर अहाते मे एक छानी की तरफ इशारा करते हुए बोले–

"वहां एक बतख बठी है। जाओ, जाकर उसे हलाल कर डालो। बस, यही हमारा खाना हो जायेगा।"

मैंने छानी का दरवाजा खोला, किसी तरह बतख को पकड़ा। जब मने उसे हलाल करना शुरू किया, तो वह बुरी तरह छटपटाने लगी। ऊपर से अबूतालिब की आवाज सुनाई दी–

"कौन ऐसे हलाल करता है? बतख का सिर दूसरी ओर कर दो। क्या तुम यह भी नहीं जानते कि मक्का किधर है?"

कुल मिलाकर, मने अपना काम अच्छी तरह से पूरा कर दिया और यहा तक कि अबूतालिब भी तारीफ किये बिना न रह सके।

जसा कि हमारे यहा कहते ह, अबूतालिब ने चूल्हे पर पतीले का झोन चढ़ाया और देर तक खाना पकाने के काम मे उलझे रहे। इसी बीच मने फ्लट का अच्छी तरह से जायजा ले लिया। बुजुर्ग शायर बेशक तलघर मे निकलकर नये फ्लट मे आ बसे थे, मगर पुराने पतीले से लेकर पुरानी आदतो तक तलघर की अपनी सारी ज़िन्दगी यहां अपने साथ ले आये थे। फ्लट मे एक भी कुर्सी, मेज, अलमारी, पलग यानी किसी भी तरह का कोई फर्नीचर नहीं था।

"कवितायें कहा बठकर लिखते ह, अबूतालिब?"

"इन कमरों मे तो अब तक मने काम की एक भी कविता नहीं लिखी। शुरू मे तो म पुराने तलघर मे कविता लिखने जाता था, मगर अब वहां किसी चित्रकार का स्टूडिओ बना दिया गया है। अल्लाह गवाह है, उस तलघर के मुक़ाबले मे मुझे यहा नींद भी बुरी आती है। वहां मेरा खर्च भी कम होता था और मेरे पास वक्त भी ज्यादा रहता था। लोग भी इस बुरी तरह से परेशान नहीं करते थे। कभी कोई भूले बिसरे ही उस तलघर में आता था। हां, यह सच है कि वहां से समुद्र की झलक नहीं मिलती थी। मगर अब वह हर वक्त बूढ़े अबूतालिब की आखों के सामने रहता है।"

अबूतालिब देर तक कास्पियन सागर को ग़ौर से देखते रहे, जो इस वक्त तूफान के जोरदार थपेड़ों के कारण नीला-सफेद हो रहा था। मने उन्हें सागर को देखने दिया, किसी तरह का खलल नहीं डाला। हम खामोश रहे। कुछ देर बाद अबूतालिब ने कहा–

"रसूल, म तुम्हें अपनी जिन्दगी के दो दिनों, एक सबसे ज्यादा खुशी और एक सबसे ज्यादा ग़म के दिन के बारे मे बताता हू।"

"बताइये।"

"बात यह है रसूल, कि यो तो मेरी जिन्दगी मे खुशी के बहुत दिन आये ह। राजकीय पदक मिला – मुझे खुशी हुई, पलट की चाबी मिली – मुझे खुशी हुई, तीसरे दशक मे जब लाल सेना ने फौजी घोडा दिया – मुझे खुशी हुई। उन दिनो घोडे पर सवार हो म लाल सेना के साथ जाता था, दस्ते का जुरना-वादक था। लडाई के रास्तों पर मेरा घोडा कमाडर के घोडे के बिल्कुल पीछे रहता था। इससे भी मुझे खुशी होती थी। मगर फिर भी मेरी सबसे पहली और सबसे बडी खुशी वह नहीं थी।

"मेरी जिन्दगी मे सबसे ज्यादा खुशी का दिन तब आया था, जब म ग्यारह साल का था और बछडे चराता था। मेरे पिता ने जिन्दगी मे पहली बार मुझे जूते भेंट किये। वे नये जूते पाकर मेरी आत्मा मे गव की जो भावना पदा हुई, उसे बयान करने के लिए शब्द नहीं मिल सकते। में अब बेधडक उन खड्डों में और उन पगडडियों पर जाता, जहा एक ही दिन पहले तक नुकीले, ठण्डे पत्थरो से मेरे पाव जख्मी हो जाते थे। अब म दढ़ता से इन पत्थरों पर पर रखता, न दद और न ठण्ड महसूस करता।

"मेरी खुशी तीन दिन तक बनी रही और उनके बाद मेरी जिन्दगी के सबसे कडवे मिनट आये। चौथे दिन पिता जी बोले –

"'सुनो अबूतालिब, तुम्हारे पास अब नये, मजबूत जूते ह, तुम्हारे पास लाठी है और ग्यारह साल तक तुम इस धरती पर जी भी चुके हो। वक्त आ गया है कि अपनी रोजी रोटी की फिक्र मे अब तुम अपनी राह पकडो।'

"पिता जी ने कहा कि म गाव गाव घूमकर भीख मागा करू। उस वक्त मेरे दिल पर जसी गुजरी, वसी तो बाकी सारी जिन्दगी में भी नहीं गुजरी। मेरी आखों से आसू तो बाद में भी बहे, मगर वसे कडवे आसू वे नहीं थे।

"एक लेखक ने मेरे बारे में कहा है कि 'अबूतालिब को नया पलट मिल गया है। देखेंगे कि उसमे वह कसी कवितायें लिखता है।' जसे कि मुझे यह मालूम न हो कि कवितायें पलट पर निभर नहीं करतीं। अपनी

कविताओं के लिए तो कवि खुद फ्लैट है। कवि का हृदय ही उसकी कविता का घर है। मेरे जीवन के सुख दुख के सभी क्षण मेरी आत्मा में सांस लेते है। मैं खुद कहां रहता हूं, इसका कोई महत्त्व नहीं है।"

अबूतालिब के फ्लैट ने मुझे परेशान कर दिया। मैंने दागिस्तान जनतंत्र के कर्ता धर्ताओं से उसकी चर्चा की। यह तय पाया गया कि अबूतालिब की किताब 'अबाबीलें दक्षिण को उड़ती हैं' की रायल्टी का एक हिस्सा कवि के नये फ्लैट के लिए नया और अच्छा फर्नीचर खरीदने के लिए इस्तेमाल किया जाये। इसके लिए "कारगुजारी की तिकड़ी" बनायी गयी दागिस्तान के पुस्तक प्रकाशनगृह के डायरेक्टर, व्यापार-मन्त्री और मुझे यह काम सौंपा गया। हमें जरूरी फर्नीचर ढूंढना, खरीदना और अबूतालिब के घर पहुंचाना था। इस काम के सिलसिले में पैदा होनेवाले सभी मामलों के बारे में सारी बातचीत करने का भार मुझे सौंपा गया।

हम तीनों ने मखचकला के सभी फर्नीचर गोदामों के चक्कर लगाये और जरूरी फर्नीचर चुन लिया। सोने के कमरे के लिए, ताकि हमारे जन-कवि मजे से आराम करें, लिखने पढ़ने के कमरे के लिए, ताकि वे अपनी बढ़िया कवितायें रचें, खाने-पीने के कमरे के लिए, ताकि वे लजीज पकवान खायें और मीठे पेय पियें।

हमारा ख्याल था कि यह सारा फर्नीचर पाकर और उसे क़रीने से सजाकर अबूतालिब हम लोगों के प्रति आभार प्रकट करने आगे आयेंगे। मगर उनसे तो हमें महज शुक्रिया या यह भी सुनने को नहीं मिला कि फर्नीचर पहुंच गया है। तब हमने खुद ही अबूतालिब के यहां जाकर यह देखने का फ़ैसला किया कि हमारे खरीदे हुए फर्नीचर का उन्होंने क्या किया है।

हमें दरवाजे पर दस्तक देने की जरूरत नहीं पड़ी, क्योंकि फ्लैट का दरवाजा खुला था। हम कमरे में दाखिल हुए। खाने की मेज के क़रीब अबूतालिब अपने परिवार के साथ क़ालीन पर बैठे थे। घर के सभी लोग घेरा बनाये हुए उकडूं बैठे थे और उनके सामने अखबार पर खाना रखा हुआ था। अबूतालिब प्लेट में से दही खा रहे थे। खाने की चमकती हुई मेज की तरफ़ अबूतालिब ऐसे देख रहे थे मानो वह आलिंगन में बंधने को आतुर कोई लड़की हो, मगर जिसे बांहों में कसने की अबूतालिब की कोई इच्छा न हो।

दूसरे कमरे मे हमे लिखने की बहुत ही बढ़िया मेज दिखाई दी। उसपर कागज रखे थे, जिन्हे छुग्रा तक नहीं गया था, पेन ग्रौर स्याही की दवात रखी थी। ये सभी चीजें ग्रौर खुद मेज भी इस्तेमाल की चीजो के बजाय सग्रहालय मे प्रदर्शित वस्तुग्रो जसी ग्रधिक लगती थीं। कमरे के एक कोने मे फश पर ग्ररबी लिपि मे लिखे हुए कुछ कागज पडे थे।

"ग्रबूतालिब, क्या ग्राप ग्राधुनिक लिपि नहीं जानते?"

"जानता हू, मगर पुराने ढग से लिखने की ग्रादत पडी हुई है। पहले ग्ररबी लिपि मे लिख लेता हू ग्रौर फिर सम्पादक के लिए ग्राजकल की लिपि मे नकल करता हू यानी खुद ग्रपनी रचनाग्रो का रूपान्तर करता हू।"

"पलग पर एक बार भी नहीं सोये," ग्रबूतालिब की बीवी ने हमे बताया। "बेकार ही ग्रापने इतनी महगी चीजें खरीदीं।"

"पलग की भी खूब कही! शुरू मे, शहर मे ग्रपनी जिन्दगी के पहले साल मे म तकिये की जगह पत्थर रख लेता था ग्रौर तकिये के मुकाबले मे ज्यादा गहरी नींद सोता था। जब बछडे चराया करता था, उन्हीं दिनो मुझे पत्थर पर सिर रखकर सोने की ग्रादत पड गयी थी।"

"तो मतलब यह है कि हमने ग्रापके लिए जो चीजें खरीदी ह, ग्राप उनसे खुश नहीं ह? पढने लिखने के कमरे के फर्नीचर से, इन कुर्सियो, इस मेज ग्रौर ग्रलमारी से?"

"फर्नीचर बहुत ग्रच्छा है। मगर वह मेरे पडोसी गोडफ्रीड हसनोव के लिए ज्यादा ग्रच्छा रहता।"

"गोडफ्रीड हसनोव ग्रच्छा पडोसी है?"

"मुमकिन है कि वह ग्रच्छा ग्रादमी हो, मगर हमारे बीच तो खट-पट ही रहती है।"

"वह क्यो?"

"वह कुछ ग्रधिक ही सुसस्कृत है। इसके ग्रलावा म कुछ ज्यादा ही देहाती हू ग्रौर वह ज्यादा ही शहरी है। म कुछ ज्यादा ही पहाडी हू ग्रौर वह ज्यादा ही मदानी है। हमारी फर की टोपिया भी ग्रलग ग्रलग ह। शायद सिर भी एक जसे नहीं ह। म ग्रपनी धरती का बेटा हू ग्रौर वह ग्रपने धधे का। वह मेरे जुरने ग्रौर उसकी धुन को बर्दाश्त नहीं कर सकता ग्रौर म उसके पियानो ग्रौर सिम्फोनी को। उसके सगीत का मजा लेने की

कोशिश करता हू, मगर नहीं ले पाता। यही हाल उसका है – म जुरना हाथ मे लेता ही हू कि वह दरवाजा खटखटाने लगता है – 'अबूतालिब तुम मझे काम नहीं करने देते!' म उससे झूठ-मूठ कहता हू कि यह तो रेडियो से आवाज आ रही है। वास्तव मे कई बार ऐसा हुआ भी है कि उसने उस वक्त मेरा दरवाजा खटखटाया, जब रेडियो पर जुरना वादन हो रहा था। तो यह समझना चाहिए कि वह न सिर्फ मुझे जुरना-वादन से, बल्कि रेडियो पर उसे सुनने से भी मना करता है। थोडे मे यह कि हम एक-दूसरे से बिल्कुल अलग आदमी ह। मेरे यहा पहाडों और देहातों से खजरजियोंवाले, उसके यहा मास्को से चलेवाले मेहमान आते ह। म बूजा और लहसुनवाले खीनकाला से अपने मेहमानो की खातिर करता हू और वह अपने मेहमानों के सामने ब्राडी और कॉफी पेश करता है। म मडी मे जाता हू, वह दुकानो पर। जब म सोता हू, तो वह अपना सगीत रचता है, और जब वह सोता है, तो म अपनी कवितायें लिखता हू। उसे शहरी क्यारियो मे खिलनेवाले फूल पसन्द ह और मुझे ऊची पहाडी चरागाहो में महकती हुई घास। सुन रहे ह न, वह इस वक्त भी अपनी कोई सिम्फोनी बजा रहा है।"

अबूतालिब के पडोसी को हम बहुत अच्छी तरह जानते थे। वह दागिस्तान और रूसी सघ का प्रतिष्ठित कला कार्यकर्त्ता गोडफ्रीड अलोयेविच हसनोव था। उन दिनो वह पियानो के लिए अपना कन्सर्ट रच रहा था। मने बहुत खुशी से उसका सूक्ष्म और प्रेरणापूर्ण सगीत सुना। मेरे दिमाग में यह ख्याल आया – "इन दो बडी और जोरदार प्रतिमाओ – अबूतालिब का साधारण जन प्रतिमा और हसनोव की व्यावसायिक तथा सुशिक्षित प्रतिमा – को यदि मिलाकर एक कर दिया जाये, तो वास्तव मे ही कसी अद्भुत सिम्फोनी बन सकती है!"

मेरे दिमाग मे यह बात भी आई कि अगर अपनी कविताओ, अपनी किताबों मे म इन दो धाराओं – अपनी जनता का सरल चरित्र, उसकी निश्छल खुली आत्मा तथा सधी हुई व्यावसायिक दक्षता – को मिला सकू, तो यह बहुत बडी सफलता होगी। म चाहता हू कि अबूतालिब और गोडफ्रीड मेरी कविताओ मे घुल मिल जायें। म चाहता हू कि मेरे कृतित्व मे वे वास्तविक जीवन जसे नहीं, बल्कि शान्तिपूर्ण पडोसी हों।

हां, म इन दो सिद्धान्तो के शान्तिपूर्ण हेल मेल की आशा करता हू। किन्तु यदि ऐसा सम्भव नहीं हो सकता और मुझे चुनने के लिए मजबूर

ही होना पडे तो म आजकल के बढ़िया से बढ़िया पेय की तुलना मे पहाडी चश्मे की ठण्डी, निमल धारा को ही तरजीह दूगा। मेरा अभिप्राय यह है कि सस्कृति, सभ्यता और पेशे की सूक्ष्मता – अगर इनका अभाव है – तो इन्हे प्राप्त किया जा सकता है। मगर जातीयता की भावना और लोक भावना व्यक्ति को जन्म से ही मिलती है। जन-कवि और जुरना वादक अबूतालिब अन्य परिस्थितियो मे पेशेवर सगीतज्ञ और स्वरकार भी बन सकते थे, मगर मेरे ख्याल मे पेशेवर स्वरकार और सगीतज्ञ गोडफ्रीड के लिये कभी भी साधारण जन गायक बनना सम्भव नहीं था।

जब हम अबूतालिब से विदा लेकर चलने को हुए, तो अचानक उन्होने पूछा –

"रसूल, मेरे यहा क्या टेलीफोन नहीं लग सकता?"

"आप तो लिखने की मेज और पलग का भी इस्तेमाल नहीं करते, तो टेलीफोन का क्या करेंगे?"

"टेलीफोन पर म अपना जुरना बजाया करूगा। कभी मास्को मे निकोलाई तीखोनोव को, तो कभी अपने सामूहिक फाम के अध्यक्ष को जुरना सुनाया करूगा। मेरे अध्यक्ष को यह तो मालूम होना ही चाहिए कि मेरा जुरना पहले जसे वही गीत गाता है। टेलीफोन पर मेरा जुरना सुनकर अध्यक्ष यह समझ जायेगा कि मेरे शहरी फ्लट मे हमारे पहाडो की ध्वनिया और गधें सास लेती ह।"

"हटाइये अबूतालिब, पहाडो की गध से महकी हुई आपकी धुनें टेलीफोन के बिना ही मास्को तक, आपके जन्म गाव तक और दागिस्तान के सभी गावो तक पहुच जायेंगी। वे पहाडो से भी ऊची उडानें भरती हुई धरती के ओर छोर तक जा पहुचेगी।"

अब म अबूतालिब से विदा लेता हू और वह घटना सुनाता हू, जो मेरे साथ और मेरे पिता जी के साथ घटी।

सस्मरण। न जाने क्यो, मगर हम दोनों एक-दूसरे को अपनी कवितायें नहीं सुनाते थे, यहा तक कि उनकी चर्चा भी नहीं करते थे। पिता जी की नयी कविताओ का मुझे तभी पता चलता था, जब वे छप जाती थीं या जब उन्हें रेडियो से प्रसारित किया जाता था। या फिर जब यार दोस्त उन कविताओं को सुनकर उनकी चर्चा करते थे। इसी तरह पिता जी को

भी मेरी नयी कविताओं के छप जाने तक उनके बारे मे कुछ भी मालूम नहीं होता था।

१९४६ मे अवार समाचारपत्र मे मेरी लम्बी कविता 'मेरा जन्म वर्ष' छपी। जाहिर है कि वह पत्र पिता जी के हाथो मे भी पहुचा और अचानक पेंसिल के निशानोवाली एक प्रति मेरे हाथ लग गयी। मने क्या पाया कि पिता जी ने बहुत ध्यान से मेरी कविता पढी थी और बहुत-सी पक्तियों को अपने ढग से बदल दिया था। यह देखना कुछ मुश्किल नहीं था कि पिता जी ने मेरी अधिक अलकृत पक्तिया को ही बदला था, उन्हें मेरी अधिक जटिल लक्षणायें, अधिक चटकीली उपमायें पसन्द नहीं आई थीं। मेरी पक्तियो के ऊपर लिखी पक्तियो मे पिता जी ने अधिक सीधे-सादे, स्पष्ट और समझ मे आनेवाले ढग से विचारो को व्यक्त करने का प्रयास किया था।

मुझे अब तक इस बात का बहुत अफसोस है कि हमजात द्वारा सुधारी गयी पक्तियोवाला यह पत्र सुरक्षित नहीं रहा। मेरी यह आदत है कि जसे ही कवितायें छप जाती हू, म उनके प्रारम्भिक रूपो और पाण्डुलिपियो के विभिन्न रूपो की प्रतिया जला डालता हू।

पिता जी के अधिकाश सुधारो से मुझे खुशी हुई। मने देखा कि कविता बेहतर हो गयी है, मगर बहुत-से सुधारो से म सहमत नहीं था। मने पिता जी से कहा—

"यह सही है कि आप मुझसे अधिक बुद्धिमान, प्रतिभाशाली और अधिक बडे कवि ह। मगर म दूसरे युग का कवि हू। म दूसरी साहित्यिक प्रवृत्ति से सम्बन्ध रखता हू, मेरी साहित्यिक रुचियां दूसरी ह, शली दूसरी है—सभी कुछ दूसरा है। इन सुधारों मे हमजात त्सादासा की छाप बिल्कुल स्पष्ट दिखाई देती है। मगर म तो हमजात नहीं हू, सिर्फ रसूल हमजा तोव हू। मुझे अपनी शली, अपने ढग का अनुकरण करने दीजिये।"

"तुम्हारी बात सही नहीं है। तुम्हारी कविताओं मे तुम्हारी शली, तुम्हारे ढग यानी तुम्हारी पसन्द और प्रकृति का गौण स्थान होना चाहिए। अपनी जनता की पसन्द और प्रकृति को प्रथम स्थान देना चाहिए। सबसे पहले तो तुम पहाडी हो, अवार हो और उसके बाद ही रसूल हमजातोव हो। अपनी कविताओं मे तुम अपनी भावनाओं को ऐसे अभिव्यक्ति देते हो, जसे किसी एक पहाडी आदमी ने कभी भी अपने को व्यक्त नहीं किया।

अगर तुम्हारी कवितायें पहाडी लोगों की भावनाओं और उनके मिजाज के लिए बिल्कुल अजनबी होंगी, तो तुम्हारा ढग केवल ढग ही बनकर रह जायेगा और तुम्हारी कवितायें सुदर और शायद दिलचस्प खिलौने ही बनकर रह जायेंगी। अगर बादल ही नहीं होंगे, तो बारिश कहा से होगी? आकाश ही नहीं होगा, तो बर्फ कहां से गिरेगी? अगर अवारिस्तान, अवार जाति ही नहीं होगी, तो रसूल हमजातोव कहा से आयेगा? अगर सदियों के दौरान तुम्हारी जनता के लिये बनाये गये नियम ही नहीं होंगे, तो तुम्हारे अपने नियम कहा से बन जायेंगे?"

तो एक बार ऐसी बातचीत हुई थी मेरी अपने पिता जी से। मेरे जीवन के बाक़ी सभी वर्षों, मेरी बाकी सभी राहों ने बाद मे इसी बात की पुष्टि की कि पिता जी ने उस वक्त जो कुछ कहा था, वह सही था।

तीसरी बीवी का किस्सा। एक नौजवान दाग़िस्तानी कवि मास्को के साहित्य-सस्थान मे पढ़ने गया। एक साल बीता, तो अचानक उसने यह ऐलान कर दिया कि अपनी बीवी, दूरस्थ पहाडी औरत को तलाक दे रहा है।

"किसलिए तलाक दे रहे हो?" हमने उससे पूछा। "बहुत अर्सा नहीं हुआ तुम्हें शादी किये और जहा तक हमे मालूम है तुमने उससे इसी लिए शादी की थी कि उसे प्रेम करते थे। तो अब क्या हो गया?"

"हमारे बीच अब कुछ भी तो सामान्य नहीं है। वह शेक्सपीयर से अपरिचित है, उसने 'येव्गेनी ओनेगिन' नहीं पढा, उसे यह मालूम नहीं कि 'लेक स्कूल' किसे कहते है और उसने मेरिमे के बारे मे भी कभी नहीं सुना।"

कुछ ही समय बाद नौजवान कवि मास्कोवासिनी पत्नी के साथ, जिसने सम्भवत मेरिमे और शेक्सपीयर के बारे मे सुना था, मखचकला आया। हमारे शहर मे वह सिर्फ एक साल रही और फिर उसे मास्को लौटना पडा, क्योंकि पति ने उसे तलाक दे दिया था।

"तुमने उसे तलाक क्यो दे दिया?" हमने उससे पूछा। "तुमने हाल ही मे शादी की थी और वह भी इसलिए कि उसे प्यार करते थे। तो अब क्या हो गया?"

"इसलिए कि हमारे बीच कुछ भी तो सामान्य नहीं था। वह अवार भाषा का एक भी शब्द नहीं जानती, अवार रीति रिवाजो से अपरिचित है,

पहाड़ी लोगों, मेरे हमवतनो का मिजाज नहीं समझती, उसे उनका अपने घर मे आना अच्छा नहीं लगता। वह एक भी अवार कहावत, अवार पहेली या गीत नहीं जानती।"

"तो अब तुम क्या करोगे?"

"शायद तीसरी बार शादी करनी पड़ेगी।"

मुझे लगता है कि तीसरी बीवी खोजने के पहले इस नौजवान कवि को खुद अपने को समझना चाहिए।

म चाहता हू कि मेरी किताब मे अवार पवत भी हों और शवसपीयर के सॉनेट भी। यही कामना है कि मेरी किताब वह तीसरी बीवी हो, जिसे नौजवान दागिस्तानी कवि अभी तक खोज रहा है।

नोटबुक से। मखचक्ला मे चालीस फ्लटोंवाला लेखक भवन बनाया गया। फ्लटो का बटवारा शुरू हुआ। कुछ लेखको ने कहा कि प्रतिभा के अनुसार फ्लट बाटे जायें, दूसरे बोले कि बच्चो की सख्या को ध्यान में रखा जाये।

यह तो कहना ही पडेगा कि लेखको मे फ्लटो का बटवारा मुश्किल काम है। मगर जसे-तसे यह काम सिरे चढ गया। चालीस लेखको के परिवार इन फ्लटो मे आ बसे, उन्होंने गृह प्रवेश की दावतें उडा लीं। अगले दिन बीस लेखको की बीवियां एकसाथ मास्को रवाना हो गयीं। वे कुछ दिन बाद ऐसी थकी-हारी और दुबली पतली होकर लौटीं मानो जग के मोर्चे से आयी हों। कुछ दिन बीतने पर मालगाडी से मास्को का नया फर्नीचर हमारे शहर पहुचने लगा।

हुआ यह कि शुरू में वे बहुत देर तक फर्नीचर खोजती और चुनती रहीं। बाद में एक ने हिम्मत करके फर्नीचर खरीद लिया। दूसरी बीवियां यह नहीं चाहती थीं कि उनका फर्नीचर घटिया हो। बदकिस्मती से पहली बीवी ने सबसे महगा फर्नीचर खरीदा था और उससे ज्यादा महगा फर्नीचर खरीदकर बाजी मार लेना मुमकिन नहीं था। नतीजा यह हुआ कि बीस के बीस फ्लट कघे के दांतों की तरह बिल्कुल एक जसे लगते हैं। ऐसे फ्लट में आने पर यह नहीं कहा जा सकता कि इसमें अवार लोग रहते हैं।

रहे दूसरे बीस फ्लट, तो उनकी दहलीज पर कदम रखते ही सुखाये हुए मांस और घर की बनी सासेजों, मूजा, भेड की खाल और मह की

भुनी हुई चर्बी की तेज गंध नाक मे घुस जायेगी। हा, यहां इस बात का तो पता चलता है कि अवार लोग रहते ह, मगर यह अनुभव नहीं होता कि वक्त की नब्ज को समझने और महसूस करनेवाले लेखक रहते ह।

म चाहता हू कि मेरी किताब का हर पाठक फौरन यह समझ जाये कि यहा अवार रहते ह, मगर साथ ही वह यह भी समझ जाये कि यहा उसका समकालीन, २०वीं शताब्दी का आदमी रहता है।

म न तो सिफ धूप और न सिफ छाया ही चाहता हू। मेरे फ्लट मे ऐसी बडी-बडी खिडकिया हों, जिनमे से धूप छने, मगर उसमे छायादार एकान्त शान्त कोने भी हों। मेरी चाह है कि मेरे फ्लट मे हर मेहमान आराम, सुविधा और बेतकल्लुफी महसूस करे, कि वह वहा से जाना न चाहे, या शायद (मेहमानों के बारे में) यह कहना ज्यादा सही होगा कि वे अफसोस के साथ वहा से जायें और खुशी से फिर लौटना चाहे।

एक बार जापान मे विभिन्न देशो के हम प्रतिनिधि अपने दिलो पर पडी उस देश की छाप के सम्बध मे पारस्परिक चर्चा करने लगे। हम उस फव्वारे के करीब खडे थे, जो उन्हीं दागिस्तानी पत्थरो से बना प्रतीत होता था, जो हमारे गाव मे उस जगह लगे हुए ह, जहा लोगो की मजलिस जमती है।

"अदभुत देश है," सबसे पहले अमरीकी स्वरकार बोला, "मुझे तो जापान मे जसे औद्योगिक उन्नतिवाले अमरीका का रूप दिखाई दे रहा है।"

"अजी, नहीं," हैटी के पत्रकार ने आपत्ति की। "म अभी अभी एक जापानी गाव से लौटा हू, जापान तो हमारे छोटे से द्वीप से ही अत्यधिक मिलता-जुलता है।"

"जनाब, आप लोगों की बहस बेकार है, पेरिस के सभी सुख दुख यहा एकसाथ इकट्ठे हो गये ह," फ्रासीसी वास्तुशिल्पी ने उन दोनो से अलग अपना मत प्रकट किया।

मगर म जापानी फव्वारे क उन पत्थरो को देख रहा था, जो अवार गाव से लाये गये प्रतीत होते थे, और सोच रहा था—"अदभुत देश है जापान। उसमे वह सभी कुछ है, जो दुनिया के दूसरे सभी देशो मे है, मगर फिर भी वह अन्य किसी देश के समान नहीं है। वह जापान है।"

मेरी किताब, तुममें भी हर कोई अपने को देख सके, फिर भी तुम मेरी किताब रहना, अपना अलग रूप बनाये रखना, अन्य सभी किताबों से भिन्न रहना। तुम मेरा प्यार, मेरा बाग़िस्तानी घर हो। इस घर में उस सब के क़रीब हो, जो सदियों से रहा है, यह भी दिखाई दे, जो यहाँ कभी नहीं रहा।

पिता जी कहा करते थे कि जिस साहित्यिक रचना में लेखक स्पष्ट दिखाई नहीं देता, वह सवार के बिना भागे जाते घोड़े के समान है।

कहते हैं कि एक पहाड़ी के घर में लगातार बेटियाँ ही जन्म लेती थीं, मगर वह बेटा चाहता था। हर आदमी उस बदक़िस्मत बाप को कोई न कोई सलाह देना अपना कर्त्तव्य समझता था। इतनी सलाहें मिलीं उसे कि आख़िर वह झल्ला उठा और बोला—

"बस, रहने दीजिये अपनी सलाहों को। उन्हें सुनते-सुनते मैं जो कुछ करना जानता था, वह सब भी भूल गया।"

इस पुस्तक की इमारत। विषय-वस्तु

हम पत्थर हैं, चुन जायेंगे जल्दी किसी दीवार में
किसी महल, छानी, कारा या मसजिद, किसी मजार में।

एक पत्थर पर आलेख

हार की शोभा देखी जाती है उसके सेट में,
इंसान की घर में।

शादी हो गयी—अब घर बनाना चाहिये।

मेरे भावों के प्रासाद बहुत बड़े-बड़े हैं, मेरे चिंतन की मीनारें, मेरी कहानियों के भवन बहुत बड़े आकार के हैं, मेरी कविताओं के नुकीले सिरे बहुत ऊंचे ऊंचे हैं लीजिये, मैं पत्थरों को ढो लाया, मैंने कुंदे तयार कर लिये और नई इमारत बनाने का स्थान चुन लिया। अब मुझे कुछ हद तक सभी कुछ बनना होगा—वास्तुशिल्पी, इंजीनियर, गणितज्ञ, संग-तराश, योजनाकार।

कैसी इमारत खड़ी करूं मैं? कैसा रूप प्रदान करूं उसे कि आंखें देखकर खुश हों? कि वह सुघड़ और सुंदर हो, कि अब तक उसे किसी ने न देखा हो और फिर भी जानी पहचानी लगे। ऐसी न हो कि छत से सिर टकराये, जैसा कि आजकल के छोटे छोटे फ्लैटों मे होता है, मगर ऐसी भी न हो कि छत को देखने के लिए सिर पीछे की ओर करना पड़े। ऐसी भी नहीं कि दरवाजे मे से साधारण मेज न गुजर सके, मगर ऐसी भी नहीं कि ऊंट पर चढ़े चढ़े ही भीतर जाया जा सके। ऐसी भी नहीं कि वह गुजरगाह या क्लब हो, जहां लोग कंसर्ट सुनें और चल दें, मगर ऐसी भी

नहीं कि वह मसजिद हो, जहां लोग सिर्फ नमाज अदा करने के लिए ही आयें। वह प्रमाण-पत्रों और आवेदन-पत्रों से ठसाठस भरे दफ्तर जैसी भी न हो और न ही लगातार घूमनेवाली चक्की की पवन चक्की जैसी ही हो।

एक नौजवान पहाड़ी की लम्बी कविता पढ़कर पिता जी बोले—

"इस कविता की दीवारें कुछ अधिक ही सुन्दर हैं। यह मनोहर द्वारा बनवाये गये मुर्गीख़ाने जैसी लगती है। मुर्गीख़ाने को देखकर महल की याद नहीं आनी चाहिए और महल का मुर्गीख़ाने के रूप में उपयोग नहीं किया जाना चाहिए।"

इसी तरह पिता जी ने जब एक दूसरे लेखक की बहुत ही लम्बी कहानी पढ़ी, जिसे वह किसी तरह भी समाप्त नहीं कर पा रहा था, तो उन्होंने उससे कहा—

"तुमने वह दरवाजा खोल दिया है, जिसे बन्द नहीं कर सकते। तुमने नल खोल डाला है, जिसे बन्द करना तुम्हारे बस में नहीं है। गांठ लगाते वक्त तुमने रस्सी को बहुत ज्यादा भिगो दिया।"

मुझे याद है कि मेरे बचपन के दिनों में हमारे गांव में गायक आया करते थे। मैं छत के सिरे पर लेटा हुआ नीचे देखता और इन गायकों को सुनता। उनमें से कोई अपने गाने के साथ खजड़ी बजाता, कोई वायलिन, कोई चग और अधिकतर तो कुमुज़ बजाते। वे अलग अलग मौसमों में अलग अलग जगहों से आते। वे तरह-तरह के गाने गाते और एक ही गाने को कभी न दोहराते। जब दो-तीन गायक आपस में होड़ करने लगते, तब तो मुझे खास तौर पर बहुत मजा आता।

वे गाने लम्बे-लम्बे थे और मैं उन सब को भूल चुका हूं। मगर फिर भी लगभग हर गाने में से किसी की चार, किसी की आठ और किसी की दो पंक्तियां याद रह गयी हैं। शायद ये याद रह जानेवाली पंक्तियां ही सबसे अधिक काव्यमयी, या सबसे ज्यादा बुद्धिमत्तापूर्ण, या सबसे ज्यादा फड़कती हुई, या सबसे ज्यादा खुशी भरी, या सबसे अधिक कारुणिक थीं।

मालूम नहीं क्यों, मुझे दूसरी नहीं, यही पंक्तियां याद रह गयीं, मगर अभी तक वे मेरी आत्मा में बसी हुई हैं और मैं अपनी प्रियतमा के नाम की तरह उन्हें कभी-कभी दोहराया करता हूं।

सयोगवश यह भी बता दू कि शुरू से आखिर तक जबानी याद अन्य प्रकार गानों मे भी ऐसी पक्तियां है, जो मुझे बाकी पूरे गाने के मुकाबले मे ज्यादा पसन्द है।

फिर गाना का ही क्या बात है?! अपनी कविताओं मे भी म कुछ पक्तियों के बीच अन्तर करता हू और वे मुझे अधिक प्यारी लगती है—वे मुझे दूसरा पक्तियों की तुलना मे ज्यादा श्रेष्ठ, जानदार और काव्यमयी प्रतीत होता है। आपसे अपने राज की एक बात कहता हू—मेरी ऐसी लम्बी कवितायें भी है, जिन्हें मने केवल अपनी कुछ प्रिय पक्तियो के लिए लिखा है।

कविता अगर पटी है, तो ये पक्तिया उसमे लटकता हुआ खजर है, कविता अगर खेत है, तो य पक्तियां उसमे अनाज से भरी बाले है, कविता अगर पक्षी है, तो ये पक्तिया उसके पख है, कविता अगर चट्टान के सिरे पर खडा हिरन है, तो ये पक्तिया दूर तक देखनेवाली उसकी आखें है।

एक बार मेरे दिमाग मे यह ख्याल आया कि मिसाल के तौर पर अगर किसी कविता मे मुझे आठ पक्तिया पसन्द है, तो म उसमे अस्सी पक्तिया और क्यों जोडता हू? क्या ये सबसे अच्छी आठ पक्तिया लिख देना ही ठीक न होगा? इसीलिए मने अष्टपदियो की एक पूरी किताब लिख डाली।

मेहमान की आमद से खुश होकर पहाडी आदमी छुरा लेता है और साड को काट डालता है। मगर मेहमान को तो मास का छोटा-सा टुकडा ही चाहिए। कोई भी मेहमान पूरा साड नहीं खा सकता।

"अगर मेरे लिये मुर्गी ही काफी है, तो भला मुझे भी बडा साड काटने की क्या पडी है?" मने सोचा।

इसीलिए उस किताब से, जो म कभी लिखूगा, म सभी फालतू स्थलो का निकाल डालूगा और सिर्फ उन्हें ही रहने दूगा, जो मुझे प्रिय होगे, चाहे पुस्तक दस या बीस गुना ही लम्बी क्या न हो।

एक बार मेरी उपस्थिति मे एक जवान लाक कवि ने अबूतालिब को अपना कवितायें सुनायीं। दस कवितायें सुनाकर वह चला गया। तब अबूतालिब ने मुझसे कहा—

"शाबाश है इसे, यह जरूर कुछ बन जायेगा।"

"तुम्हें अच्छी लगीं उसका कवितायें?"

"उसकी सभी कवितायें कमजोर थीं। मगर आठ पंक्तिया ऐसी थीं, जिनके लिए लड़ाई मे अभी अभी जीता गया किला उसे दिया जा सकता है। लाक भाषा मे ऐसी अष्टपदी किसी ने नहीं लिखी।"

हां, तो अगर कविताओ और गानो मे ऐसी पंक्तियां–चतुष्पदिया और अष्टपदिया–होती ह, जिन्हें भुलाया नहीं जा सकता, तो ऐसी ही अविस्मरणीय भेंटें और दिन तथा किसी देश के मामले मे ऐसी घटनायें और उपलब्धियां भी होती ह, जो स्मृति-पटल पर अमिट छाप छोड देती ह। म उन्हें भी शामिल कर लेना चाहता हू, अपनी नयी इमारत, अपनी नयी किताब की दीवारों मे चुनना और सीमेन्ट से पक्का कर देना चाहता हू। म स्पष्टीकरण के सुदर शब्दो को उनका स्थान नहीं देना चाहता। अच्छा होगा कि वे खुद ही अपनी बात कहे।

सागर-तट पर मार्च हमेशा तूफानों का महीना होता है। उन्हीं दिनों मखचकला मे एक बार तूफान आया। दो तेज हवायें–एक कास्पियन सागर से और दूसरी पहाड़ो से आनेवाली–आपस मे टकरायीं। एक हवा सागर के खुले विस्तार पर फुकारती हुई नगर म घुसी और दूसरी बहुत ऊंचाई से जसे नीचे आ गिरी। दोनो हवायें आपस मे बुरी तरह उलझ गयीं, गुत्थम गुत्था हो गयीं और उनमे द्वन्द्व होने लगा। जब दो देव आपस मे भिड रहे हो, तो उनके बीच आना खतरनाक होता है। मगर इस बार मखचकला उनके बीच आ गया था।

जमीन पर जो कुछ भी ढीला-ढाला पडा था, मजबूती से उसके साथ जुडा-बधा हुआ नहीं था, फौरन हवा मे उड गया। छोटे-पतले पेड पौधों, खाली डिब्बे पेटियो, झोपडियो के छप्परो, प्लाइवुड के स्टालों और सभी तरह के कूडे करकट का यही हाल हुआ।

मगर जमीन मे अच्छी तरह से अपनी जड जमाये हुए पुराने पेड और बडे-बडे मकान बडी मजबूती और शान से खडे रहे। जो कुछ भी हल्का फुल्का और अस्थिर था, हवा मे उड गया और मजबूत तथा दृढ़ जहां का तहां बना रहा।

इसी तरह ऐसी घटनायें, ऐसी मानवीय भावनायें और विचार भी होते ह, जो वक्त की हल्की-सी हवा मे भी उड जाते ह। मगर कुछ एसे भी होते ह जिन्हें जिन्दगी के तेज से तेज तूफान भी न तो इधर-उधर बिखरा सकते ह और न उडा सकते ह।

ऐसी जानदार घटनाओं, विचारों और भावनाओं से ही मुझे अपनी पुस्तक की इमारत खड़ी करनी है। परम्परागत प्रकार शैली में उसका निर्माण होना चाहिए, साथ ही यह भी जरूरी है कि वह आधुनिक हो। घर ऐसा होना चाहिए कि परिवार भी उसमें खुश रहे और मेहमान को भी सुख मिले। घर ऐसा होना चाहिए कि उसमें बच्चों के लिए खुशी का सामान हो, जवानों के लिए प्यार की सुविधा और बुजुर्गों के लिए चैन का आधार हो।

मेरी किताब है—मेरा दागिस्तान। कैसी रूप रेखायें हैं मेरे सामने उसकी? किससे तुलना करता हूं मैं उसकी? पंख फैलाकर उड़ते हुए उकाब से? मगर उकाब को तो इन्सानी हाथों ने नहीं बनाया और हमारे विचारों का उसमें कुछ भी भाग नहीं है। तो शायद हवाई जहाज से उसकी तुलना की जाये? मगर हवाई जहाज तो जमीन से बहुत ही अधिक ऊंचाई पर उड़ता है और जब जमीन पर होता है, तो हवाई अड्डे के दृश्य के सिवा उसके इर्दगिर्द और कुछ भी नजर नहीं आता। धरती को जब ऊंचाई से देखा जाता है और ऊंचाई से ही उसकी चर्चा की जाती है, तो मुझे अच्छा नहीं लगता। नहीं, मैं ऐसे यन्त्र की रूप रेखा देख रहा हूं, जो हवाई जहाज की तरह उड़ता है, रेलगाड़ी की तरह दौड़ता है और जहाज की तरह तरता है। मैं ही उसका हवाबाज, ड्राइवर और खेवनहार हूं। हमारा प्रस्थान स्थान—हमारा हवाई अड्डा, हमारा घाट, हमारा स्टेशन है हजारों सालों की उम्रवाला अमर दागिस्तान। यहां से हम हवाई जहाज, रेलगाड़ी और जहाज द्वारा दुनिया के किसी भी छोर पर जा सकते हैं। वहां, जहां मैं हो आया हूं या वहां, जहां कम से कम मेरी कल्पना हो आई है। हम रेलगाड़ी में जाते हैं, हवाई जहाज में उड़ते हैं, जहाज में तरते हैं। हमें खिड़कियों से नजर आते हैं बर्फ ढके सफेद पहाड़, रसीली, हरी चरागाहें, चौड़ी नदियां और तटहीन महासागर। हमारी खिड़कियों के सामने से गुजरते हैं उमंग भरा वसन्त, विनम्र पतझर, कड़ाके का जाड़ा और झुलसती गर्मी। और मुसाफिर तो कितने अधिक हैं मेरे इर्दगिर्द! यहीं हैं शामिल के पट्टियां बंधे मुरीद, जिनकी पट्टियों में से खून रिस रहा है, यहीं हैं पहाड़ी छापामार और विभिन्न पेशों के मेरे समकालीन। मेरे इर्दगिर्द वे सभी हैं, जिन्हें मैंने कभी देखा है, जिनसे मेरी मुलाकात हुई है, जिनसे मैंने कभी बातचीत की और जो मुझे याद रह गये हैं।

13

हाँ, मेरी रेलगाड़ी-पुस्तक, वायुयान-पुस्तक, जलयान-पुस्तक के लिए बस एक ही टिकट या अनुमति-पत्र की जरूरत है कि उनकी मेरे स्मृति-पटल पर छाप रह गयी हो। लोग और घटनायें उन अष्टपदियों और पंक्तियों के समान होनी चाहिए, जो मुझे गली मे घूमते हुए गायकों के लम्बे गानों में से याद रह गयी हैं। वे उन आठ पंक्तियों जैसी होनी चाहिए, जिनकी अबूतालिब ने जवान कवि की दस लम्बी कवितायें सुनकर तारीफ की थी। वे उन वृक्षों और मकानों जैसे होने चाहिए, जो तूफान मे जहां के तहां बने रहे, जबकि जो कुछ हल्का फुल्का और अस्थिर था, वह पतझर के पत्तों की भांति उड़ गया था।

यहीं तो ग़ाज़ानिची गांव के एक मुसलिम के साथ ही मेरी तुलना हो जायेगी। अब मैं आपको यह बताता हूं कि उसके साथ क्या हुआ था।

मई के महीने मे भेड़ों को धूल और उमस भरी स्तेपी से हरे भरे, ठण्डे पहाड़ों मे ले जाया जाता है। उस वक्त ग़ाज़ानिची गांव के मुसलिम नामक एक लेखक ने लेखक-संघ से यह अनुरोध किया कि उसे भेड़ों को एक जगह से दूसरी जगह ले जाने के बारे मे शब्द चित्र लिखने के लिए दौरे पर भेज दिया जाये। बसे मुमकिन है कि यह सितम्बर महीने की बात हो, जब भेड़ों को पहाड़ों से, जहां इस वक्त ठण्ड हो जाती है, जाड़े के लिए गर्म स्तेपियों मे भेजा जाता है। हमने मुसलिम को दौरे पर भेज दिया। मुसलिम रवाना हो गया और उसने चरवाहों और रेवड़ों के साथ ईमानदारी से सारा रास्ता तय किया। जब वह लौटा, तो उसके द्वारा लिखी गयी नोटबुकें एक अलग घोड़े पर लादकर लाई गयीं। हुआ यह कि उसने जो कुछ भी देखा, वह सभी कुछ हर दिन लिखता गया। कोई भी चीज, कोई छोटी मोटी बात भी उसने नहीं छोड़ी। किसी घोड़े को देखा, तो उसके बारे मे, चरवाहे को देखा, तो उसके बारे मे और भेड़ को देखा, तो उसके सम्बन्ध मे लिख डाला। जरा ख्याल कीजिये कि कितनी भेड़ें और कितने चरवाहे थे वहां! उसने जो कुछ देखा, वह भी लिखा और जो कुछ सुना, वह भी। और वह भी सभी कुछ। उसने उनके बारे मे लिखा जो ज्यादा तेजी दिखा रहे थे और जिन्हें थोड़ा रोकना जरूरी था और उनके सम्बन्ध मे भी जो पिछड़ गये थे और जिन्हें आगे खदेड़ना जरूरी था। चुनाचे रास्ते के बारे मे रास्ते से ज्यादा लम्बी किताब बन गयी। ऐसी किताब बन गयी, जिसे पढ़ने के लिए उतना ही वक्त लगाना जरूरी था, जितना मुसलिम ने अपने सफ़र

मे लगाया था। चरवाहों ने बाद मे हमे बताया कि जब ये गिमरा पयतमाला पर चढ़ रहे थे, तो एक खच्चर दिखाई दिया। इतना ही नहीं कि खच्चर को देखते ही मुसलिम ने उस बेचारे के बारे मे कलम चला डाली, उसे उसके चारों सुम भी देखने की इच्छा हुई। मुसलिम उसकी तरफ लपका, उसकी एक पिछली टांग पकड़ ली और उसने उसे ऊपर उठाना चाहा। मगर खच्चर ने लेखक के नेक इरादे और इस घटना के महत्व को न समझते हुए बदकिस्मत मुसलिम पर बदतमीजी से लात चला दी और यह उसकी नाक पर जा लगी।

इदगिद जमा चरवाहे हस पड़े—

"मुसलिम को यह भी लिखना होगा!"

बेशक यह सही है कि खच्चर सनकी और बदतमीज जानवर है, मगर मुसलिम के मामले मे उसने शायद ठीक ही किया था। जरूरत से ज्यादा तग करनेवाले आदमी को सजा मिलनी ही चाहिए।

बाद मे हमने लेखक-संघ में मुसलिम की इस रचना पर विचार किया। मजाक करते हुए हमने उससे यह पूछा—

"मुसलिम, तुम्हारी इस किताब मे हारीकुली गांव के गधे के बच्चे से लेकर खच्चर के सुम तक सभी कुछ लिखा हुआ है। मगर यह बताओ कि बिना सींगोवाले बकरे को तुम कैसे भूल गये?"

"अजी, आप यह क्या कह रहे ह? कैसे भूल सकता था म उसे! बिना सींगोंवाला बकरा भी है मेरी किताब में। मगर मने स्थानीय बोली मे उसका जिक्र किया है। मने "खाक्का" के नाम से उसके बारे मे लिखा है।

हम सब खूब हसे। मगर फिर भी बाद मे हमने उसे यह समझाने की कोशिश की कि लेखक जो कुछ देखता है, उसे उस सभी के बारे मे नहीं लिखना चाहिए, उसे तो अपनी जरूरत की सामग्री चुननी चाहिए। एक वाक्य बहुत बडे विचार को, एक शब्द बहुत बडे भाव और एक अश पूरी घटना को व्यक्त कर सकता है।

कुछ ही समय पहले हमारे यहां सभी तरह का पुनगठन किया गया। अभी भी हम किसी न किसी चीज का अचानक पुनगठन करने लगते ह। मुझे भी यह छूत लग गयी है। म अपनी विधा का पुनगठन करता हू।

म सभी विधाओं को एक किताब में इकट्ठा कर रहा हू, उनपर अपना सचालन स्थापित कर रहा हू। कहीं म कमचारियों की सख्या घटा रहा हू, तो कहीं बढ़ा रहा हू। कहीं-कहीं विधाओं को बदल रहा हू, दो को एक मे मिला रहा हू और एक को दो मे बांट रहा हू। यदि बहुत अधिक पुनगठन किये जायें, तो चाहे सयोगवश ही, कोई न कोई पुनगठन तो बढ़िया हो ही जायेगा।

मखचकला में आनेवाले पहाडी का किस्सा। एक पहाडी सरकारी दौरे पर मखचकला आया। उसके पास बहुत पसे थे और सो भी अपने नहीं, सरकारी। वह दोनों वक्त रेस्तरां मे खाना खाता। अपनी आमद के पहले दिन उसने सारे हाल को सुनाते हुए चिल्लाकर कहा—

"बरा, और ब्रांडी लाओ!"

सभी ने यह सुना, उसकी तरफ मुडे और हैरान हुए कि यह कौन है, जो इतनी अधिक पीता है और जिसे महगी ब्रांडी पर पसे खच करते हुए तक्लीफ नहीं होती।

अपने दौरे के आखिरी दिन हमारे इसी पहाडी ने उसी बरे से फुसफुसाकर पूछा—

"आपके रेस्तरा मे सेवइयो के शोरबे का क्या दाम है?"

तो बल का जुताई के शुरू म नहीं, अन्त मे पता चलता है। इस बात से नहीं कि वह चरागाह मे कसे कुलाचे भरता है, बल्कि इससे कि वह जए मे कसे चलता है। घोडे पर सवारी करने के समय नहीं, बल्कि उससे उतरते वक्त उसकी चर्चा की जाती है।

क्या म अनसालतीवासियो के बिगुल की तरह अपनी किताब का भोंपू तो नहीं बजा रहा हू? क्या म सिवुखवासियों की तरह लकडी का चूल्हा तो नहीं बना रहा हू? क्या म भेडिये की जगह किसी कुत्ते को तो नहीं मार रहा हू, जसा कि एक बार मेरे त्सादा गाववालो ने किया था?

मजिल के शुरू मे मजिल दूर लगती है। उसतक पहुचने के लिए मझमे पर्याप्त साहस, प्यार और सब्र तो बना रहेगा? या फिर अन्त तक पहुचने पर गुद्दी खुजाते हुए यह सोचना होगा कि सेवइयो का क्या दाम है?

सस्मरण। एक बार दागिस्तान मे बहुत कडाके का जाडा पडा। अचानक ही बफ गिरी और जमीन पर उसकी कोई एक मीटर ऊची तह जम गयी।

भेड़ें-मेमने चरें तो क्या? वे मरने लगीं। मुझे प्रादेशिक पार्टी समिति में बुलाकर कहा गया –

"रसूल, चरागाहों में जाओ, भेड़ों को बचाना जरूरी है।"

"मैं उन्हें क्या मदद दे सकता हूं?"

"वहां जाकर जैसा जरूरी समझो, कुछ सोच लेना। उन्हें बचाने की तरकीब ढूंढ़नी ही होगी।"

चरागाहों का रास्ता तो मैं अच्छे मौसम में भी ढंग से नहीं जानता था और बर्फीले तूफान में उसे ढूंढ़ना मेरे लिए कैसा रहा होगा, यह तो आप सोच ही सकते हैं। मगर पार्टी का अनुशासन तो सबसे ऊपर ठहरा, और इसलिए मैं बर्फ और तेज हवा में अपना रास्ता बनाता हुआ चल दिया। आखिर एक रेवड़ तक जा पहुंचा। चरवाहों के चेहरों पर मातम छाया था। उनके गालों और मूछों पर आंसुओं की जमी हुई बूंदों की धुंधली-सी मालायें बनी हुई थीं। लहू-लुहान थूथनियोंवाली भेड़ें जमी हुई बर्फ की तहों के नीचे से घास पाने की कोशिश करती थीं। मगर इसमें उन्हें कामयाबी न मिलती थी और वे मर जाती थीं। भेड़ियों और चोरों की फ़िक्र न करते हुए कुत्ते हवा से बचने के लिए इधर उधर जा छिपे थे। मतलब यह कि मेरे सामने मुसीबत और लाचारी का नजारा था। मुझे देखकर चरवाहे कटुतापूर्वक हंस पड़े –

बस, कविताओं और गीतों की ही कसर रह गयी थी। त्सादा गांव के हमजात के बेटे, तुम तो हमें कविता या गीत गाकर सुनाने ही आये हो न? यह ज्यादा अच्छा होगा कि तुम कोई मरसिया पढ़ो और हम फूट फूटकर रोयेंगे।"

तीन दिनों तक मैं चरवाहों के झोंपड़े में बैठा रहा और फिर यह देखकर कि मेरे वहां बैठे रहने से कोई फायदा नहीं और न ही हो सकता है, पीठ दिखाकर भाग खड़ा हुआ। मैं मखचकला वापस आ गया।

"कहो, बचा लीं भेड़ें?" मुझसे प्रादेशिक पार्टी-समिति में पूछा गया।

"हां, तीन भेड़ें बचा लीं।"

"वह कैसे, बताओ तो!"

"बड़े सीधे-सादे ढंग से। चरवाहों ने तीन भेड़ें काट डालीं और हमने उन्हें खा लिया। मेरे ख्याल में तो मैंने ये तीनों भेड़ें बचा लीं।"

"इसमें क्या शक है," प्रादेशिक समिति में मुझे यह बोधपूर्ण जवाब मिला, "जाओ, अपनी कवितायें रचो और जहाँ तक भेड़ों का सवाल है, उन्हें तो हम ही तुम्हारे बिना बचाना होगा। इसलिए कि अच्छी कविता रचो, हम तुम्हारी साहब-सलामत करते हैं।"

मेरी किताब के साथ भी यही होगा हाँ न हो। रेवड़ को बचाने जाऊं, पर जाने कौन-सा मुँह लेकर लौटूं? सुबह-सवेरे शुरू होनेवाला दिन हमेशा ही तो वैसा साबित नहीं होता, जैसा कि हम चाहते हैं।

संस्मरण। मास्को के साहित्य-संस्थान में मुझे अपना पहला दिन याद आ रहा है। हमने पढ़ाई शुरू की ही थी कि मेरा जन्म दिन आ गया। ज़ाहिर है कि किसी ने भी मुझे बधाई नहीं दी, क्योंकि कोई जानता ही नहीं था कि मैंने इस दिन जन्म लिया था। मैंने ओवरकोट खरीदने के लिए कुछ रकम अलग रखी हुई थी, जो मुझे पिता जी ने दी थी।

"हाँ, तो बेचारे रसूल," मैंने अपने आप से कहा, "चलो, अपने जन्म दिन पर खुद ही अपने लिए तोहफा खरीद लो।" मैं वह रकम लेकर तीशीन्स्की मंडी की तरफ चल दिया।

दूसरे विश्व-युद्ध के बादवाले पहले सालों में मास्को की मंडियां भी क्या कमाल की थीं! उनके अपने क़ानून-क़ायदे थे, अपने चोर बाज़ारी करनेवाले और अपने ही मिलीशियावाले। शायद वहां गधे और गधों को छोड़कर बाकी सभी कुछ खरीदा जा सकता था।

तीशीन्स्की मंडी बहुत कुछ तो चींटियों की उस बांबी जैसी लगती थी, जिसे किसी ने छेड़ दिया हो। एक घंटा भर मैं लोगों की भीड़ के बीच धकियाया जाता रहा, जो सभी तरह की रद्दी चीज़ें–सूट, घुटनों तक के जूते, ट्यूनिक, फौजी ओवरकोट, टोपियां, फ्राक, स्वेटर, सेंडल और बैसाखियां मेरी तरफ बढ़ा बढ़ाकर दिखाते थे

उन दिनों मैं किसी राज्य मंत्री जैसा दिखना चाहता था। भीड़ भड़क्के में ऐसा ओवरकोट ढूंढ़ रहा था, जिसे पहनते ही मंत्री जैसा दिखने लगूं। आखिर मुझे चोर बाज़ारी करनेवाले एक आदमी के कंधे पर कुछ इसी ढंग का ओवरकोट नजर आया। उसके साथ ओवरकोट के रंग और उसी कपड़े की टोपी भी थी।

जाहिर है कि मैंने टोपी से ही शुरू किया। उसे पहनकर आइने में अपनी सूरत देखी–बिलकुल मंत्री लग रहा था। सौदेबाज़ी शुरू की।

जब तक म ऊची और साफ आवाज मे थोडी कीमत कहता रहा, उसे जसे वह सुनाई ही नहीं दी। मगर जब मने धीरे-से, फुसफुसाकर असली क़ीमत कही, तो उसे फौरन सुनाई दे गया। हमने हाथ मिलाये कि सौदा तय हो गया। अपने तीन और पाच रूबलो के नोटो को अधिक सुविधा से गिनने क लिए मने ओवरकोट चोर बाजारी करनेवाले को पकडा दिया। दो हजार दो सौ पचास रूबल गिनकर मैंने उसे सौंप दिये। बडी शान से मत्री की तरह अकडता हुआ होस्टल मे पहुचा। तभी यह याद आया कि ओवरकोट तो चोर बाजारी करनेवाले के हाथ मे ही रह गया। दो हजार दो सौ पचास रूबल देकर मने सिफ एक टोपी ही खरीदी।

तो इस तरह मत्री बनने का सपना देखते हुए म ओवरकोट और पसों से भी हाथ धो बठा। कहीं मेरी किताब के साथ भी ऐसा ही न हो जाये!

सभी को यह मालूम होता है कि उन्हे क्या चाहिए, मगर सभी उसे हासिल नहीं कर पाते। सभी अपनी मजिल जानते ह, पर वहा तक सभी नहीं पहुचते। एसे भी लोग ह, जिन्हे ऐसा लगता है कि उन्हे यह मालूम है कि किताब कसे लिखनी चाहिए, मगर वे उसे लिख नहीं पाते।

कहते हैं कि एक ही सूई शादी का फ्राक और मुर्दे का कफन सीती है।

कहते हैं कि वह दरवाजा नहीं खोलो, जिसे बाद मे बन्द न कर सको।

प्रतिभा

जलो कि प्रकाश हो

लम्प पर आलेख

कवि और सुनहरी मछली का किस्सा। कहते है कि किसी अभागे कवि ने कास्पियन सागर मे एक सुनहरी मछली पकड ली।

"कवि, कवि, मुझे सागर मे छोड दो," सुनहरी मछली ने मिन्नत की।

"तो इसके बदले मे तुम मुझे क्या दोगी?"

"तुम्हारे दिल की सभी मुरादें पूरी हो जायँगी।"

कवि ने खुश होकर सुनहरी मछली को छोड दिया। अब कवि की किस्मत का सितारा बुलन्द होने लगा। एक के बाद एक उसके कविता सग्रह निकलने लगे। शहर मे उसका घर बन गया और शहर के बाहर बढ़िया बगला भी। पदक और "श्रम वीरता के लिए" तमगा भी उसकी छाती पर चमकने लगे। कवि ने ख्याति प्राप्त कर ली और सभी की जबान पर उसका नाम सुनाई देने लगा। ऊचे से ऊचे ओहदे उसे मिले और सारी दुनिया उसके सामने भुने हुए, प्याज और नीबू से मजेदार बने हुए सीख कबाब के समान थी। हाथ बढ़ाओ, लो और मजे से खाओ।

जब वह अकादमीशियन तथा ससद सदस्य बन गया था और पुरस्कृत हो चुका था, तो एक दिन उसकी पत्नी ने ऐसे ही कहा—

"आह, इन सब चीजों के साथ-साथ तुमने सुनहरी मछली से कुछ प्रतिभा भी क्यों नहीं माग ली?"

कवि मानो चौंका, मानो वह समझ गया कि इन सालों के दौरान किस चीज की उसके पास कमी रही थी। वह सागर-तट पर भागा गया और मछली से बोला –

"मछली, मछली, मुझे थोड़ी-सी प्रतिभा भी दे दो।"

सुनहरी मछली ने जवाब दिया –

"तुमने जो भी चाहा, मैंने वह सभी कुछ तुम्हें दिया। भविष्य में भी तुम जो कुछ चाहोगे, मैं तुम्हें दूंगी। मगर प्रतिभा नहीं दे सकती। यह, कवि प्रतिभा तो खुद मेरे पास भी नहीं है।"

तो प्रतिभा या तो है, या नहीं। उसे न तो कोई दे सकता है, न ले सकता है। प्रतिभाशाली तो पैदा ही होना चाहिए।

हमारे कवि ने, जिसे सुनहरी मछली ने सभी तरह से खुशहाल कर दिया था, जल्दी ही अपने को हंसों के पंख लगा लेनेवाले कौवे की तरह महसूस करना शुरू किया। पराये पंखों का सौन्दर्य शीघ्र ही खत्म हो गया और उसके अपने पंख भी बहुत कम रह गये थे। इस तरह कवि पहले की तुलना में भद्दा दिखने लगा।

दोहराने से प्रार्थना कुछ खराब नहीं हो जाती। इसलिए मैं भी दोहराता हूं। लिखने के लिए प्रतिभा का होना जरूरी है और अगर वह सुनहरी मछली के भी पास नहीं, तो उसे कहां से हासिल किया जाये?

पिता जी ने यह बात सुनायी। दूर के किसी गांव से एक पहाड़ी आदमी पिता जी के पास आया और अपनी कवितायें सुनाने लगा। पिता जी ने इस नये कवि की रचनायें बहुत ध्यान से सुनीं और फिर अपेक्षाकृत अधिक कमजोर और बेजान स्थानों की ओर संकेत किया। इसके बाद उन्होंने पहाड़ी को यह बताया कि वह खुद, त्सादा का हमजात इन्हीं कविताओं को कैसे लिखता।

"प्यारे हमजात," पहाड़ी आदमी कह उठा, "ऐसी कवितायें लिखने के लिए तो प्रतिभा चाहिए!"

"शायद तुम ठीक ही कहते हो, थोड़ी-सी प्रतिभा से तुम्हें कोई हानि नहीं होगी।"

"तो यह बताइये कि वह कहां मिल सकती है," हमजात के जवाब में निहित व्यंग्य को न समझते हुए पहाड़ी ने खुश होकर पूछा।

"दूकानो पर तो म आज गया था, यहा वह नहीं थी, शायद मडी मे हो।"

कोई भी यह नहीं जानता कि आदमी म प्रतिभा कहा से आती है। यह भी किसी को मालूम नहीं कि इसे धरती देती है या आकाश। या शायद वह धरती और आकाश दोनो की सतान है? इसी तरह यह भी कोई नहीं जानता कि इसान मे किस जगह पर वह रहती है—दिल मे, खून मे या दिमाग मे? जन्म के साथ ही वह छोटे-से इसानी दिल मे अपना घर बना लेती है या धरती पर अपना कठिन भाग तय करते हुए आदमी बाद मे उसे हासिल करता है? किस चीज से उसे अधिक बल मिलता है—प्यार से या घृणा से, खुशी से या ग़म से, हसी से या आसुओं से? या प्रतिभा के लिए इन सभी की जरूरत होती है? वह विरासत म मिलती है या मानव जो कुछ देखता, सुनता, पढता, अनुभव करता और जानता है, उस सभी के परिणामस्वरूप वह उसमे सचित होती है?

प्रतिभा श्रम का फल है या प्रकृति की देन। यह आखो के उस रग के समान है, जो आदमी को जन्म के साथ ही मिलता है, या उन मास पेशियो के समान है, जिनका दनिक व्यायाम के फलस्वरूप वह विकास करता है? यह माली द्वारा बडी मेहनत से उगाये गये सेब के पेड के समान है या उस सेब के समान, जो पेड से सीधा लडके की हथेली पर आ गिरता है?

प्रतिभा—यह तो इतनी रहस्यमयी है कि जब पृथ्वी, उसके अतीत और भविष्य, सूय और सितारो, आग और फूलो, यहा तक कि इसान के बारे मे भी सब कुछ मालूम कर लिया जायेगा, तभी, सबसे बाद मे ही यह पता चल सकेगा कि प्रतिभा क्या चीज है, वह कहा से आती है, कहा उसका वास होता है और क्यो वह एक आदमी को मिलती है और दूसरे को नहीं मिलती।

दो प्रतिभावान व्यक्तियो की प्रतिभा एक जसी नहीं होती, क्योकि समान प्रतिभायें तो प्रतिभायें ही नहीं होतीं। शक्ल सूरत की समानता पर तो प्रतिभा बिल्कुल ही निभर नहीं करती। मने अपने पिता जी के चेहरे से मिलते-जुलते चेहरोवाले बहुत-से लोग देखे ह, मगर पिता जा क समान प्रतिभा मुझे किसी मे भी दिखाई नहीं दी।

प्रतिभा विरासत म भी नहीं मिलती, वरना कला-क्षत्र मे वशा का

बोल-बाला होता। बुद्धिमान के यहा अक्सर मूर्ख बेटा पैदा होता है और मूर्ख का बेटा बुद्धिमान हो सकता है।

किसी व्यक्ति मे अपना स्थान बनाते समय प्रतिभा कभी इस बात की परवाह नहीं करती कि जिस राज्य मे वह रहता है, वह कितना बडा है, उसकी जाति के लोगो की सख्या कितनी है। प्रतिभा बडी दुर्लभ होती है, अप्रत्याशित ही आती है और इसीलिए वह बिजली की कौंध, इन्द्रधनुष अथवा गर्मी से बुरी तरह झुलसे और उम्मीद छोड चुके रेगिस्तान मे अचानक आनेवाली बारिश की तरह आश्चर्यचकित कर देती है।

कैसे मैंने एक दोस्त खो दिया। एक दिन म अपनी मेज पर बठा काम कर रहा था कि एक जवान घुडसवार मेरे घर आया।

"सलाम अलकम!"

"वालकम सलाम!"

"रसूल, म तुम्हारे पास एक छोटी सी प्राथना लेकर आया हू।"

"भीतर आकर अपनी प्राथना मेज पर रख दो।"

नौजवान ने जेब में हाथ डाला और सचमुच ही कुछ काग़ज़ निकालकर मेज पर रख दिये। पहला काग़ज़ मेरे पिता जी के परम मित्र और मेरे यहा भी अक्सर आनेवाले व्यक्ति का पत्र था। हमारे घर और परिवार के मित्र ने लिखा था—

"प्यारे रसूल, यह नौजवान हमारा नजदीकी रिश्तेदार और बहुत भला आदमी है। इसे अपने जसा विख्यात कवि बनने मे मदद दो।"

बाकी काग़ज़ थे—ग्राम-सोवियत का प्रमाण-पत्र, सामूहिक फाम का प्रमाण-पत्र, पार्टी-सगठन का प्रमाण-पत्र और योग्यता-पत्र।

ग्राम सोवियत के प्रमाण पत्र मे लिखा था कि फला-फला वास्तव मे ही काहाब रोस्सो के मशहूर शायर महमूद का भतीजा है और ग्राम-सोवियत के मतानुसार प्रसिद्ध दाग़िस्तानी कवियों की पाति मे स्थान पाने का बहुत ही योग्य उम्मीदवार है।

दूसरे प्रमाण-पत्रों मे यह बताया गया था कि महमूद का भतीजा पचीस साल का है, कि वह नवीं कक्षा तक पढ़ा है और बिल्कुल स्वस्थ है।

"बहुत ख़ूब," मने कहा, "लाओ, दिखाओ अपनी रचनायें। मुमकिन है कि तुम सचमुच प्रतिभाशाली हो और वक्त आने पर प्रसिद्ध कवि बन

सकोगे। मुझसे जो कुछ भी हो सकेगा, हर तरह से तुम्हारी मदद करूगा और इस तरह हमारे साझे मित्र की प्रार्थना भी पूरी हो जायेगी।"

"पर यह तुम क्या कह रहे हो? मुझे तो तुम्हारे पास भेजा ही इसी लिए गया है कि तुम मुझे कविता लिखनी सिखाओ। मने तो अब तक कभी कविता नहीं रची।"

"तो तुम करते क्या हो?"

"सामूहिक फाम मे काम करता हू। मगर इस काम से कुछ भी बनता बनाता नहीं। श्रम दिवस लिख लेते ह, पर बाद मे कुछ देते दिलाते नहीं। कुनबा हमारा बडा है। इसीलिए मुझे कवि बनाने की बात सोची गयी है। मुझे मालूम है कि मेरे चाचा महमूद काफी कमाते थे, जितना म सामूहिक फाम मे कमाता हू, उससे कहीं ज्यादा। कहते ह कि रसूल, तुम भी खासे पसे पाते हो।"

"मुझे लगता है कि बहुत चाहने पर भी म तुम्हे कवि नहीं बना सकूगा।"

"यह तुम क्या कहते हो? म तो महमूद का भतीजा हू। प्रमाण पत्र मे सब कुछ लिखा हुआ है? ग्राम सोवियत भी मेरा समथन करती है और पार्टी-सघटन भी।"

"अगर तुम महमूद के बेटे भी होते, तब भी म कुछ न कर पाता। जसा कि सभी जानते ह, महमूद का बाप लकडी का कोयला बनाता था, कवि नहीं था।"

"तो बताओ, यह भी कोई इसाफ है? तुम कवि और लखक यहा मखचक्ला मे साहित्य का पर्चोवाला धड आपस मे बाट लेते हो। क्या मुझ कुछ अतडियाँ भी नहीं मिल सकतीं? म अतडियो के लिए भी राजी हू। तो म अब क्या करू? मुझे कहीं अच्छी नौकरी पाने मे मदद करो। मेरे प्रमाण-पत्र बिल्कुल ठीक-ठाक ह।"

महमूद का भतीजा होने के नाते हमने साहित्यिक-कोश से उसकी कुछ माली मदद कर दी और फिर मेरी प्राथना पर दागिस्तान बिजली मशीन कारखाने के डायरेक्टर ने उसे अपने यहा नौकरी दे दी।

मगर लोकप्रिय कवियों की पाति मे जगह पाने के इस उम्मीदवार को अपने भाग्य से सन्तोष नहीं हुआ। कुछ ही समय बाद उसके पिता ने, जो हमारे मित्र थे, नाराजगी का यह पत्र भेजा—

"तुम्हारे पिता हमजात मेरी सभी प्रार्थनायें हमेशा पूरी करते थे। उन्होंने मुझे कभी किसी चीज के लिए इनकार नहीं किया था। मगर तुमने, हमजात के बेटे ने मेरा ऐसा छोटा-सा अनुरोध कि मेरे बेटे को कवि बना दो, पूरा करने से भी इनकार कर दिया। लगता है कि रसूल, तुम्हें घमड हो गया है। तुम अपने बाप जसे नहीं हो। मने कभी भी अपने दोस्तो से नाता नहीं तोडा, मगर अब ऐसा करना पड रहा है। बस, खत्म।"

तो इस तरह प्रतिभा के कारण या यह कहना अधिक सही होगा कि प्रतिभा के अभाव के कारण म एक अच्छा मित्र गवा बठा। मेरा मित्र सचमुच ही अच्छा आदमी था, पर सिफ इतना ही नहीं समझता था कि कोई भी, चाहे वह लेखक-सघ का अध्यक्ष, चाहे पार्टी-सगठन का सेक्रेटरी, चाहे सरकार का अध्यक्ष हो क्यों न हो, वसे ही प्रतिभा नहीं बाट सकता, जसे मेज पर रखी, भुनी हुई गर्मा-गम भेड के मास के टुकडे मेज के चारो ओर बठे पहाडी लोगो मे बाटे जाते ह।

या फिर दागिस्तान के रास्ता पर जाते हुए हम माल से लदी बलगाडी को ऊपर चढ़ते देखते ह। एक आदमी उसे ऊपर की ओर खींचने मे मदद देता है और दूसरा पीछे से धकेलता है।

या फिर हम भारी ट्रक द्वारा बफ के ढेर मे फसी छोटी-सी "मोस्क्वीच" कार को रस्से से अपने पीछे बाधकर खींचते हुए देखते ह।

या फिर हमे यह नजर आता है कि तग पहाडी रास्ते पर धीरे धीरे चलनेवाली भारी टक तेज कार को किसी भी तरह आगे नहीं निकलने देती।

प्रतिभा बलगाडी नहीं है, जिसे दो आदमी मिलकर धकेल सकते ह या आगे खींच सकते ह, प्रतिभा "मोस्कवीच" कार भी नहीं है, जिसे रस्सा बाधकर खींचा जाये, प्रतिभा वह कार भी नहीं है, जो अपने लिए रास्ता बनाकर आगे न निकल सके।

प्रतिभा को पीछे से धकेलने की जरूरत नहीं होती और हाथ पकडकर उसे आगे बढ़ाने की भी आवश्यकता नहीं पडती। वह खुद अपना रास्ता बना लेती है और खुद ही सबसे आगे पहुच जाती है।

मगर बहुत-से ऐसे लोग ह, जो यह उम्मीद लगाये रहते ह कि उन्ह या तो पीछे से धकेला जाये या आगे की ओर खींचा जाये। लीजिये, यह रहा छोटा-सा एक और किस्सा, जिसे निम्न शीषक दिया जा सकता है—

बेशक बूढी, मगर प्रतिभाशाली हो। जब म मास्को के साहित्य सस्थान मे पढ़ता था, तो अनेक रूसी कवियो से, जो उसी सस्थान के विद्यार्थी थे, मेरी दोस्ती हो गयी। वे मेरी कविताओ का अनुवाद करने लग। विभिन्न पत्र पत्रिकाओ मे ये अनुवाद छपने लगे। रूसी अनुवादो की बदौलत दाग़िस्तान की अन्य जातियो के लोगो ने भी मेरी कवितायें पढीं।

उन सालो मे कुछ ऐसे लोग थे, जो बेकार यह बक-बक किया करते थे कि रसूल हमज़ातोव तो अवार भाषा मे कविता रच ही नहीं सकता, कि प्रतिभाशाली रूसी अनुवादक उसका नाम पैदा करने की कोशिश कर रहे ह और यह कि वह रूसी पाठको की रुचि के अनुसार ही कविता रचता है।

इसी सिलसिले मे मुझे अक्सर एक दाग़िस्तानी कवि की याद आ जाती है।

दाग़िस्तान मे तात नाम की एक छोटी-सी जाति है। इस जाति के लोगो का कुल सख्या पद्रह हजार से अधिक नहीं होगी। फिर भी पाच छ ऐसे तात लेखक ह, जो सारे दाग़िस्तान म प्रसिद्ध ह। उनकी किताबें मखचकला मे मातभाषा मे भी छपती ह और उनके रूसी अनुवाद भी प्रकाशित होते ह। म एक तात कवि की ही चर्चा करना चाहता हू। उसका नाम बताना जरूरी नहीं है।

मास्को क साहित्य-सस्थान की पढ़ाई समाप्त कर म अपने मखचकला मे वापस आ गया था। मेरे लौटने के कुछ ही दिन बाद उक्त तात कवि ने मुझे आमन्त्रित किया। उसने अनावृत्त स्थान पर मेरी दावत की। हमारे सामने था दूर दूर तक फला हुआ कास्पियन सागर और हमारे पीछे थे—ऊचे पवत। मेरा कवि मित्र तात भाषा मे कविता सुनाता और फिर एक एक शब्द का रूसी मे अनुवाद करता ताकि उसकी कविता के भाव मेरी समझ मे आ जायें।

यह ध्यान मे रखते हुए कि म मेहमान हू और वह मेजबान, यह ध्यान मे रखते हुए कि कहीं वह यह न समझे कि म मास्को मे प्राप्त अपने ज्ञान की डींग मारना चाहता हू, यह भी ध्यान मे रखते हुए कि सभी कवि आलोचना की तुलना मे प्रशसा अधिक पसन्द करते ह, यह भी दृष्टि मे रखते हुए कि किसी तरह की आलोचना से भी उसे कोई लाभ नहीं होगा, और अन्त मे इस बात का भी ध्यान मे रखत हुए कि उसने मेरी हर

कविता और हर पंक्ति की तारीफों के पुल बांधे हैं, मैं बड़ी बेहयाई से उसकी सभी कविताओं की प्रशंसा करता रहा।

यह सच है कि उसकी कुछ कवितायें मुझे पसन्द भी आईं और मैंने दिल से उनकी तारीफ की। मगर कुछ कवितायें मुझे अच्छी नहीं लगीं और उनके मामले में मैंने बेईमानी से काम लिया। हां, उसी वक्त मैंने मन ही मन कास्पियन सागर की लहरों की तरफ अपनी भुजायें फैला दीं, उनके सामने घुटने भी टेके और कहा—"मेरा यह झूठ क्षमा करना!" इसके बाद मैं मन ही मन पहाड़ों की तरफ मुड़ा, उनकी सफेद हिम-मंडित चोटियों की ओर बांहें फैलायीं, उनके सामने घुटने टेके और कहा—"मेरा यह झूठ क्षमा करना!"

एक-दूसरे को अपनी कवितायें सुनाने और एक-दूसरे की तारीफ करने के बाद हम कुछ देर तक चुप रहे। मैं सागर का संगीत सुनता रहा और मेरा दोस्त, जैसा कि बाद में सिद्ध हुआ, अपने ख्यालों में खोया हुआ था। आखिर उसने यह बातचीत शुरू की—

"रसूल, मैं एक बहुत ही जरूरी मामले में तुम्हारी राय लेना चाहता हूं। मगर वादा करो कि किसी से इसका जिक्र नहीं करोगे।"

मैंने वादा किया।

"यह तो तुम जानते ही हो कि तात जाति के हम लोगों की संख्या बहुत कम है। इसलिए मुझे और मेरी कविताओं को घुटन-सी महसूस होती है। तुम ठीक करते हो कि मास्को में अपने पाठक खोजते हो। मैं तुम्हारा ही अनुकरण करना चाहता हूं, जाकर मास्को रहना चाहता हूं। मगर मेरे तो वहां न रिश्तेदार हैं, न दोस्त और न जान पहचानवाले ही। सिर छिपाने की जगह भी नहीं है। तुम्हारा क्या ख्याल है, अगर मैं अपनी किताब के लिए मिलनेवाले पैसे लेकर मास्को चला जाऊं, तो क्या वहां रहने की कोई ढंग की जगह मिल जायेगी?"

"क्या नहीं मिल जायेगी? जेब में पैसे हों, तो कमरा किराये पर लिया जा सकता है।"

"मेरा यह मतलब नहीं था। वहां मुझे बीवी मिल जायेगी या नहीं? बेशक वह बूढ़ी हो, बदसूरत हो, कैसी भी क्यों न हो, मगर प्रतिभाशाली हो, रूसी भाषा में मेरी कविताओं का अनुवाद कर सके, मेरी रचनाओं को लोगों तक पहुंचा सके। बाद में, अपने पैरों पर खड़े हो जाने के बाद तो मैं

अपना रास्ता ढूढ़ लूगा। इसके बिना तो म जातीय कूपमडूक ही बनकर रह जाऊगा।"

मने एक बार फिर से उसे बहुत गौर से देखा। जिदगी की आग से दहकता हुआ पचीस साल का तगडा काकेशियाई जवान था वह। बडे-बडे हाथ और उगलिया बालो से ढकी हुइ, छाती के बाल दीवार मे ठुकी हुई कीलो की तरह कडे, सावले, लगभग गेहुआ चेहरे पर मोटे मोटे होठ और झील की तरह नीली आखें। सिर साही जसा लगता था, दात बडे-बडे और सफेद थे और टागें लट्ठो जसी थीं। सारे शरीर पर मास पेशिया उभरी हुई थीं। आदिम मानव का अच्छा नमूना सा था वह। कई लाख की आबादी वाले शहर मे, सो भी युद्ध के बाद के तीसरे साल मे, इसे क्या कठिनाई हो सकती थी बीवी हासिल करने मे! मने उसे जवाब दिया—

"तुम तो बस, सडक के बीच खडे होकर सीटी बजा देना और तब देखना कि बीविया, जसी भी तुम चाहो, कसे भागी आती ह।"

मेरा दोस्त एक बच्चे की तरह खिल उठा। वह हाथों के बल खडा हो गया और इसी तरह हाथो पर चलता हुआ पानी मे, सागर मे चला गया। तरने से पहले उसने इतना और पूछा—

"*तुम क्या सलाह देते हो—हवाई जहाज से मुझे मास्को जाना चाहिए या गाडी से?*"

छ महीने बीत गये। टोपी पर से नम बफ झाडते हुए म "मोलोदाया ग्वादिया" (तरुण गाड) प्रकाशनगह की चौथी मजिल की सीढिया चढ रहा था कि सामने से मुझे बडा-सा थला बगल मे दबाये वही तात कवि नीचे उतरता दिखाई दिया, जिसने कास्पियन सागर के तट पर मेरी दावत की थी। सबसे पहले तो इस बात की तरफ मेरा ध्यान गया कि वह बाकी लेखको की तरह थला हाथ मे नहीं उठाये था, बल्कि लेखापालो और खजाचियों की तरह बगल मे दबाये था। मने यह भी नोट किया कि आध साल मे वह बहुत बदल गया है। साही जसे बाल लम्बे हो गये थे और उनमे ढग से चीर निकला हुआ था। गालो पर दिसम्बरवादियों जसी कलमें थीं। कनिष्ठा उगली का नाखून नुकीला था और सगीन जसा लगता था। दूसरी उगली मे नगवाली अगूठी थी। टाई की जगह गुबरले के पखो जसा कुछ लगा था। सब दक, बना-ठना। सलाम दुआ के बाद उसने मेरी टाई ठीक

की, जो शायद एक तरफ को खिसक गयी थी। जाहिर है कि इसके लिए मने उसका शुक्रिया अदा किया।

अहमद ने अपनी बीवी से मेरा परिचय कराया।

"बड़ी ख़ुशी हुई," उसने कहा और अपनी तीन उंगलियां मेरी तरफ बढ़ायीं।

हमारे दागिस्तान में नारियों का हाथ चूमने की प्रथा नहीं है, इसलिए मने धीरे-से हाथ मिलाया। मगर वह दद से एसे चिल्ला उठी मानो मने उसकी उंगलियों की सारी हड्डियां ही कुचल डाली हों।

"मुझ मूढ़ पहाड़ी को क्षमा कीजिये मने तो ऐसा नहीं चाहा था "

"अब तक कुछ तो तौर-तरीक़े सीख लेने चाहिए थे," उसने बिगड़कर कहा और दपण के सामने जाकर ऐसे मुह बनाने लगी, मानो वह उसकी शक्ल सूरत को बेहतर बना सकता हो।

हां, यह बूढ़ी भी थी और बदसूरत भी और इतना पाउडर थोपे थी कि उससे दरमियाने आकार के कमरे मे सफेदी हो सकती थी। सबसे ज्यादा अफ़सोस तो मुझे इस बात का हुआ कि इस वक्त अबूतालिब यहां नहीं था, वरना वह तो जरूर ही इसके बारे में निशाने पर ठीक बठनेवाले कुछ बढ़िया शब्द कहता।

कहते ह कि लोमड़ी और उसकी दुम से ज्यादा मक्कार और कुछ भी नहीं है। मगर वह रुपहली लोमड़ी भी कसी उल्लू रही होगी, जो इस बूढ़ी खूसट के कालर के काम आई। मेरे दोस्त की बीवी पत्र-पत्रिकाओं के स्टाल पर चली गयी और कुछ देर को हम दोनो ही रह गये।

"क्या हालचाल है, कसी ज़िन्दगी चल रही है, दोस्त अहमद?"

"ओ, मैं अपने को उस बैल जसा महसूस करता हू, जिसे मसूर दलने के लिए जोत दिया गया है। मेरी बीवी के हाथ मे ही मेरी और मेरे काम की नकेल है। काश कि तुम्हें मालूम होता कि वह कितनी पढ़ी लिखी है। बड़ी ही रोशन दिमाग़ है। ब्लोक और मयाकोव्स्की को व्यक्तिगत रूप से जानती थी। सेर्गेई येसेनिन की दोस्त रही है। पेरिस हो आयी है। खूब बढ़िया अंग्रेजी बोलती है। हमारे पास चार कमरों का फ्लट है और उसमे हम दोनों ही रहते ह। हमारे बच्चे नहीं ह। हां, तोशिक नाम का जापानी कुत्ता है, बिल्ली से भी छोटा।"

"लगता है कि तुम्हारी किस्मत ने खूब साथ दिया है। इस वक्त कहाँ जा रहे हो?"

"बाल पत्रिका 'मुर्जील्का' के लिए कुछ कवितायें लाया था, मगर ये लोग कहते है कि बच्चों की दृष्टि से कुछ ज्यादा ही गहरी है। सोचता हूँ कि किशोर सामूहिक किसानो की पत्रिका मे इन्हें छपने दूगा। उन्हें ये कवितायें पसन्द आयी है, सिर्फ इनमे "सामूहिक फाम" शब्द जोडना होगा। आज शाम को ऐसा करके कल फिर वहा ले जाऊगा हा, रसूल, ऐसे ही काम करना और जीना चाहिए मेरी बीवी मुझसे कहा करती है कि चलना सीखने से पहले बच्चे भी घुटनिया चलते है। बाद मे मै भी कोई बढ़िया चीज लिख डालूगा।"

"अल्योशा," उसकी बीवी ने लौटते हुए प्यार और कडाई से कहा। "चलो, घर चलकर तोशिक को खिला पिला दें और उसके बाद हम 'क्रोकोडील' (मच्छ) और 'राबोत्नित्सा' (कामगारिन) का भी चक्कर लगा आयेंगे।"

इस मुलाकात के बाद बहुत अर्से तक अहमद से फिर मिलना नहीं हुआ। एक बार मुझे उसका एक खत मिला। उसमे उसने अनुरोध किया था कि बालखारी के कुम्हारो को एक घडा बनाने का आर्डर दे दू, जिसपर यह लिखा हो– "मेरी प्यारी बीवी को"। मैने घडे का आर्डर दे दिया और सोचा–

"शायद यह सचमुच ही उसके लिए बहुत कुछ करती है।" बीवी द्वारा अनूदित उसकी कविताओं को कभी 'मुर्जील्का', कभी 'पायनियर' और कभी 'क्रोकोडील' मे झलक मिल जाती। मगर हमारे मखचकला मे उसकी तात मातभाषा मे कभी कोई कविता दिखाई नहीं दी। कई बार हमने उससे कुछ भेजने का अनुरोध किया, पर उसका कभी कोई जवाब नहीं आया।

इस पहली मुलाकात के पन्द्रह साल बाद हम फिर मिले। मास्को में दागिस्तानी कला का दस दिनी समारोह हो रहा था। दागिस्तान से चालीस कवि मास्को आये थे। दागिस्तान की विभिन्न भाषाओं मे हमने ट्रेड-यूनियनों के स्तम्भ भवन, क्रेम्लिन थियेटर, मोटर कारखाने और कान्तेमीरोव्स्काया गार्ड डिविजन में अपनी कवितायें पढीं।

समारोह की अन्तिम शाम को हमारा सुन्दर-सुघड अहमद पीछे की ओर से हमारे पास मच पर आया।

"रसूल," उसने मेरी मिन्नत करते हुए कहा, "मुझे मास्को से दागिस्तान ले चलो। मैं दुम्बा बनना चाहता था, मगर अपनी छोटी-सी दुम भी खो बैठा।"

तो इस तरह अहमद दागिस्तान लौट आया। मगर किसी तरह भी उसके पंडूर के तार कसे नहीं जाते, किसी तरह भी वह सुर मे नहीं आ पाता। वह मिट्टी के उस बतन जैसा है, जो तिड़क गया है और उसम से सारी शराब बह गयी है। उस घड़े को बाद मे चाहे कैसे भी क्यो न जोड़ो, शराब उसमे से फिर भी रिसती रहेगी, निकलती रहेगी।

तो इस तरह नतीजा यह निकलता है कि अनुवादक उस व्यक्ति की प्रतिभा नहीं बढ़ा सकता, जिसमें वह है ही नहीं। कुछ लोगो का कहना है कि आफ़दी कापीयेव ने सुलेमान स्ताल्स्की का निर्माण किया। दूसरों का कहना है कि सुलेमान ने आफ़दी कापीयेव को बनाया। मगर हक़ीकत यह है कि वे दोनो ही प्रतिभाशाली थे। आफ़दी की प्रतिभा ने आफ़दी और सुलेमान की प्रतिभा ने सुलेमान को बनाया।

मैं ईर्ष्या से वह दूगी। मुझे जो अगला किस्सा याद आ रहा है, उसका उक्त शीर्षक हो सकता है।

इस समय दागिस्तान का विख्यात लेखक मुहम्मद सुलेमानोव अवार अध्यापक प्रशिक्षण सस्थान मे मेरे साथ पढ़ता था। वह बचपन से ही बहुमुखी प्रतिभा का धनी था—अच्छी चित्रकारी करता था, लोक-नृत्य नाचता था, कवितायें रचता था। 'येव्गेनी ओनेगिन' से बहुत ही प्यार था उसे। यह किताब तो हमेशा उसके पास रहती थी और लगभग पूरी की पूरी उसे ज़बानी याद थी। उन दिनों ही वह अवार भाषा मे उसका अनुवाद करने का सपना देखा करता था। युद्ध के मोर्चे पर भी वह उसे अपने साथ ले गया।

युद्ध के अन्त मे गोलियों और गोलों के टुकड़ो से छलनी होने पर उसे मास्को के एक अस्पताल मे भेज दिया गया। वहाँ मरीया नाम की एक मास्कोवासिनी युवती से उसकी जान-पहचान हो गयी। घाव भर जाने पर उसने मरीया से शादी कर ली और मास्को मे ही रह गया।

म जब पढ़ने के लिए मास्को पहुचा, तो पूछ-ताछ ब्यूरो से मने अपने दोस्त का पता लगा लिया। म उससे मिलने को बहुत उत्सुक था और वह मुझसे। मरीया ने हमारी दिली और जोशीली बातचीत मे किसी तरह का

खलल नहीं डाला। अच्छी सी शराब पीते हुए हम तीनों देर तक बठे रहे। मुहम्मद युद्ध की चर्चा करता रहा और म दागिस्तान, अपने प्यारे पहाड़ों और अपने जन्म-गाव की। म उन्हें अपनी और अन्य जवान अवार कवियों की कवितायें सुनाता रहा। बाद मे मने मुहम्मद से पूछा कि वह किस काम मे अपना जीवन लगाना चाहता है।

"मने इस सवाल पर बहुत सिर खपाया कि म क्या करू। मगर मरीया की एक मौसी है और मौसी का ईरया है, जो मास्को मे बहुत ही प्रभावशाली व्यक्ति है। मौसी ने देखा कि म किसी सोच मे डूबा हुआ घुलता रहता हू। वह बोली–"तुम इस तरह परेशान क्यों रहते हो, मुहम्मद। म ईरया से कह दूगी और वह सब कुछ ठीक-ठाक कर देगा।" और सचमुच ऐसा ही हुआ। ईरया ने विज्ञान अकादमी मे मेरे लिए अच्छी-सी नौकरी ढूढ दी। अब म यहीं काम करता हू।"

"तुम्हारी चित्रकारी का क्या हुआ?"

"गोलियों ने मेरे बदन पर जो चित्रकारी कर दी है, वही काफी है।"

"और कविता?"

"वह बचपन था, रसूल। अब म खासी उम्र का सजीदा आदमी हू और मुझे कोई सजीदा काम ही करना चाहिए।"

"और 'येव्गेनी ओनेगिन'?"

मेरा दोस्त सोच मे डूब गया। हा, मने उसकी दुखती रग पर हाथ रख दिया था।

"तुम दागिस्तान क्यो नहीं लौटना चाहते?"

"तब मरीया का क्या होगा?"

"उसे अपने साथ ले चलो!"

"मेरे पास तो गाव के सिवा और कहीं कोई घर नहीं है। मरीया को लेकर तो म गांव मे नहीं जा सकता। वह तो मेरी मा से भी बातचीत नहीं कर सकेगी। इसलिए कि मरीया मेरी मा की बात समझ सके और मा मरीया की, म दुभाषिया तो साथ लेकर जाने से रहा।"

मुहम्मद के लिए इस कष्टप्रद बातचीत को यहीं बन्द करने के लिए मने मुहम्मद, मरीया और 'येव्गेनी ओनेगिन' के नाम पर जाम उठाया।

अगली बार जब म अपने दोस्त के यहां गया, तो मरीया ने मुझसे कहा कि मुहम्मद तो मानो बिल्कुल बदल गया है। दिनो और रातों को

तथा फुरसत के हर मिनट मे वह भूख प्यास, आराम और नींद की परवाह किये बिना कुछ लिखता रहता है, लिखकर कागज फाड डालता है, फिर से लिखता है और फिर से कागज के टुकडे-टुकडे कर डालता है।

मरीया की मौसी कुछ समय तक मुहम्मद को एसा करते देखती रही और आखिर उसने यह जानना चाहा कि वह क्या लिखता है और क्यो लिखे हुए कागजों को फाड डालता है।

"म कवि बनना चाहता हू," मुहम्मद ने जवाब दिया। "'येव्गेनी ओनेगिन' का अनुवाद करना चाहता हू।"

"तो फिर इसमें क्या मुसीबत है और क्यों तुम इस तरह परेशान होते रहते हो? म ईस्या से कह दूगी और वह सब कुछ ठीक-ठाक कर देगा।"

"नहीं, मेरी प्यारी मौसी, न तो ईस्या, न उसका अफसर, यहा तक कि ईस्या की बीवी भी कवि बनने मे मेरी मदद नहीं कर सकती। वह तो सिर्फ म खुद ही बन सकता हू।"

कुछ ही समय बाद मुहम्मद ने मुझे 'येव्गेनी ओनेगिन' के पहले अध्याय का अवार भाषा मे अपना अनुवाद सुनाया। तीन साल बाद सभी अवार इस महान प्रणय-काव्य को अपनी मातृभाषा मे पढ़ सके।

किसका फोटो छापा जाये? कहते ह कि हिम्मती बीवी अपने पति की कामयाबी मे बहुत हाथ बटा सकती है। हां, ऐसी उत्साही बीवियों से हमारा भी पाला पड़ा है। एक नामी दागिस्तानी कवि की ऐसी ही बीवी थी। उसका नाम सुनते ही लेखक-संघ, सभी प्रकाशनगृहो और समाचारपत्रों के सम्पादकीय कार्यालयों में लोगो को जूडी चढ़ जाती थी। म भी उससे थोडा डरता था और उसे फुसलाने के लिए ही मने अपने कमरे म उसके पति का फोटा भी लगा लिया। मने सोचा कि वह खुश होगी और मेरे साथ नर्मी से पेश आयेगी। मगर इसका उसपर बहुत कम असर हुआ। बात यह थी कि उसके पति का फोटो मेरे कमरे मे लटकने से उसे तो एक कोपेक भी नहीं मिला था।

एक बार उसने प्रकाशनगृह से यह माग की कि फौरन ही उसके पति की कविताओं का सकलन छापा जाय। डायरेक्टर ने डरते डरते कहा कि इस साल की योजनाओं की पुष्टि हो चुकी है, कागज की कमी है और इसलिए वह सकलन अगले साल निकालना मुमकिन होगा

"बिल्कुल बेहया आदमी हो तुम!" यह औरत आग बबूला होकर बोली। "तुम्हें डर है कि लोग यह देख सकेंगे कि मेरे पति की कवितायें तुम्हारी

कविताओं से कहीं अधिक अच्छी है। इसीलिए तुम कागज़ की कमी और योजनाओं का राग अलाप रहे हो। मैं तुम्हारी रग रग पहचानती हूं। तुम मेरी आंखों में धूल नहीं झोंक सकते। देखूंगी कैसे तुम मेरे पति का कविता संकलन नहीं निकालते।"

इतना कहकर उस औरत ने फटाक से दरवाज़ा बन्द किया और चली गयी।

दो घण्टे बाद डायरेक्टर के टेलीफ़ोन की घंटी बजी। प्रादेशिक समिति के सेक्रेटरी की आवाज़ सुनाई दी।

"खुदा के लिए कुछ ऐसा करो कि यह औरत फिर कभी मेरे दफ्तर में न आये," सेक्रेटरी ने मिन्नत करते हुए कहा। "आये दिन तो मैं अपनी मेज़ का शीशा नहीं बदलवा सकता। वह हर बार मेज़ पर मुक्का मारकर उसे तोड़ डालती है।"

इस सारे किस्से का नतीजा क्या हुआ? लेव तोलस्तोय का लघु उपन्यास 'हाजी मुराद' और हमज़ात त्सादासा की बच्चों की एक किताब भी योजना से निकालनी पड़ी। इन दो किताबों की बलि देकर उस लड़ाकी औरत के पति का कविता-संकलन योजना में शामिल किया गया।

हमें लगा कि अब शान्ति रहेगी। मगर नहीं, जल्दी ही नया बखेड़ा उठ खड़ा हुआ। उसका कारण यह था कि संकलन में कवि का फ़ोटो नहीं छापा गया था।

"कैसे बेहया लोग हैं!" गुस्से से पागल होती हुई वह औरत चिल्लाई। "तुम्हें इसी बात का डर है न कि लोग यह देख सकेंगे कि मेरा पति तुम सभी से कितना ज़्यादा खूबसूरत है! इसीलिए तुमने उसका फ़ोटो नहीं छापा।"

"नहीं, ऐसी बात नहीं है," प्रकाशनगृह के डायरेक्टर ने जवाब दिया। "हम यह नहीं जानते थे कि इस किताब में किसका फ़ोटो छापा जाये—तुम्हारा या तुम्हारे मियां का?"

"हां, यह भी एक सवाल है," इस औरत ने दांत निपोरे। "कौन जाने, मेरे बिना वह कवि भी बन पाता या नहीं।"

अबूतालिब ने उस कवि से भेंट होने पर कहा—

"सुनो, मेरी एक बात मान लो। एक हफ्ते के लिए मुझे अपनी बीवी दे दो। मुझे फ़ौरन स्तालिन पुरस्कार मिल जायेगा।"

"हटाम्रो भी इस बात को प्रबूतालिब! म दस साल से उसके साथ रह रहा हू और मुझे हाजो कासिम का इनाम भी नहीं मिला।"

"तो उससे कुछ प्रतिमा माग लो।"

अबूतालिब और खातिमत का किस्सा। प्रबूतालिब शुरु में भेडें चराते रहे। इसके बाद वे टीनगर बन गये। मगर चरवाहे की अपनी मुरली वे तब भी अपने साथ ही रखते और फुरसत के वक्त उसे बजाते। अपने धधे के सिलसिले में वे गांव गाव जाते। कुछ लोगों का कहना है कि कूली गाव में, और दूसरों के मुताबिक ग़ुमूक मे खातिमत नाम की एक लडकी गागर की मरम्मत कराने के लिए प्रबूतालिब के पास आई।

बहुत देर तक प्रबूतालिब उस गागर की मरम्मत करते रहे। कभी वे उसे एक तरफ रखकर इतमीनान से सिगरेट पीने लगते, तो कभी मुरली बजाना शुरु करते और कभी खातिमत को झूठे-सच्चे किस्से-कहानिया सुनाने लगते।

खातिमत उससे जल्दी करने को कहती हुई चिल्लाई–

"तुम अपनी सिगरेट ही कुछ कम लम्बी लपेटो!"

"अरे, यह तुम क्या कह रही हो, मेरी प्यारी खातिमत। अब म गज भर लम्बी सिगरेट बनाऊगा ताकि वह और ज्यादा देर तक जलती रहे।"

आखिर लडकी बिल्कुल ही आपे से बाहर हो गयी और प्रबूतालिब को मजबूर होकर गागर उसे लौटानी पडी। गागर ऐसे चमचम करती थी माना नयी हो। इतनी अधिक कोशिश से प्रबूतालिब ने उसकी मरम्मत की थी। मगर लडकी ने जसे ही उसमे पानी भरा कि वह चूने लगी। गुस्से से भुनभुनाती, बडी मुश्किल से अपने दुख के आसुओ को रोकती हुई वह फिर से प्रबूतालिब के पास आई।

"इतनी देर तक तुमने गागर की मरम्मत की और वह पहले से भी ज्यादा चूती है।"

"अल्लाह करे कि दिलेर और खूबसूरत लडके हर दिन तुम्हारी गागर पर कक्कड फेंकें! तुम नाराज क्या हो रही हो, खातिमत, मने तो जान-बूझकर उसमें सूराख छोड दिया था ताकि तुम फिर से मेरे पास आओ और म तुम्हें देख सकू।"

"अच्छा हो कि लड़के मेरी गागर पर नहीं, तुम्हारे सिर पर ढ़ड़ फेंक!" खातिमत चिल्लायी और फिर कभी अबूतालिब के पास नहीं आई।

अबूतालिब को उसकी बड़ी याद आती। खातिमत के प्रति उनका प्यार बढ़ता ही चला गया। प्यार जितना बढ़ा, याद उतनी ही ज्यादा सताने लगी। इस तरह उस लड़की की याद मे घुलते हुए अबूतालिब ने एक गीत रचा, जिसमे उसने खातिमत और उसके प्रति अपने प्यार को अभिव्यक्ति दी। इसके बाद उन्होंने दूसरा, फिर दसवां, फिर बीसवा गीत रचा और इस तरह वे टीनगर की जगह जाने-माने कवि बन गये।

इसी बीच खातिमत ने हाजी नाम के एक आदमी से शादी कर ली। कुछ अर्से बाद उसे तलाक देकर किसी मूसा की बीवी बन गयी।

एक दिन ख्याति लब्ध कवि अबूतालिब बाजार मे से जा रहे थे, तो किसी ने उन्हें आवाज दी–

"ए अबूतालिब, गागर की मरम्मत नहीं कर दोगे?"

कवि ने मुड़कर देखा तो बूढ़ी, झुकी हुई और बीमार खातिमत को अपने सामने पाया।

"शायद अब तुम्हारा दिमाग आसमान पर जा चढ़ा है, अबूतालिब! ऐसा तो होना ही था! अब तुम सर्वोच्च सोवियत के सदस्य हो, तमगा लगाये हो। लगता है कि अपना टीनगरी का धधा भूल गये हो। पर अगर मामले की गहराई मे जाया जाये, तो मने ही तुम्हें कवि बनाया है, अबूतालिब। उस वक्त अगर म मरम्मत के लिए गागर तुम्हारे पास न लाती, तो तुम अभी तक उसी तरह बाजार मे बठे हुए टीनगरी करते होते।"

"ओ खातिमत, अगर तुममे सचमुच ऐसी ताक्त है, अगर तुम सचमच ही लोगो को कवि बना सकती हो, तो तुमने अपने पहले पति मिलीशियामन हाजी को क्यो नहीं कवि बना दिया? और हा, तुम्हारे दूसरे पति मूसा के गीत भी अब तक सुनने को नहीं मिले "

अबूतालिब तो चले भी गये, मगर खातिमत यह न समझ पाते हुए कि क्या जवाब दे, जहा की तहा मुह बाये खडी थी। बारिश की बूदों से ही वह सम्भली।

तो इस तरह अगर कोई खुद ही शायर नहीं बनता, तो किसी भी दूसरे आदमी मे उसे शायर बनाने की ताक़त नहीं है।

पिता जी ने यह बात सुनायी कि जब म अपनी पहली कुछ कवितायें

रच चुका था, तो पिता जी के एक पुराने मित्र, दागिस्तान के एक प्रसिद्ध और सम्मानित व्यक्ति ने उनसे कहा—

"बहुत अच्छा रहे कि रसूल अब किसी को जी-जान से प्यार करने लगे। इससे कोई फर्क नहीं पड़ेगा कि अपने प्यार से उसे खुशी मिलेगी या ग़म, उसमे उसे कामयाबी होगी या नाकामयाबी। शायद यह तो ज्यादा अच्छा ही होगा कि दूसरी तरफ से उसे प्यार न मिले, कि प्यार उसके लिए पीड़ा और वेदना ही लेकर आये। तब वह एकदम बड़ा कवि बन जायेगा।"

मेरे पिता जी के दोस्त ने तो ऐसी सुंदर किशोरी भी खोज ली, जिसे मुझे बदक़िस्मत आदमी, मगर बड़ा कवि बनाना था।

मेरे पिता जी ने अपने दोस्त को यह जवाब दिया—

"देखो तो दुनिया मे कितने ही लोग है प्यार करनेवाले, पर क्या उनमे से हर कोई कवि है? दिल से प्यार करने के लिए भी प्रतिभा की जरूरत होती है। प्रतिभा को प्यार की जितनी जरूरत है, शायद प्यार को प्रतिभा की उससे कहीं अधिक आवश्यकता है। इसमे शक नहीं कि प्यार से प्रतिभा पनपती है, मगर वह उसकी जगह नहीं ले सकता। प्रेम के प्रतिकूल भावना यानी घृणा के बारे मे भी मै यही कह सकता हू।"

"मगर मिसाल के लिए प्यार के गायक कवि महमूद को लिया जा सकता है "

"तुम सही कहते हो। कवि के रूप में हम जैसे महमूद को जानते है, वह अपनी प्रेयसी की बदौलत ही बहुत हद तक वसा बना। मगर मेरा ख्याल है कि उसकी प्रेयसी का अगर इस दुनिया मे अस्तित्व भी न होता, तो भी महमूद बड़ा कवि बनता। उसकी बेचैन और अलकारी भावनायें उसी तरह अपना भाग खोज लेतीं जैसे घास की कोमल-सी पत्ती नम, बोझिल और अंधेरी मिट्टी मे से सूरज की ओर अपना रास्ता बना लेती है। अरे, कभी-कभी तो वह पत्थर के नीचे से भी बाहर निकल आती है।

हा, यह आसानी से माना जा सकता है कि जिस तरह आग सूखी लकड़ियों से भड़कती है, उसी तरह प्रतिभा के पनपने के लिए प्रबल मानवीय भावनायें—प्यार और घृणा—आवश्यक होती है, कि खिली मुस्कान या सलोने आंसुओं से ही कविता जन्म लेती है। मगर मै आपके सामने दो उदाहरण प्रस्तुत करना चाहता हू।

उस मां के दुःख, उस मां की व्यथा से अधिक तीव्र व्यथा किसकी हो सकती है, जिसके बेटे की मृत्यु हो जाती है? बेटे को दफनाने की तैयारी होने लगती है, लोग जमा हो जाते हैं। मगर मां चुपचाप बस रोती ही जाती है, वह शब्दों में, ऐसे शब्दों में अपना दुःख शोक व्यक्त नहीं कर पाती कि सभी उसी तरह रोने लगें जैसे वह स्वयं रो रही है।

इसी समय विलाप करने की कला में दक्ष नारियां आती हैं। उनकी आंखों में आंसू नहीं होते, क्योंकि उनका अपना नहीं, पराया दुःख होता है। मगर जैसे ही वे अपनी भयानक कला का प्रदर्शन करने लगती हैं, वैसे ही आस-पास सभी सिसकने लगते हैं।

मैंने इस कला को भयानक कला कहा है। वह वास्तव में ही बड़ी निर्मम और भयानक है। इसलाम में इसीलिए तो यह कहा गया है कि दूसरी दुनिया में विलाप करनेवालियों को ढोंगियों, पाखंडियों और चुगलखोरों की तरह ही लगातार कष्ट दिये जाते हैं। मगर वह तो कला ही ऐसी है, जिसका काम लोगों को रुलाना ही है।

अब इसके उलट उदाहरण लीजिये। ऐसे मां-बाप से ज्यादा सुखी कौन हो सकता है, जिनका बेटा हृष्ट-पुष्ट और जवान मर्द हो गया है तथा अब शादी करना चाहता है? शादी तो हंसी-खुशी का जश्न होती है। शादी के मौके पर लोग नाचते और गाते हैं। जाहिर है कि दूल्हे के माता पिता ही सबसे ज्यादा खुश होते हैं। मगर क्या सभी माता पिता शब्दों में, गीत में, ऐसे गीत में अपनी खुशी जाहिर कर सकते हैं कि वहां उपस्थित सभी लोग चहक हो उठें और उनके लिए शादी की यह परायी खुशी अपनी खुशी बन जाये?

नहीं, वे ऐसा नहीं कर पाते। इसीलिए वे पहले से ही गांवों में जाकर अच्छे गायकों को आमन्त्रित कर आते हैं। गायक आ जाते हैं। एक दिन पहले वे किसी दूसरे की शादी में गाते रहे थे और अगले दिन किसी अन्य की शादी में गायेंगे। उन्हें इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता। किन्तु उनकी प्रतिभा से लोग रंग में आ जाते हैं और उन्हें सच्ची खुशी मिलती है।

तो शायद प्रतिभा जीवन के लम्बे अनुभव से पनपती है? और कला में प्रतिभा का व्यक्त होना विस्तृत ज्ञान, कठिन भाग्यों तथा महान कार्यों का परिणाम है?

पर यदि ऐसा होता, तो क्या चौदह वर्षीय और सो भी अंधा अवार लड़का अपने पंदूर-वादन से अवार गांवों के लोगों को आश्चर्यचकित और मन्त्र-मुग्ध कर सकता था?

मुहम्मद रजबोव नाम के एक अन्य किशोर ने, जो बचपन से ही चारपाई थामे हुए है, मां के बारे में एक ऐसा गीत रचा है, जिसे शायद ही कोई अवार न जानता और न गाता हो। इस गीत को स्वरबद्ध किया अहमद रसूरमौलोव ने, जिनकी दोनों टांगों को लक्वा मार गया है। उन्हीं के बारे में मैंने ये पंक्तियां लिखी थीं—

तेरी मंडोलिन में केवल आठ तार
किन्तु धुनें हैं आठ हज़ार

प्रतिभाशाली अन्धा आंखोंवाले प्रतिभाहीन व्यक्ति से कहीं ज्यादा देखता है। किसी ने यह भी कहा है कि बुद्धिमान अपने कमरे में बैठा हुआ ही सारी दुनिया का चक्कर लगानेवाले मूर्ख की तुलना में कहीं कुछ ज्यादा देख सकता है।

इतना ही नहीं, अंधा मुहम्मद बाजार में मांगे हुए भीख के पैसों की गिनती करते समय भी कभी ग़लती नहीं करता था।

नोटबुक से। अगर सिर्फ नजर में ही प्रतिभा का रहस्य छिपा है, तो लेजगीन कवि कोचखियूरस्की कैसे उसके बाद भी काव्य रचना करता रहा, जब खान ने उसकी दोनों आंखें निकलवा दी थीं? अगर धन में ही प्रतिभा शक्ति निहित है, तो ग़रीब और यतीम लेजगीन कवि यतीम आमीन कैसे विख्यात हो गया? अगर शिक्षा ही में प्रतिभा शक्ति छिपी है, तो सुलेमान स्ताल्स्की, जो अपना नाम तक नहीं लिख सकता था और हस्ताक्षर की जगह स्याही में अंगूठा भिगोकर लगाता था, "बीसवीं शताब्दी का होमर" कैसे बन गया? अगर बहुत पढ़ने लिखने और पांडित्य में ही प्रतिभा शक्ति है, तो क्यों इतने पढ़े लिखे और विद्वान लोगों से मेरा वास्ता पड़ा है, जो ढंग की एक पंक्ति भी नहीं लिख सकते थे?

पहले पहाड़ों में बहुत ही दिलचस्प प्रतियोगितायें आयोजित की जाती थीं। एक तरफ होते थे शिक्षित, अवार भाषा में लिख पढ़ सकनेवाले मुतअल्लिम (विद्वान) और दूसरी तरफ अनपढ़, अपने धंधे के सिवा और कुछ भी न जाननेवाले चरवाहे। इन दोनों पक्षों के बीच शेरो शायरी का

मुकाबला होता था। इस मुकाबले मे अक्सर चरवाहे ही जीतते थे। हरी भरी डालो पर हवा की भांति स्वच्छन्द-स्वतन्त्र रूप से उडनेवाले गीत सुशिक्षित लोगो की नपी-तुली आवाज पर हावी हो जाते थे, उनपर अपनी जीत का झण्डा गाड देते थे।

मगर इन दोनों को ही वे कवि जीत जाते थे, जो एकसाथ मुतअल्लिम और चरवाहे होते थे। ऐसी प्रतियोगिता मे अगर महमूद या मेरे पिता हमजात हिस्सा लेते, तो वे दूसरे कवियो के साथ नहीं, बल्कि आपस में मुकाबला करते। दूसरे कवि बहुत पीछे रह जाते।

शायद अक्ल ही प्रतिमा की शक्ति का आधार है? मगर मास्को और दुनिया के अनेक देशों मे बहुत ही बुद्धिमान लोगों से मेरी भेंट हो चुकी है। अगर उनकी अक्ल अचानक कविताओं या कहानियो या उपन्यासो का रूप ले लेती, तो कला की अमूल्य रचनायें हमारे सामने आ जातीं। मगर न जाने क्यो, उनके बुद्धिमत्तापूर्ण विचार कागज पर नहीं उतर पाते, हवा मे बिखरकर रह जाते ह या उनके साथ ही कब्रो मे चले जाते ह।

तो शायद प्रतिमा की शक्ति अत्यधिक श्रम मे, एडी चोटी का पसीना एक कर देने मे निहित है? बहुत बार मुझे यह सुनने को मिला है कि प्रतिभा नाम की तो कोई चीज है ही नहीं, कि यह तो केवल कठोर श्रम से ही सामने आ सकती है। मगर जहा तक मेरा सम्बन्ध है, शाखा पर मजे से बठी बुलबुल का तराना मुझे भारी बोझ ले जानेवाले गधे के रैंगने से कहीं ज्यादा अच्छा लगता है।

छकडे को खींचनेवाला नहीं, बल्कि उसपर सवारी करनेवाला ही गाने गाता है।

ऐ मेरे अल्लाह, कितनी बेमेल बाते ह इस दुनिया मे! अगर गीत छकडे पर बठे इन्सान की काहिली का नतीजा ह, तो शायद सारी कला ही काहिली और फुरसत, माली बफिक्री और सभी तरह की निश्चिन्तता का परिणाम है?

मगर क्या गरीबो के झोपडों मे जन्म लेनेवाले गीत अमीरो के महलो में नहीं गाये जाते? खानो और अमीरों के बारे मे गरीबो ने ही तो सारे किस्से गढ़े ह। शामखाल ने इरचे गाजाख को साइबेरिया निर्वासित कर दिया। इरचे गाजाख वहा जाकर भी कवितायें रचता रहा। इरचे गाजाख की कविताओं से ही लोग अब कुमीक शामखाल के बारे मे जानते ह।

जाजिया के जवान राजकुमार दावीद गुरामिश्वीली को पहाडी लोग उडा ले गये। उन्होंने ऊनसूकूल मे एक गढ़े मे ले जाकर उसे डाल दिया। नम गढ़े मे बठा, अपने नीलाकाशवाले सुन्दर जाजिया के लिए तडपता हुआ राजकुमार कविता रचने लगा। इस सिलसिले मे कुछ हद तक यह कहा जा सकता है कि पहाडी लोगो ने राजकुमार गुरामिश्वीली को कवि बना दिया।

खूजह के खान की बेटी एशात को एक जवान और सुन्दर चरवाहे से प्यार हो गया था। पिता को जब यह मालूम हुआ, तो उसने बेटी को घर से निकाल दिया। जाडे की ठण्डी रात थी। भयानक ठण्ड, घुटनो तक बर्फ और तन चीरती हवा मे हल्का सा फ्राक पहने ऐशात ने अपना पहला गीत रचा था।

पर यदि ऐसा है, तो शायद इन्सानी कमजोरी और गरीबी मे ही प्रतिभा की सारी शक्ति छिपी है? शायद दुर्भाग्य और दुख मुसीबत से ही सवश्रेष्ठ गीतो का जन्म होता है? कविता, तुम कौन हो और तुम्हें क्या चाहिए? बातीराई के पास तुम तब आइ, जब वह बीमार और बूढा था और भूखे पेट ठण्डे और बुझे हुए चूल्हे के पास बठा था। महमूद के पास तुम तब आईं, जब वह कारपेथियन्स की खन्दको मे ठिठुर रहा था और उसकी वह प्रेयसी, जो उसे सूरज, पृथ्वी और जीवन से भी ज्यादा प्यारी थी, किसी दूसरे की बीवी बन गयी थी। तुम अबूतालिब के पास तब आइ, जब वह खुरजी और लाठी लिये गाव गाव फिरा करता था और जब उसके दिल की रानी खातिमत ने उसे ठुकराकर एक मिलीशियामन से शादी कर ली थी। तुम अलदरिलाव के पास तब आइ, जब उसने अपने प्यारों के हाथ से जहर का प्याला लिया। सगदिल जदिनायब ने धागो से अखील-मारीन का मुह सी दिया था और तभी मारीन ने अपना सबसे अच्छा गीत रचा था। इस गीत ने बाक़ी सारे जीवन के लिए नायब का चन और उसकी नींद हर ली थी।

प्रतिभा, कहो तो किस चीज मे तुम्हारी शक्ति निहित है? कौन हो तुम–आत्मा की आवाज, प्रतिष्ठा, साहस या शायद डर? कायर भी रात के वक्त अपनी मंजिल तय करता हुआ गाता है और इस तरह साहस बटोरता है।

तुम सौभाग्य हो या दुर्भाग्य, पुरस्कार हो या दण्ड? क्या तुम वह

सुन्दरता हो जिसके कारण लोग कम्पित होते हैं या वह बदना हो, जिसने सुन्दरता जन्म लेती है? या शुभ समय और घटनाचक्र की सन्तान हो? पत्थरों के आपस में टकराने से चिनगारियाँ पैदा होती हैं। युद्ध से पृथ्वी पर लोग नहीं बढ़ते, मगर उससे वीरों की संख्या बढ़ जाती है।

मुझे मालूम नहीं कि प्रतिभा किसे कहते हैं, और उसी तरह जैसे मैं यह नहीं बता सकता कि कविता क्या होती है। मगर कभी-कभी या तो घर जाते समय, या किसी पराये जगह पर, या फिर सोते वक्त (मानो मेरे नमदे के लबादे का पल्ला उठाते हुए) या फिर जब मैं हरी-हरी घास पर कदम रखता हूँ (मानो सजीव हरियाली में से मेरे भीतर घुसकर मेरे रक्त में घुल मिल जाती है), या फिर खाने के समय, या फिर संगीत सुनते वक्त, तो परिवार के लोगों के बीच बैठे हुए या फिर हो-हल्ला मचानेवाले दोस्तों के साथ गप शप के समय, या फिर उस वक्त जब मैं किसी बच्चे को गोद में उठाकर मानो उसे उसके लम्बे जीवन-पथ के लिए आशीर्वाद देता हूँ, या फिर उस समय जब मैं अपने किसी दोस्त को उसकी आखिरी मंजिल पर पहुंचाने के लिए उसके जनाजे को कन्धा देता हूँ, या फिर जिस वक्त मैं अपनी प्रियतमा को ध्यान से देखता हूँ—तो उस समय मुझे किसी दुर्लभ, अद्भुत, रहस्यपूर्ण और शक्तिशाली चीज़ की अनुभूति होती है। वह कभी तो खुशी से छलकती होती है, तो कभी दुख में डूबी हुई, मगर हमेशा ही वह मुझे कुछ करने को प्रेरित करती है, हमेशा ही बोलने को विवश करती है। वह बिन बुलाये और अनुमति के बिना ही आती है।

वह आती है और उसके पीछे ही मुझे लम्बा चेर्केसी कोट पहने तथा हाथ में पन्दूर लिये प्रेम-दीवाना महमूद, जो अपने गीतों में पूरी तरह अपना दुख-दर्द नहीं उड़ेल पाया, उदासी भरी नाजुक मुस्कानवाले मेरे पिता जी, हाथों में जहर का प्याला लिये अलदरिलाव, संगदिल नायब द्वारा सिये गये रक्त रंजित होंठोंवाली मारीन आदि आते जान पड़ते हैं और उनके पीछे, कहीं बहुत दूरी पर साहित्यिक महारथियों—दाते, तोलस्तोय, शिलर, ब्लोक, गेटे, बल्जाक, दोस्तोयेव्स्की की झलक-सी मिलती है। कभी कभी मुझे ऐसा लगता है कि किरण से छिन्न भिन्न हुए कुहासे में से स्वयं भगवान का रूप झिलमिलाता है।

"क्या हो तुम?" मैं इस चीज़ से पूछता हूँ।

"मैं तुम्हारी प्रतिभा हूँ, तुम्हारी कविता हूँ।"

"कहां से आई हो तुम?"

"मै तो हर जगह पर हूं।"

"क्या तुम्हारी मेरी ही जितनी उम्र है?"

"ओह नहीं, मेरी उम्र एक क्षण भी है और हजारों शताब्दियां भी। मुझमे बच्चे का भोलापन है, सिरफिरे नौजवान का जनून है और बुजुर्ग की समझ-बूझ है। मेरी कोई उम्र नहीं। मै वह अलाव हूं, जो कभी नहीं बुझ सकता। मै वह गीत हूं, जिसे कभी कोई पूरी तरह से नहीं गा सकता। मै ऐसी उड़ान हूं, जो किसी के बस की बात नहीं। मै तुमसे बहुत दूर हूं और खुद तुममे हूं। मुझे अपने भीतर सहेजना प्रसन्नता है, परमानन्द है और साथ ही भारी व्यथा और पीड़ा है। मुझसे अधिक सुखद और अधिक दुखद कुछ भी नहीं।

"अगर मै हूं, तो वायलिन के तारों के कम्पन से ठण्डी चट्टानें टुकड़े टुकड़े हो जायेंगी। अगर मै हूं, तो जुरना-वादन से खड्डों मे पहाड़ी बकरे नाचने लगेंगे। अगर मै हूं, तो हत्यारे के हाथ से खंजर गिर जायेगा और प्रेमी चुम्बनों मे खो जायेंगे।

"आनदी गांव की पोती का जब बुरका उतारा गया, तो मै वहां थी। मरियम को जब घोड़े पर डालकर भगा ले जाया गया था, तो मै वहां थी। जान आफ आर्क ने जब म्यान से तलवार निकालकर अपने द्वारा प्रेरित सेनाओं को आगे बढ़ने के लिए ललकारा था, तो मै वहां थी। जब आदमी ने पंख बनाकर छज्जे से छलांग लगा दी थी, तो मै वहां थी। जब मेगलन या कोलम्बस ने अपने जहाजों के पाल ऊपर उठाये थे, तो मै वहां थी। जब 'सिसतीन मादोना' का चित्र बनाया जा रहा था, तो मै वहां थी।

"सभी युग और सारी पृथ्वी मेरा कर्म क्षेत्र है। विभिन्न महाद्वीप और राज्य हैं, पार्टियां और सरकारें हैं, वर्ग और जातियां हैं। मगर इंसान भी हैं। इंसानों के पास मस्तिष्क और आत्मायें हैं। वे किसी भी महाद्वीप मे क्यों न हों, प्यार और घृणा करते हैं, उनमे साहस और भय है, सज्जनता और दुष्टता है, आत्मत्याग और झूठ है, वे महात्मा हैं और चुगलखोर भी। लोगों का मस्तिष्क और आत्मा—ये हैं मेरी रंगभूमि, मेरी विजय-पराजय के क्षेत्र, मेरी सिद्धि और उपलब्धि।"

"तो मुझसे सच-सच कह दो कि मै किस लायक हूं? क्या मै उस बर्फ जैसा तो नहीं हूं, जो अगले दिन पिघल जायेगी, उस गागर मे तो

पानी डालने की कोशिश नहीं कर रहा हू, जिसके तल म सूराख है? तुम्हारी कभी न बुझनेवाली आग की एक चिगारी तो मेरी आत्मा म आ गिरी है या नहीं, तुम्हारी उत्तेजित और मस्त कर देनेवाली सुरा की एक बूद तो मेरे हाठो पर आ गिरी है या नहीं?"

मेरी आखो से हर्ष विषाद के आसू बह रहे ह। मगर कुछ दूसरे आसू भी ह, जो मेरी आखों की गहराई मे छिपे हुए ह, ठीक उसी तरह जसे शिकारी की पद चाप सुनकर डरपोक पक्षी छिप जाता है। मगर इन छिपे

हुए आसुओ मे भी एक प्यार का है, दूसरा दुख का, एक दुर्भाग्य का है, दूसरा सौभाग्य का। मेरे सिर पर बाल भी दो रग के ह—काले और सफेद। मेरी एक टाग जवानी मे है और दूसरी बुढापे मे। बुढापा और जवानी हमेशा आपस मे जूझते रहते ह और उनकी रग भूमि है मेरी आत्मा।

प्यारा मुझे चिनार तन दो बडे-बड
एक सूखता मगर दूसरा, पत्ता पर इतराता
प्यारा मुझ उकाव पख दा बडे-बडे
गिरता जाय एक दूसरा नभ म शान दिखाता।

टीस रहे दा घाव वक्ष म भी मरे
रिसे एक तो मगर दूसरा प्रतिदिन भरता जाता
एसे ही होता है, आती खुशी कभी
उसे हटाकर एक तरफ दुख फिर से वापस आता।

जीवन की सीमायें ह, वह छोटा है और कल्पनायें ह असीम। खुद म अभी सडक पर चला जा रहा हू, मगर कल्पना घर पर पहुच चुकी है। खुद म प्रमिका के घर जा रहा हू, मगर कल्पना उसकी बाहों मे भी पहुच चुकी है। खुद म इस वक्त सांस ले रहा हू, मगर कल्पना कई साल आगे पहुच जाती है। वह उन सीमाओं से भी दूर पहुच जाती है, जहा जीवन अधेरे मे जाकर खत्म हो जाता है। कल्पना अपनी सदियो की उडान भरती है।

अपनी कल्पनाओ म म जिन खेता को जोतता हू वे उनकी तुलना मे कहीं अधिक विस्तृत ह जिन्हें म वास्तव मे जोतता हू। प्रतिभा, तुम

किसकी सेवा करोगी, मेरी या मुझसे बहुत दूर उड़ जानेवाली मेरी कल्पनाओं को?

हां, तुम कभी न बुझनेवाली आग हो। तुम वह गीत हो, जिसे कोई भी अन्त तक नहीं गा सकता। तुम वह उड़ान हो, जो किसी के बस की बात नहीं। मगर तुम्हारे चिरन्तन गीत में क्या मैं अपनी एक धुन, अवार धुन जोड़ सकता हूं? सम्भव है कि तब सारा गीत ही अधिक सुन्दर हो जाये?

क्या मैं तुम्हारी अमर ज्वाला से ली गयी एक चिंगारी से दागिस्तान के शिखरों पर छोटी-सी आग जला सकता हूं? क्या मैं तुम्हारी अनन्त और अन्तहीन उड़ान को थोड़ा-सा, बेशक एक चट्टान से दूसरी तक ही, बढ़ा सकता हूं?

मेरा गांव है—त्सादा! इसका अर्थ है—आग! एक बार किसी दूसरे गांव के एक आदमी ने मुझसे पूछा—

"कहां के रहनेवाले हो तुम, नौजवान?"

"त्सादा का।"

वह बोला—

"पहले अपनी कुछ कवितायें सुनाओ और तब मैं तुम्हें यह बताऊंगा कि उनमें आग है या ठण्डी राख।'

सन्देह मुझपर हावी हो जाते हैं। क्या मैं उस वक्त तो अपना नमदे का लबादा नहीं पहन रहा हूं, जब ठण्डे-बुरे मौसम का अन्त हो चुका है और छिन्न भिन्न होते बादलों के पीछे से सूरज फिर झांकने लगा है? क्या मैं उस वक्त तो बाड़े के दरवाजे को ताला नहीं लगा रहा हूं, जब चोर बैल को भगा भी ले जा चुके हैं? क्या वही कुछ नहीं सुना रहा हूं, जिसे सभी अनेक बार सुन चुके हैं? क्या उन लोगों को मैं दावत पर नहीं बुला रहा हूं, जो अभी अभी किसी अच्छे मेज़बान के यहां से खूब खा-पीकर निकले हैं? मुझे अपनी किताब लिखनी भी चाहिए या नहीं?

"अगर लिखे बिना रह सकते हो, तो न लिखो।"

"क्या मैं लिखे बिना रह सकता हूं? रोगी को जब बहुत पीड़ा होती है, तो क्या वह कराहे बिना रह सकता है? क्या कोई सुखी आदमी मुस्कराये बिना रह सकता है? क्या बुलबुल चांदनी रात की निस्तब्धता में गाये बिना रह सकती है? जब नम और गर्म मिट्टी में बीज फूट चुका है, तो

घास भड़े बिना कसे रह सकती है? बसन्त का सूरज जब कलियों को गर्माता है, तो फूल कसे खिले बिना रह सकते है? जब बर्फ पिघल जाती है और पत्थरो से टकराता तथा शोर मचाता हुआ पानी नीचे बहने लगता है, तो पहाड़ी नदियां सागर की ओर बह बिना कसे रह सकती है? टहनियां अगर सूख चुकी हों और उनमे शोला भड़क चुका हो, तो अलाव कसे जले बिना रह सकता है?"

बचपन मे ही मुझे अलावो से प्यार हो गया था। म रातों को चरवाहों के यहां, नदी-तट पर, चट्टान के दामन मे, इद गिद के पहाड़ों की चोटियों या घरेलू चूल्हा मे आग जलते देखा करता था। म जानता हू कि आग जलाना तो आधा काम है और बुरे मौसमवाली लम्बी रात में उस आग को जलाये रखना कहीं अधिक कठिन होता है।

म अनुभव करता हू कि मेरे दिल मे आग है। लेकिन म क्या करू, किस तरह का व्यवहार करू कि यह आग ठण्डी न हो जाये, किसी को गर्माये बिना, अधेरे मे किसी का पथ रोशन किये बिना बुझ न जाये? अपनी प्रतिभा को सुरक्षित रखने और सुदृढ बनाने के लिए म क्या करू'

पिता जी के सस्मरण से। एक पहाड़ी आदमी ने पिता जी के पास आकर कहा—

"म कोशिश करके देख चुका हू और मुझे इस बात का विश्वास हो गया है कि म तुक मिला सकता हू। मगर मुझे यह मालूम नहीं कि वास्तविक कविता रचने के लिए क्या करना चाहिए।"

पिता जी ने जवाब दिया—

"वायलिन के तारो को सुर मे करना ही काफी नहीं, उसे बजाना आना चाहिए। जमीन का होना ही काफी नहीं, उसे जोतना-बोना आना चाहिए।"

"कविता रचने के लिए म क्या करू?"

'क्या करू? काम मे जुट जाओ।"

काम

अगर किसी को काम हमारा लगे शहद जैसा
वह कूबाची म आ देखे सचमुच वह कैसा।

कूबाची की कला-वस्तु पर आलेख

म गुलाम हू अपनी इन कविताओ का श्रम करता रहता डटकर
हाड तोडता, कमर झुकाता रात दिवस, बहे पसीना माथे पर
फिर भी मेरी मालिक, मेरी कवितायें, मुझ से तुष्ट न हो पातीं,
बहुत रात को, बहुत देर से वे मुझको जब मन आता, दौडातीं।
म रिक्शा हू, मेरी दोनो बगलो से, बम भिडते है, टकराते,
जहा-तहा से मेरी त्वचा उधड जाती, ये धक्के दे, धकियाते।
पहिये, जिनसे जुता हुआ चिर तन मेरा भारी ही होते जाते।

यह घटना बहुत पहले घटी थी, मगर मुझे आज भी यह इतनी अच्छी तरह और इतनी साफ तौर पर याद है मानो कल ही घटी हो। म तो इसपर एक कविता भी रच चुका हू, मगर यहां दोहराये बिना नहीं रह सकता।

दागिस्तान के कवि हमज़ात का म बेटा, जिसे उस वक्त कोई नहीं जानता था, अपना गांव छोड़कर पहले मखचकला और फिर मास्को चला गया। साल बीते। मने साहित्य-संस्थान की पढ़ाई समाप्त की, कई कविता संग्रह निकाल दिये। एक सफलता के लिए मुझे स्तालिन पुरस्कार भी मिल गया। मने शादी की। थोड़े मे यह कि कवि रसूल हमज़ातोव बन गया। तभी मेरे दिल म फिर से अपने गांव जाने का ख्याल आया।

सारा सारा दिन मैं उन जगहों पर घूमता रहता, जहां कभी बचपन और किशोरावस्था में भागा फिरता रहा था। मैं चट्टानों और गुफाओं को देखता, लोगों से बातें करता, निझरों के गीत सुनता, कब्रिस्तान में चुपचाप बैठा रहता और फिर से खेतों में घूमने लगता।

स० रा० अमरीका में मैंने फोर्ड के कारखाने में वह जगह देखी, जहां गयी कारों की आजमाइश की जाती है। लेखक के लिए ऐसा परीक्षण स्थल वह होना चाहिए, जहां उसका जन्म हुआ है।

औरतें गेहूं के खेतों में निराई करके घर लौट रही थीं। वे थकी हारी और धूल से लथपथ थीं, पनी घास से उनके हाथों पर खरोंचें आ गयी थीं, उनमें चीरें पड़ गये थे। औरतें आराम करने के लिए सड़क किनारे बैठ गयीं। मैं उनके पास गया।

मालूम नहीं कि या तो मुझे देखकर वे मेरी चर्चा करने लगी थीं या पहले से ही मेरा जिक्र छिड़ा हुआ था, मगर अचानक मैंने मुट्ठी भर घास से माथे का पसीना पोंछनेवाली नारी को यह कहते सुना—

"अगर मुझसे कोई यह पूछे कि मैं सबसे अधिक क्या चाहती हूं, तो मेरा जवाब होगा— रसूल हमजातोव का बेफिक्र दिल और उसके जैसी मजे की जिन्दगी।"

"तुम क्या समझती हो कि रसूल के सीने में दिल की जगह पनीर का टुकड़ा है और वह कभी नहीं कसकता?" मेरी एक रिश्तेदार ने मेरा पक्ष लिया।

"पनीर का टुकड़ा तो चाहे न हो, मगर फिर भी उसे गेहूं के खेत की निराई नहीं करनी पड़ती। सामूहिक फार्म की घण्टी उसे काम पर नहीं बुलाती और दोपहर का खाना खाने की अनुमति नहीं देती। उसे यह मालूम नहीं कि श्रम दिवस किसे कहते हैं, कैसे उसके लिए काम किया जाता है और क्या मुआवज़ा मिलता है। मजे से अट शट, अल्लम गल्लम लिखता रहता है। उसे किस बात की चिन्ता हो सकती है? किसलिए उसका दिल टीस सकता है? इससे ज्यादा क्या मौज हो सकती है?'

ओ भली मानस! कैसे मैं तुम्हें अपने काम, अपने अविराम और कठिन श्रम के बारे में बताऊं?

उदास उदास सा मैं खेत से गांव की ओर चला गया। गांव के चौपाल में पके बालोंवाले बुजुर्ग ठण्डे पत्थरों को गर्मा रहे थे। बड़े इतमीनान से

वे आपस मे जमीन, भावी फसल, पहाडो, चरागाहों, बीमारियो और जडी-बूटिया तथा हमारे गाव के बीते दिनो की चर्चा कर रहे थे। म उनके पास गया, सलाम दुआ की और ठण्डे पत्थर पर बठ गया।

एक बुजुग के पास ताजा अखबार था, जिसमे मेरी कवितायें छपी हुई थीं। उन्हीं के बारे मे बातचीत होने लगी। घुडसवार को अपने घोडे की तारीफ से ख शी होती है। मुझे भी उम्मीद थी कि मेरे गाववासी अभी मेरी कविता की प्रशसा करेंगे। बात यह है कि मास्को और मखचकला मे म तारीफ सुनने का आदी-सा हो चला था। उस बुजुग ने, जिसके हाथ मे अखबार था, कहा—

"तुम्हारे पिता हमज़ात कविता रचते थे। तुम, हमज़ात के बेटे भी कविता लिखते हो। तुम काम कब करोगे? या तुम रोटी के टुकडे से कुछ अधिक भारी चीज उठाये बिना ही अपनी सारी जिन्दगी बिता देने का इरादा रखते हो?"

"कविता ही तो मेरा काम है," मने यथाशक्ति धीरज से जवाब दिया। बातचीत के एसा रुख ले लेने पर म सकते मे आ गया था।

"अगर कविता लिखना ही काम है, तो निठल्लापन किसे कहते ह? अगर गीत ही श्रम है, तो मौज और मनोरजन क्या है?"

"गीत गानेवालो के लिए वह सचमुच मनोरजन ह, मगर जो उन्हे रचते ह, उनके लिए वही काम है। नींद और आराम, साप्ताहिक और वार्षिक छुट्टियो के बिना काम। मेरे लिए कागज़ वही मानी रखता है, जो खेत तुम्हारे लिए। मेरे शब्द—मेरे दाने ह। मेरी कवितायें—मेरे अनाज की बालें ह।"

"हा, य सब तो बहुत सुन्दर शब्द ह। खेत मेरे घर की छत पर नहीं आ जाता। मुझे खेत मे काम करने जाना पडता है। मगर तुम तो कहीं भी क्यो न हो, चाह बिस्तर में हो, गीत अपने आप ही तुम्हारे पास आ जाता है। तुम्हारा हर गीत तो जसे तुम्हारा मेहमान होता है, जो तुम्हारे घर पर दस्तक देता है। इसका मतलब यह है कि हर गीत एक पव है। मगर हमारा खेत तो रोजमर्रा की आम जिन्दगी है।"

हमारे गाव के बुजुर्गों ने इस तरह या लगभग इस तरह अपने विचार प्रकट किये।

"मगर गीत ही तो मेरी जिन्दगी है।"

"इसका यह मतलब है कि तुम्हारी जिन्दगी तो स्थायी पव है। बात यह है कि गीत तो प्रतिभा का मामला है। जिसके पास प्रतिभा है, उसके लिए अच्छा गीत रचना बहुत आसान काम है। मगर जिसके पास उसकी कमी है, उसे श्रम करना पडता है। हा, इस सम्बन्ध मे श्रम से बहुत लाभ नहीं होता।"

"नहीं, आपकी बात सही नहीं है। जिसके पास कम प्रतिभा होती है वह कला को बच्चो का खेल समझता है। वही एक गीत से दूसरे गीत पर उडता फिरता है। जसा कि कहा जाता है, घास काटता है। बडी प्रतिभा के साथ-साथ उसके प्रति जिम्मेदारी भी आती है और वास्तविक प्रतिभावाला व्यक्ति अपनी कविताओ को बहुत कठिन और महत्त्वपूर्ण काम मानता है। गायी जानेवाली हर चीज गीत नहीं होती, सुनायी जानेवाली हर चीज कहानी नहीं होती।"

"तो बताओ कि तुम कसे काम करते हो और तुम्हारे धंधे मे क्या कठिनाइया होती ह?"

मेरे इद-गिद बुजुग हलवाहे बठे थे। म उन्हे अपने काम के बारे मे बताने लगा, मगर जल्दी ही यह समझ गया कि मेरे लिए बहुत ही साधारण बाता को, जिन्हे म बहुत ही अच्छी तरह समझता हू, दूसरों को समझाना मुश्किल है। म अटकने और बेचनी महसूस करने लगा और खामोश हो गया। बाजी बुजुर्गों के हाथ रही थी। म उन्हें यह नहीं समझा पाया कि कविता रचना क्या मुश्किल है और कुल मिलाकर कविता रचना काम ही क्या है।

तब से अब तक बहुत साल बीत चुके ह। मगर आज भी अगर कोई मुझसे यह पूछता कि मेरा काम क्या है, कि वह क्यो मुश्किल और दूसरे कामो से कसे भिन्न है, तो शायद म साफ तौर पर यह न समझा पाता।

मेरे काम की जगह कहां है? मेज पर, हां, काम की मेज पर। मगर सर के वक्त वह पहाडी पगडडी पर भी होती है, जब म अपनी कविता की कल्पना करता हू और शब्द तथा ध्वनिया मेरे पास आती ह, मगर म उन्हे ठुकराकर एक तरफ को फेंक देता हू। मेरे काम की जगह रेलगाडी भी है, जिसमें बठकर म किसी दूसरे देश को जाता हू। कारण कि इस वक्त भी मेरे दिमाग मे नयी कविता के विचार आ सकते ह। हवाई जहाज, ट्राम, लाल चौक, नदी-तट, जगल और किसी मन्त्री का स्वागत-कक्ष भी

मेरे काम की जगह हो सकती है। पृथ्वी पर हर जगह ही मेरा कार्य-स्थल, मेरा खेत है, जहां मैं रहता और हल चलाता हूं।

किस वक्त मैं काम करता हूं? सुबह को या शाम को? कितना बड़ा है मेरा कार्य दिवस? आठ घण्टे का या छः घण्टे का, बारह घण्टे का या इससे अधिक लम्बा है वह? पर यदि इससे बड़ा है, तो मैं क्या हड़ताल नहीं करता, आठ घण्टे के कार्य दिवस के लिए संघर्ष क्यों नहीं करता?

बात यह है कि जब से मुझे होश है, मैं हमेशा ही काम करता रहा हूं। खाने के वक्त और थियेटर में, बैठक में और शिकार के समय, चाय पीते और मातम मनाते हुए भी, मोटर में और शादी के मौके पर भी। यहां तक कि नींद में भी कविता की पंक्तियां, उपमायें और विचार तथा कभी-कभी तो पूरी की पूरी तैयार कवितायें दिखाई देती हैं। इसका मतलब यह है कि नींद में भी मेरा कार्य दिवस जारी रहता है। बहुत पहले ही हड़ताल कर देनी चाहिए थी मुझे!

मैं कैसे काम करता हूं? इस सवाल का जवाब देना सबसे ज्यादा मुश्किल है। कभी-कभी मुझे ऐसा लगता है कि मेरा काम दूसरे सभी लोगों के काम के समान है। कभी-कभी मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि वह बिल्कुल अनूठा है और दुनिया के लोग जितने भी काम कर रहे हैं, उनमें से किसी के साथ भी इसकी तुलना नहीं की जा सकती।

कभी-कभी मैं ऐसा महसूस करता हूं कि इर्द गिर्द सभी लोग काम करते हैं और मैं अकेला ही कुछ नहीं करता। कभी-कभी मुझे ऐसी अनुभूति होती है कि सिर्फ मैं ही काम करता हूं और मेरी तुलना में बाकी सभी निठल्ले हैं।

पक्षियों के बड़े मजे हैं! वे जिन्दगी भर वही गीत गाते रहते हैं, जो उनके मां बाप उन्हें सिखा देते हैं। नदी भी मौज करती है! हजारों सालों से वह एक ही धुन गाती चली जा रही है। मगर मुझे तो अपनी छोटी सी जिन्दगी में इतने गीत रचने हैं, जो बहुत-बहुत सालों तक काफी हों।

जमीन का छोटा-सा टुकड़ा जोतनेवाले पहले आदमी का काम शायद काफी मुश्किल रहा होगा। पहला गीत रचनेवाले का काम भी आसान नहीं रहा होगा।

यदि एक हजार आदमी जमीन जोत चुके हों, एक हजार एकवें के लिए यह काम अपेक्षाकृत आसान होगा। पर यदि एक हजार आदमी कवितायें

लिए चुके ह, तो एक हजार एक्वें क लिए यह और भी ज्यादा मुश्किल काम होगा।

हां, खतिहर, कुछ हद तक तो मेरा काम तुम्हारे काम जसा ही है। इसलिए कृपया, मुझे ऐसा निठल्ला नहीं समझो, जिसका जीवन स्थायी रूप से मनोरजन और मौज बहार ही है। लम्बी और उनींदी रातो मे म तुम्हारी ही तरह अपने खेत के बारे मे सोचता रहता ह। तुम अपने खेत के लिए बढ़िया बीज चुनते हो और म कुल शब्दो मे से सबसे अच्छे शब्द चुनता ह। हजारो मे से मुझ केवल एक ही चुनना होता है। मेरी भी अपनी जोत है, उसमे भी बीज फूटते ह, जिनसे मुझ खुशी होती है, मुझ भी अपने श्रम के फल मिलते ह। म भी अपने ढग की बोवाई निराई करता ह, क्योंकि मेरे खत मे भी काटे और घास पात ह। मशीन की मदद से भी अच्छे-बुरे बीजो को अलग करना मुश्किल होता है। उपयोगी, हितकर और अच्छे शब्दो को गन्दे मन्दे शब्दो से अलग करना और भी ज्यादा मुश्किल होता है।

किसान, तुम ओलो, पाले और सूख से अपने खत की रक्षा करते हो। मेरे लिए एसे गीत रचना जरूरी है, जो अपने सबसे भयानक शत्रु यानी समय के भय से मुक्त हो, क्योंकि म ऐसे गीत रचना चाहता ह, जो सदियो तक जिन्दा रहें।

मुझे भी अपने ढग के हानिकारक जीव जन्तुओ -- कीडो मकोडो, टिड्डियों और चूहो -- से निपटना पडता है। वे मेरी फसल को कम कर सकते ह या बिल्कुल ही नष्ट कर सकते ह अथवा ऐसी बदमजा कर सकते ह कि लोग मेरे श्रम के फलो से मुह मोड लेगे।

इतना ही नहीं, तुम्हारे चूहो और धानीमूषो के मुकाबले मे मेरे खेत क फसल-नाशक चूहे कहीं बडे और भयानक ह, उनके विरुद्ध सघष करना कहीं अधिक कठिन और कभी-कभी तो बिल्कुल व्यथ होता है।

चूल्हा जलता छत के ऊपर टेढा मन्दा धुआ दिखे
फिर भी है यदि सध कहा पर छोटी सी भी उस घर म
तब तो हवा किसी भस मा अपना भारी सिर लेकर
घुस आयेगी भीतर झटपट बफ जमगी घर भर म।

मेरी कविता के संग भी तो, ऐसा ही कुछ होता है
उसकी सुधा का मै भी तो, मूल्य चुकाता हू भारी,
ढीले-ढाले शब्दों म तो हवा तुरत घुस आती है
और बर्फ-सी जम जाती है, कविता तब मरी मारी।

बाद मे मुझे अपने फल लोगो मे बाट देने होते ह। दागिस्तान और दूसरे देशों के लोगों को उन्हे चखना होता है, उनकी मिठास या कडवाहट, उनके विशेष स्वाद को जानना होता है। मेरे फल का स्वाद अन्य सभी फलो के स्वाद से भिन्न होना चाहिए।

मुझे याद है कि कैसे मेरे बचपन के दिनों मे पिता जी मुझे पूले बाधना सिखाते थे। जब म घुटना टेककर पूरे जोर से पूले को कसता था, तो पिता जी कहते थे—

"रसूल, ध्यान से। पूले का गला नहीं घोटो!"

अब, जब कभी कोई कविता नहीं बनती, मेरे बहुत धकेलने पर भी कोई पक्ति बाहर निकल आती है और म कविता को जैसे-तसे खत्म कर डालने के लिए एडी चोटी का जोर लगाता हू, तो ऐसे क्षणो मे मुझे अक्सर पिता जी की यह सीख याद आ जाती है—"रसूल, ध्यान से। पूले का गला नहीं घोंटो!"

खेतों में हर साल एक जसी फसलें नहीं होतीं। एक साल तो इतना अनाज हो जाता है कि बखार और एलीवेटर भी काफी नहीं होते और फिर ऐसा भी होता है कि तीन साल तक कुछ भी पदा नहीं होता। मेरा भी ऐसा ही हाल है। हमेशा एक ही तरह से काम नहीं कर पाता। वसे खाद और बीज तो म बढ़िया डालता हू, जुताई भी ढग से करता हू, मगर अनाज पदा नहीं होता। ऐसे वक्तो मे अनुवाद करना और अनाज कहीं आस्ट्रेलिया या कनाडा से खरीदना पडता है। जब मेरी काव्य दीप्ति मन्द पड जाती है और कवितायें मेरी आत्मा से निकलकर कागज पर नहीं आना चाहतीं, तब किसी भी तरह के रासायनिक पदार्थ मेरी मदद नहीं कर पाते।

मगर क्या किया जाये? अगर हर अभियान और शुरू किया गया हर काम सिरे ही चढ़ जाता, तो सभी सन्तुष्ट और खुश रहते। अगर जमीन हर साल भरपूर फसल देती, तो दुनिया मे कोई भी भूखा न रहता। अगर कागज पर लिखी हर चीज गीत होती, तो लोग कभी के साधारण भाषा

मे बातचीत करने के बजाय गाते ही रहते। मगर गीत रचना बहुत टेढ़ी खीर है।

मुझे दागिस्तान, जार्जिया, आर्मीनिया और बल्गारिया के शराब के कारखानो तथा पोल्जेन की बीयर फैक्टरियो मे भी जाने का मौका मिला है। मुझे लगता है कि कवियो और शराब बनानेवालो मे बहुत कुछ साझा है। दोनो की अपनी बारीकिया और रहस्य है। शराब की तरह कविता भी आत्मा मे उठनी चाहिए, उसे वहा ही पकना चाहिए। शराब की तरह अच्छी कविता मे भी आत्मा को खुश करनेवाला कोई रहस्यपूर्ण खुमार छिपा रहता है। इस दृष्टि से कविता और शराब एक दूसरी के बहुत निकट है।

कभी-कभी किसी पहाडी गाव मे, जहा दुकान है, शराब के पीपे लादे हुए ट्रक आती है। एक पीपा इस गाव मे, दूसरा उस गाव मे—बूयनाक्स्क से लाई गयी शराब को ड्राइवर इस तरह पहाडी गावो मे पहुचाते है।

ऐसी ट्रक को देखते ही नौजवान लोग ऐसा जाहिर करते हुए कि न तो उन्हें कोई उतावली है और न जल्दी, मगर वास्तव मे बेहद बेसब्र होते हुए, गाव के सभी कोनो से उस दुकान की ओर चल पड़ते है। वे पीपे को ऐसे घेर लेते है जैसे चरवाहे द्वारा रखे हुए नमक के डले को भेड़ें।

शराब को घरो मे डाला जाता है, सभी उसे चखने लगते है और तब सभी को भारी निराशा होती है। ऐसी आवाजें सुनने को मिलती है—

"यह भी कोई शराब है! यह तो पानी है!"

"नाले का मामूली पानी!"

"बेचनेवाले खुद ही पी ले ऐसी शराब!"

"मुझ पर क्यों बिगड रहे है?" विक्रेता विरोध करता है। 'आप लोगो ने तो देखा है कि पीपा ट्रक मे लाया गया है। आपके सामने ही नीचे उतारा गया है। आप लोगों ने उसे उतरवाने मे भी मदद की है। तो फिर मेरा क्या दोष है? जैसी शराब आयी है, वैसी ही बच रहा हूं। नहीं चाहते, तो नहीं खरीदिये!"

असल बात यह है कि शहर के गोदाम में ऐसे लोग है, जो हलक़े मे शराब भेजने के पहले पीपे मे से जितनी भी चाहते है, शराब निकाल लेते है और उसकी जगह शुद्ध जल डाल देते है। "हलक़ों में तो ऐसी शराब पाकर भी बहुत खुश होंगे।" हलके के गोदाम से गांवों को शराब रवाना

करने के पहले यहा के कमचारी भी यह किस्सा इसी तरह दोहराते ह। "गांवो के लिए तो ऐसी शराब भी चलेगी!" वे कहत ह। रास्ते म ड्राइवर और कुली तन गमनि तथा लम्बे सफर की ऊब मिटाने के लिए कई लीटर शराब निकाल लेते ह और किसी निझर या नदी से निमल जल डाल देते ह। तो इस तरह या तो पानी से खराब हुई शराब या शराब से खराब हुआ पानी बन जाता है।

कुछ कविताओ को पढ़ते हुए भी यह समझ मे नहीं आता कि उनमे कवित्व अधिक है या कोरी शब्द भरमार। काहिल कवि ही, जो मेहनत करने से घबराते ह, ऐसी कवितायें रचते ह। मगर उछल-कूद करनेवाली नदी शायद ही कभी सागर तक पहुच पाती है। आलसी यात्री शायद ही कभी मक्का तक पहुच पाता है। जब दो सवारा को एक ही घाडे पर जाना होता है, तो वे एक-दूसरे को सहारा देते ह। प्रतिभा और श्रम भी एक ही घोडे पर सवारी करत ह।

अवूतालिब कहा करते थे कि *प्रतिभा और श्रम का कविता मे ऐसे* घुल मिल जाना चाहिए जसे खजर और म्यान मिलकर एक हो जाते ह।

नोटबुक से। उन दिनो म घर के बजाय बाहर सडक पर ज्यादा वक्त बिताता था। म स्कूल मे पढ़ता था, और कविता रचने लगा था। मगर मुझमे कविता रचने, पढ़ने और घर पर तयार करने के लिए दिये गये स्कूली पाठों को पूरा करने का धीरज नहीं होता था। मेज के पास टिककर बठना तो म जानता ही नहीं था। बहुत जल्दी ही म बेचनी महसूस करने लगता, मेज पर से उठता और मौका मिलते ही बाहर सडक पर भाग जाता। अभी भी म न तो बहुत टिककर बठ सकता हू और न मुझमें बहुत धीरज ही है।

एक दिन पाठ तयार करने या कविता रचने के लिये मुझे बठाकर पिता जी थोडी देर को बाहर गये। दरवाजा बन्द हुआ ही था कि म झटपट मेज पर से उठा और अपने घर की छत पर जा पहुचा। मुझे वहा देखकर पिता जी ने मा को पुकारा और कहा—

"जरा मुझे वह रस्सा ला दो जो कील पर लटका हुआ है।"

"क्या जरूरत है तुम्हे उसकी?"

"म रसूल को कुर्सी के साथ बाधना चाहता हू, वरना वह कभी काम का आदमी नहीं बनेगा।" पिता जी ने बड़े इतमीनान से और कसकर मुझे

कुर्सी के साथ बाध दिया, धीरे से मेरे माथे पर चपत लगायी और कागज की तरफ इशारा करके बोले—

"भेजे मे जो कुछ है, यहा लिखो!"

काश कि हम लेखको को अब भी कोई जब-तब कुर्सी पर बाध देता!

मुमकिन है कि दिमाग तो काम करता हो, मगर यदि दिमाग काम करता है और हाथ कुछ नहीं करते, तो यह तो वसी ही बात होगी कि चक्की आटा पीसने के बजाय खाली ही घूमती जाये।

शानगिराई, उसके बेटे और पाच रूबलो का किस्सा।

कुछ अर्से पहले की बात है कि खूजह मे शानगिराई नाम का एक धनी और सवसम्मानित व्यक्ति रहता था। उसका इकलौता और इसीलिए बिगडा हुआ तथा सनकी बेटा था। पिता ने चाहा कि उसका बेटा गाव के अन्य लोगो की तरह काम करे और इस तरह सही अथ मे इसान बने। मगर बेटा काम करना नहीं चाहता था। पिता के दोस्त और रिश्तेदार उसे बिगाडते थे। कोई उसे घोडा भेंट कर देता, कोई चेर्केसी कोट, कोई पसे और कोई खजर।

एक बार शानगिराई बहुत सख्त बीमार हो गया। दवाइयो से उसे कोई फायदा न हुआ। सभी रिश्तेदार, दोस्त मित्र बीमार के पास जमा हुए।

'तुम अच्छे हो जाओ इसके लिए हम क्या करें?"

"म तो जानता हू कि कसे म भला चगा हो सकता हू। मगर तुम लोग मेरी इच्छा पूरी करने मे असमथ हो।"

"तुम अपनी इच्छा तो प्रकट करो। हम उसे पूरा करने के लिए कोई कसर न उठा रखेंगे।'

"अगर मेरा बेटा खुद कमाकर पाच रूबल लाये और मुझसे कहे 'पिता जी, इह ले लो, ये आपके ह,' तो म ठीक हो जाऊगा।"

दो दिन बाद बेटा अपने बाप के पास आया और पाच रूबल का नोट बढाते हुए बोला—

'पिता जी, ये रूबल ले लीजिये। गोईसुव खड्ड मे से तने बहाकर मने कमाये ह।"

पिता ने नोट की तरफ फिर बेटे की तरफ देखा और नोट को आग मे फेंक दिया। बेटा बुत बना खडा रह गया। उसके चेहरे का एसे रग उड गया मानो किसी ने तमाचा रसीद कर दिया हो।

वास्तव मे बीमार शानगिराई की इच्छा जानकर लडक की मदद करने के लिए वे पाच रूबल उसके चाचा ने दिये थे।

कुछ दिन बाद बेटा फिर से बाप के पास आया और पाच रूबल का नोट बढाते हुए बोला –

"मने गूनीब मे बन रही नयी सडक की तामीर मे हिस्सा लेकर इन्हें खुद कमाया है।"

पिता ने बेटे की तरफ, फिर नोट की तरफ देखा और उसे मोडकर खिडकी से बाहर फेंक दिया।

बेटा बुत बना खडा रहा। उसे ये रूबल होत्सातल मे रहनेवाले पिता के एक दोस्त ने दिये थे।

बेटा तीसरी बार पिता के पास आया और तीसरी बार उसने पाच रूबल का नोट पिता की तरफ बढ़ाया। पिता ने बेटे की तरफ देखे बिना ही नोट लिया और उसके दो टुकडे कर डाले। बेटा बाज की तरह नोट के उन दो टुकडो पर झपटा और उन्हे उठाकर जोडने लगा। उसने चिल्लाकर पिता से कहा –

"मने इसलिए पत्रोव्स्क मे घुडसालो की सफाई करके ये रूबल नहीं कमाये थे कि आप इन्हें मामूली कागज की तरह फाडकर फेंक दें। मेरे हाथो पर गट्टे पड गये ह।"

"हा, अब यह बात बिल्कुल साफ है कि तुमने खुद ही ये रूबल कमाये ह।'

शानगिराई खुश हो उठा, उसकी तबीयत सम्भलने लगी और जल्दी ही वह बिल्कुल स्वस्थ हो गया।

अपनी मेहनत से कमाई गयी दौलत का ही वास्तविक मूल्य होता है।

शायद कविता के बारे मे भी ऐसा ही कहा जा सकता है। अगर कविता रचने के लिए कवि को खुद कष्ट उठाना पडा है तो हर शब्द और हर कॉमा भी उसे प्यारा होगा। अगर उसने राह चलते पराये विचार इकट्ठे कर लिये ह, तो उनसे बढिया कविता नहीं बनेगी।

मरे घर के पास सुनार कई रहत
देख चुका हू कभी-कभी जा उनके घर
घिसकर तावा सोना तनिक कसौटी पर
आसानी स बतलाते उनका अतर।

मरे पाठक—मेरी तुम्ही कसौटी हो
तुम ही मुझको मरा सत्य दिखा पाते,
चालाकी स बुनी पक्तिया म मरी
खोटे-ताबे का तुम अन्तर दिखलाते।

अगर तुम यह चाहते हो कि मछली मजेदार हो, तो झील पर जाकर उसे खुद पकडो। उकाब हवा के रुख के विपरीत उडता है, मछली बहाव के प्रतिकूल तरती है। कवि भी प्रबल भावनाओं की ओर बढता हुआ ही, वे चाहे सुखद होने के बजाय दुखद हो, काव्य रचना करता है। एक बार अबूतालिब ने मुझे कुछ ऐसा ही क़िस्सा सुनाया था।

बालखारी के कुम्हारो, उनके मिट्टी के बर्तनो और शैतान गाहको का किस्सा। बालखारी के कुम्हारो ने मिट्टी से बनायी हुई अपनी चीजो को बडी-बडी टोकरियो मे रखा, उन्हें गधो और खच्चरो पर लादा और बेचने शहर चल दिये। रास्ते मे उन्हें अपने निकटवर्ती गाव के शरारती लडके मिले।

"कुम्हारो, बहुत दूर जा रहे हो क्या?"

"बतन बेचने।"

"क्या कीमत है इनकी?"

"छोटा की बीस कोपेक और बडो की पाच।"

"ऐसा क्यो?"

"इसलिए कि बडे बतनो की तुलना मे छोटे बतन बनाना ज्यादा मुश्किल होता है।"

शरारती लडका ने बालखारीवासियो से उनके सारे बतन खरीद लिये।

"हमारे माल से बहुत खुशी होगी तुम्हे," कुम्हारा ने लडको से विदा लेते और अपने गधो खच्चरो को गाव की ओर मोडते हुए कहा। "बहुत मन लगाकर हमने अपना माल तयार किया है। तुम्हारे पोते-पोतियो तक हमारे बनाये हुए ये बतन काम देते रहेंगे।"

पहाड पर चढकर कुम्हार आराम करने के लिए बठ गये। उन्होने दूर से पहाडी सडक पर नजर डाली और अचानक उन्ह यह जानने की कुरेद हुई कि लडके उनके बनाये हुए टनकते और सुन्दर बतनो का क्या कर रहे ह। लडको ने उन बतनों को सड़क के सिरे पर रख दिया था और

पढ उनसे बीस कदम हटकर उनपर कंकड फेंक रहे थे। शायद उनमे होड हो रही थी कि कौन ज्यादा बतन तोडता है। बतन टनकती आवाज करते हुए टूटते और उनके टुकडे खड्ड मे बिखर जाते। लडकों को इससे बहुत खुशी हो रही थी।

कुम्हार एकसाथ ऐसे उछलकर खड़े हुए मानो उन्हे फौजी हुक्म मिला हो और म्यानो से खजर निकालकर वे उन बदमाश लडकों की ओर भागे।

"अरे दुष्ट लडको, यह तुम क्या कर रहे हो!" वे चिल्लाये। "हमने तो अपने बहुत ही अच्छे बतन बेचे ह और तुम कोई शम-हया है तुममे?"

"किसलिए बिगड रहे ह आप?" कुछ न समझते हुए लडको ने पूछा। "आपने अपना माल हमे बेच दिया, हमने आपको उसके अच्छे पसे दे दिये, अब ये बतन हमारे ह। हम इनका क्या करते ह, आपको इससे मतलब? जो मे आयगा, तो फोडेंगे, जी मे आयगा, तो घर ले जायेंगे और जो मे आयेगा, तो यहीं सडक पर छोड देंगे।"

"मगर इन बतनों के साथ हमारा भी तो नाता है। बतन बनने के पहले हमने इनके लिए मिट्टी तयार करने म बहुत मेहनत की। हमने बडे मन से उसे गूधा ताकि उसके सुदर बतन बनें, ताकि लोग उन बतनो को देखकर मुग्ध हो। हमने तो यह सोचा था कि हमारी बनायी चीजा से लागा को खुशी मिलेगी, कि वे किसी क जीवन मे रगीनी लायेंगे। तुम्हे इन बतनो को बेचते हुए हमने यह आशा की थी कि एक गागर से तो तुम अपने मेहमानों को बूजा पिलाओगे, दूसरी म चश्मे का ठण्डा पानी रखोगे और कुछ गमलों मे सुदर फूल उगाओगे। मगर तुम तो बडे ही बेहया हो, इन सभी बतनो के टुकडे कर डाले। हमारी सारी मेहनत, हमारी सारी कोशिश, हमारे सारे सपनो को तुमने खड्ड के सिरे पर चूर चूर कर डाला। तुमने हमारी बनायी हुई चीजा पर वसे ही कंकड फेंके ह, जसे कि नासमझ बालक गानेवाले सुदर पक्षियो पर कंकड फेंकते ह।

कुम्हारो ने लडकों से वे सभी बतन, जो वे तोड नहीं पाये थे, दढतापूवक छीन लिये और अपने घर लौट गये।

कुम्हारो के दिल को लगी ठेस को हर वह आदमी समझ जायेगा, जो खुद कडी मेहनत करता है, अपने काम मे पूरी तरह से अपना मन

16 631

लगा देता है और अपने श्रम के फल पर मुग्ध होता है। इस तरह अबूतालिब ने अपना यह क़िस्सा ख़त्म किया।

अबूतालिब का सुनाया हुआ यह क़िस्सा मुझे न जाने क्यों, तब याद हो आया, जब दूरस्थ जापान में मैंने मोती खोजनेवाली लड़कियों को देखा। जवान और हृष्ट-पुष्ट गुदरिया सागर-तल में गहरे गोते लगातीं और वहां बड़ी मुश्किल से सांस लेती हुई अपनी नाव के साथ लटकते थैले में कुछ सीपियां डाल पातीं। ऐसी ही किसी एक सीपी में शायद कोई मोती हो सकता है। मगर मोतीवाली ऐसी एक ख़ुशक़िस्मत सीपी पाने के लिए हज़ारों सीपियां निकालनी पड़ती हैं। अब कल्पना कीजिये कि असली मोतियों की माला बनाने के लिए कितनी बार गोते लगाना और कितनी हज़ार सीपियां निकालना ज़रूरी होगा?

तो क्या उन्हीं शब्दों से, जिनका लोग हर दिन की बातचीत में इस्तेमाल करते हैं, गीतों की माला तैयार करना आसान है?! सभी साधारण शब्द, सभी घटनायें, सभी भावनायें, जीवन के सभी अनुभव—यह है वह महासागर, जिसमें ढेरों सीपियां बिखरी पड़ी हैं। मगर मोती की तलाश करनेवाले को अत्यधिक कठिन श्रम करना पड़ता है, लगातार महासागर की गहराइयों में गोते लगाने पड़ते हैं। इसके लिए अत्यधिक दक्षता, धीरज, स्वास्थ्य और सहनशीलता तथा प्रयास आवश्यक हैं। यह भी ज़रूरी है कि क़िस्मत साथ दे। मोती खोजनेवाले का धीरज, चांदी पर जाली नक्काशी करनेवाले कूबाची कारीगर का धीरज—इस सब का प्रतिभा से सम्बन्ध है, यह सब एकसाथ प्रतिभा और श्रम है।

अधिक समय तक जी पाये कविता मेरी
सीख रहा हूं मैं तो सुखी, दुखी होकर
उस कूबाची के कारीगर सा कैसे
धीरज दृढ़ता पा जाऊं मैं भी आख़िर।

नियम, जिन्हें हर पहाड़ी जानता है।

बालिग होने से पहले बेटी की शादी नहीं करो।

पानी तक पहुंचने से पहले जूते नहीं उतारो!

जब तक जानवर जंगल में है और तुमने उसका शिकार नहीं कर लिया, उसे पकाने के लिए पतीला आग पर नहीं चढ़ाओ!

इसलिए लोमड़ी उसकी नहीं है, जिसने उसे देखा, बल्कि उसकी है, जिसने उसे पकड़ा!

संस्मरण। मैं एक घटना लोगों को बताना तो नहीं चाहता क्योंकि उसमें मेरी तारीफ की कोई बात नहीं है। पर जब सिलसिलेवार सब कुछ बताना शुरू ही कर दिया, तो अब इसे ही क्या छिपाना? पहाड़ों में ठीक ही कहा जाता है—"अगर पेट तक पानी में चले गये, तो पूरी तरह ही घुस जाओ," "अगर बोरी का मुंह खोल ही दिया, तो उसमें जो कुछ भी है, झटककर बाहर निकाल दो।"

यह किताब, जो मैं इस वक्त लिख रहा हूं, कभी की पूरी हो गयी होती, अगर यह मूर्खतापूर्ण घटना न घट जाती, जिसकी मैं अब चर्चा करने जा रहा हूं।

आम तौर पर ऐसा होता है कि अगर मैं कोई किताब लिखना शुरू कर चुका हूं और तभी मुझे कहीं जाना पड़ जाये, तो उसकी पाण्डुलिपि अपने साथ ले जाता हूं। इस तरह मेरी पाण्डुलिपियां विभिन्न देशों की लम्बी यात्रायें कर चुकी हैं। जाहिर है कि मैं उन्हें योंही अपने साथ नहीं ले जाता—होटल में हमेशा ही कोई न कोई ऐसी सुबह मिल जाती है, जब पाण्डुलिपि लेकर बैठा जा सकता है, उसपर विचार करना और एकाध पृष्ठ लिखना सम्भव होता है। तो इस तरह यह किताब भी मेरे साथ समुद्रों, महासागरों और महाद्वीपों की सैर कर आयी है।

एक बार अंसेरस से लौटते हुए मैं मास्को के "मोस्क्वा" होटल में आठवीं मंजिल पर ठहरा। अब जब इस होटल का जिक्र आ ही गया है, तो यह भी बता दूं कि यह मेरे लिए महज होटल नहीं है। यह एक तरह से मेरा दूसरा घर है। अगर उन सालों को ध्यान में रखा जाये, जब से मैं लेखक बना हूं और तरह-तरह के कामों के सिलसिले में राजधानी आता जा रहा हूं, तो लगभग मेरी आधी जिन्दगी इसी होटल में गुजरी है। यहां सभी प्रबन्धक, सभी मंजिलों पर ड्यूटी देनेवाली और सफाई करनेवाली स्त्रियां मुझे अच्छी तरह जानती हैं और मैं भी उन्हें जानता हूं। मास्को में मेरे दोस्तों को भी यह मालूम है कि मैं हमेशा "मोस्क्वा" होटल में ही ठहरता हूं। इन दोस्तों में सचमुच कुछ तो ऐसे भी हैं, जिनके लिए "रसूल मास्को में" शब्दों का यही अर्थ होता है कि फुरसत का वक्त बिताने का एक अच्छा संयोग बना है।

म हाथ-मुह भी नहीं धोने पाता हू कि रह रहकर टेलीफोन की घटी बजने लगती है, दरवाजे पर बार-बार दस्तक होने लगती है और कुछ ही देर बाद कमरे मे कहीं बठने या हिलने डुलने तक की जगह नहीं रहती। होटल का कमरा बेशक पहाडी घर नहीं होता, फिर भी पुरानी परम्परा के अनुसार हम पहाडी लोग तीसरे दिन ही मेहमान का नाम पूछते ह। पर चूकि तीन दिनो तक कोई मेहमान भी होटल के कमरे मे बठा नहीं रहता, इसलिए अपने पास आनेवाले बहुत-से लोगो के नाम मुझे कभी मालूम ही नहीं हो पाते।

तो खर, ब्रसेल्स से लौटने पर एक बार म "मोस्क्वा" होटल मे ठहरा। हमेशा की तरह मेरे कमरे मे लोगो की भीड थी। कुछ मेरे विदेश से लौटने की बधाई और कुछ दागिस्तान की मेरी यात्रा के लिए शुभकामनायें देने आये थे और कुछ ऐसे ही, किसी भी काम के बिना आ गये थे। कुछ को मने खुद बुलाया था और कुछ बिन बुलाये मेहमान थे।

हो हल्ला करते हुए हमने कुछ की तारीफ की और इसलिये जाम चढाये, शोर मचाते हुए दूसरो की आलोचना की और इसलिये पी। हम बात करते थे और पीते थे। खिलखिलाकर हसते थे और पीते थे। गाने गाते थे और पीते थे। इसके अलावा कमरे मे इतना धुआ फला हुआ था मानो मेज या पलग के नीचे गीली लकडियो का अलाव जल रहा हो।

अबूतालिब कहा करते थे कि तीन कारणों से वे बुढ़ा गये ह।

सबसे पहले तो इस कारण से कि जब सभी आमन्त्रित मेहमान आ जाते ह और एक उस मेहमान का इतजार करना पडता है, जो वक्त पर नही पहुचता।

दूसरा कारण यह है कि बीवी ने तो मेज पर खाना लगा दिया है, मगर वोद्का की बोतल के लिये भेजा हुआ बेटा आने का नाम नहीं लेता।

तीसरा कारण यह है कि जब सारे मेहमान चले जाते ह और सिर्फ वही एक जो सारी शाम गुम-सुम बठा रहा है, दहलीज के पास रुककर बोलना शुरू कर देता है और अपनी खामोशी के घण्टो की कमी पूरी करने लगता है तथा ऐसा अनुभव होता है कि उसकी बातों का कभी अत नहीं होगा।

हम चाहे कितने भी थके हुए क्यों न हों, हमारी आखें चाहे नींद से घुटी क्यो न जा रही हो, मगर हमे उसकी सारी बकवास सुननी पडती है।

हम उसकी हर बात से सहमत होने की कोशिश करते हैं ताकि वह जल्दी से चलता बने। मगर हमारे इस तरह सहमत होने से उसे और प्रेरणा मिलती है और वह नयी से नयी बकवास जारी रखता है।

ऐसा ही एक मेहमान उस शाम को, जिसका इतना भयानक अन्त हुआ और जिसकी अब मैं चर्चा करना चाहता हूं, होटल के मेरे कमरे में आ गया। सभी मेहमानों के चले जाने के बाद यह नशे में धुत्त मेहमान मेरी खोपड़ी पर सवार रहा, कमरे की हर मुमकिन जगह पर उसने सिगरेट के टोटे बुझाये। ऐसा करते हुए उसने न तो पर्दों को छोड़ा, न कुर्सी की टेक को, न मेरे सूटकेस और न ही मेज पर रखे मेरे कागजों को ही।

शुरू में उसने मेरी तारीफ की और मैंने उसकी हां में हां मिलायी। फिर उसने अपनी तारीफ की, मैंने सहमति प्रकट की। उसके बाद उसने अपनी बीवी की तारीफ की, मैं इससे भी सहमत रहा। आखिर वह मुझे भला-बुरा कहने और मुझपर सभी तरह का कीचड़ उछालने लगा, मैंने इसके साथ भी सहमति प्रकट की। "अब यह अपने को और फिर अपनी बीवी को भला-बुरा कहना शुरू करेगा," मैंने घबराकर मन ही मन सोचा। मगर उस स्थल तक पहुंचते न पहुंचते, जहां तर्कसंगत ढंग से उसे अपने को कोसना चाहिये था, मेरे मेहमान ने अचानक जल्दबाजी दिखानी शुरू की और अपने कमरे में सोने चला गया। हां, इस ख्याल से कि उसके जाने से मुझे बहुत दुःख न हो, वह अगले रोज आने का वादा कर गया।

कभी-कभी ऐसा कहा जाता है कि मेहमान हर पहलू से सुन्दर होता है, पर फिर भी उसकी पीठ सबसे अधिक सुन्दर होती है। इस दिन मैं इस कहावत का सही अर्थ समझा। अपने इस जाते हुए मेहमान की पीठ मुझे बहुत ही खूबसूरत लगी। "तो आज की शाम की सारी मुसीबतों से पिंड छूटा," मैंने राहत की सांस लेते हुए मन ही मन सोचा, "अब चैन से सोया जा सकता है।" मैंने झटपट दरवाजा बन्द किया, दबे पांव कम्बल के नीचे जा दुबका और फौरन ही मेरी आंख लग गयी। मुझे ऐसी मजे की नींद आयी जैसी उस समय लम्बे गर्म लबादे के नीचे आती है, जब बाहर बारिश पटापट का अपना राग अलापती होती है। सपने में मुझे दिखाई दिया कि मैं सचमुच ही अलाव के पास लम्बा गर्म लबादा ओढ़े पड़ा हूं और मेरे इर्द गिर्द चरवाहे बैठे हैं। वे अलाव में चलिया डाल रहे

ह। श्रलाव से धुश्रां निकल रहा था, जिससे मेरी श्राखो मे जलन श्रौर नाक मे खुजली हो रही थी। इसके बाद मने श्रपने को मानो बेकरी म पाया, जहा न जाने किस कारण जली हुई रोटी की गध श्रा रही थी। इसके बाद मने यह देखा कि इतवार के दिन म दोस्तो के साथ शहर के बाहर गया हू श्रौर वहां हम जायकेदार सीख-कबाब भून रहे ह।

श्रांखो मे श्रसह्य जलन श्रनुभव होने पर मेरी श्राख खुली। म झटपट उठा, मुझे कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था। कमरा धुए से भरा हुश्रा था श्रौर दरवाजे के क़रीब भी मानो श्राग जल रही थी। म श्राग की तरफ लपका, तो देखा कि मेरा सूटकेस जल रहा है।

मेरे सूटकेस पर दुनिया के बेहतरीन होटलो के निशान लगे हुए थे। कितने देशो की मने इसके साथ यात्रा की थी! कितने चुगीघरो से हम किसी परेशानी के बिना निकले थे! यह सही है कि उसमे कभी कोई श्रापत्तिजनक चीज नहीं होती थी, मगर फिर भी वोदका की बोतल, जो दोस्तो को भेंट करने के लिये होती है, या सिगरेटो का फालतू पकेट या बीवी के लिये सुदर ब्लाउज देखकर भी चुगीवाले कभी-कभी चमक उठते ह।

तो मेरा यह सूटकेस जो इतने चुगीघरो से सही सलामत निकल श्राया था, मास्को होटल के शान्त कमरे मे श्राकर जल गया।

मने जलते हुए सूटकेस के बचे बचाये हिस्सो को जल्दी से उठाया, नहाने के टब मे डाला श्रौर नल चला दिया। धुए के नये बादल उठें। मेरे हाथ श्रौर शायद चेहरा भी कुछ जल गया था, मगर जिस कुर्सी पर पहले सूटकेस रखा था, श्रब उसकी तथा कालीन श्रौर पर्दों की श्राग बुझाना जरूरी था। मने लपककर श्रपनी मंजिल पर ड्यूटी देनेवाली श्रौरत को टेलीफोन किया।

"म जला जा रहा हू," मने चिल्लाकर कहा, "मेरी मदद को श्राइये।"

मगर ड्यूटीवाली ने शायद यही सोचा कि रसूल तो सिर्फ प्यार की श्राग मे ही जल सकता है श्रौर इस वक्त उसी की मुहब्बत की श्राग मे जल रहा है। इसलिये उसने बडे इतमीनान से, मा के से श्रन्दाज मे जवाब दिया –

"रसूल बस, यह सब रहने दो, श्रब सो जाश्रो। सुबह तक बिल्कुल ठीक-ठाक हो जाश्रोगे।"

ओ नारियो! कितनी बार मने उनसे मजाक मे यह कहा था कि म जला जा रहा हू और मुझपर विश्वास करके वे मेरी मदद को आयी थीं। मगर जब जिन्दगी मे सिर्फ एक बार ही असली आग ने मुझे आ घेरा था, तो किसी ने मुझपर एतबार नहीं किया।

आग बुझानेवाले एक बहादुर आदमी की तरह मने आग क विरुद्ध मोर्चा लिया। आखिर मुझे कालीन, कुर्सी और पर्दों की आग और लकडी क फर्श की सुलगती तख्तियो को बुझाने मे भी कामयाबी मिल गई। हा, मैंने आग पर विजय तो प्राप्त कर ली थी, मगर ऐसा कर पाने के पहले उसने मेरा काफी नुकसान कर दिया था।

शायद नशे में धुत्त मेहमान ने मेरे सूटकेस मे सिगरेट का टोटा घुसेड दिया था और वहीं से यह सारी मुसीबत शुरू हुई थी। मेरी कमीजें, सूट और ब्रसेल्स से लाये गये सारे तोहफे जल गये। होटल के प्रबधको ने कालीन, कुर्सी और पर्दों का हिसाब जोडकर खासी बडी रकम का बिल मेरे सामने पेश कर दिया। खुद मुझे अस्पताल जाना पडा। घर पर बीवी को टेलीफोन किया कि जरूरी काम से रुक रहा हू। पर चूकि अभी यह नहीं सोचा था कि किस जरूरी काम से रुक रहा हू, इसलिए फिर टेलीफोन करने का वादा किया। तो कम्बख्त एक टोटे ने क्या गजब कर डाला था।

मगर सच तो यह है कि मेरे सबसे बडे नुकसान के मुकाबले मे यह सब हानि तो बडी तुच्छ-सी प्रतीत हुई। सूटकेस के तल मे वह पाण्डुलिपि पडी थी, जिसपर म पिछले दो साल मे काम कर रहा था

कहते हू कि सबसे बडी मछली वह होती है, जो काटे से निकल जाये, सबसे मोटा पहाडी बकरा वह होता है, जिसपर साधा हुआ निशाना चूक जाये, सबसे ज्यादा खूबसूरत औरत वह होती है, जो तुम्हें छोड जाये।

मेरा पाण्डुलिपि के बहुत-से पष्ठ जल गये! अब मुझे लगता है कि वे ही मेरे सबसे अच्छे पृष्ठ थे।

इसके अलावा, कांटे से निकल जानेवाली मछली तो मेरी थी ही नहीं, जिस पहाडी बकरे पर साधा गया निशाना चूका, वह भी मेरा नहीं था। छोडकर जानेवाली नारी भी मेरी नहीं थी। मगर जल जानेवाले पष्ठ मेरे थे। उनकी मने खुद कल्पना की थी, मने उन्हे जिया था और व्यथित होकर रचा था। बडे धय से अनेक उनींदी रातो और दिनों मे मन उनपर श्रम किया था। इसीलिए अपनी पाडुलिपि क नष्ट होने से मुझे इतना

दु ख हुआ था। इसीलिए म यह सोचता हू कि यह मेरी सबसे अच्छी पुस्तक थी।

म आन की आन मे उस खत की तरह वीरान-सा हो गया, जिसपर से फूले उठा लिये जाते ह या उस आखिरी फूले जसा हो गया, जिसे लोग ले जाना भूल गये थे।

जले हुए पृष्ठो का हर शब्द मुझे मोती-सा प्रतीत होने लगा। पक्तिया मेरी कल्पना मे क़ीमती हार बन गयीं।

मुझे ऐसा धक्का लगा था कि दो साल तक म नष्ट हुई पाण्डुलिपि को बहाल करने नहीं बठ सका। आखिर जब शान्त हो गया, तो यह बात मेरी समझ मे आई कि बेशक म लगभग उन्हीं चीज़ो के बारे मे फिर से लिख सकता हू, मगर पहलेवाले पृष्ठो को लौटाना सम्भव नहीं।

यह बिल्कुल वसी ही बात थी कि जसे किसी मा बाप का बहुत प्यारा बच्चा मर जाता है, तो कुछ वक्त गुज़रने पर उनका दूसरा बच्चा हो सकता है और उसे भी वे उतना ही प्यार करेंगे, मगर फिर भी वह वही नहीं, जिसे वे खो चुके ह, बल्कि दूसरा व्यक्ति होगा।

कहते ह कि कविता पानी से घबराती है। कविता तो आग है और कवि का सजन उस आग मे उसका दहन। हा, कविताओ मे पानी नहीं होना चाहिए। मगर अल्लाह उन्हे एसी आग से भी बचाये, जिससे होटल के कमरे मे मेरी कविताओ का वास्ता पडा।

अबूतालिब के फ्लैट में कैसे चोरी हुई। म नहीं जानता कि यह कसे हुआ, किसने यह चाल चली और क्यो ऐसे हुआ कि अबूतालिब के घर पर कोई नहीं था और उसके फ्लट मे चोरी हो गयी। जब जाच की गयी, तो बटी की सोने की घडी, सोने की अगूठी, काटे और एसे ही कुछ दूसरे गहने गायब मिले। फर कोट, फ्राक, सडल, जूते और रुपये भी नहीं थे अबूतालिब की बीवी तो गश खाते खाते बची, बेटी तख्ते पर गिरकर रोने लगी। मगर अबूतालिब दूसरे कमरे मे जाकर फश पर बठ गये और जुरना बजाने लगे।

अबूतालिब की बीवी झटपट वहां आकर बिगडी—

कोई शम हया है तुम्हें! इतनी बडी मुसीबत और तुम क्या कर रहे हो। जल्दी से मिलीशियामन या प्रोसीक्यूटर को बुलाना चाहिए,

'ऐसी भी क्या मुसीबत है! मेरी कवितायें सही-सलामत ह। देखो

तो, मेरे सभी कागज़ पहले की तरह ही पड़े हुए हैं। चोरों ने उन्हें छुआ तक नहीं। मुझे तो दुखी होने की कोई वजह नज़र नहीं आती!"

"किसे ज़रूरत है तुम्हारी कविताओं की, सो भी लाक भाषा में?"

"अरी, मेरी भोली बीवी, तुम कुछ भी तो नहीं जानतीं। ऐसे भी लोग हैं, जो कवि भी कहलाते हैं और बसे, परायी कवितायें ही चुराया करते हैं। शुक्र है अल्लाह का कि मेरी कवितायें नहीं चुरायी गयीं। साल भर मैंने इनपर मेहनत की है और अगर इनमें से एक भी खो जाती, तो मेरे लिए बड़े दुख की बात होती। इसके अलावा मेरा ज़ुरना भी कायम है। तो फिर मैं खुश होकर इसे क्यों न बजाऊं?"

और अबूतालिब अपनी बीवी-बेटी की चीख़पुकार पर और ध्यान न देकर मज़े से ज़ुरना बजाते रहे।

आफ़न्दी कापीयेव ने मुझे यह बात सुनायी। गर्मी के एक सुहाने दिन सुलेमान स्ताल्स्की अपने पहाड़ी घर की छत पर लेटा हुआ आसमान को ताक रहा था। आस-पास पक्षी चहचहा रहे थे, झरने झर झर कर रहे थे। हर कोई यही सोचता था कि सुलेमान आराम कर रहा है। उसकी बीवी ने भी ऐसा ही सोचा। छत पर चढ़कर उसने पति को आवाज़ दी—

"खीनकाल तैयार हो गये। मैंने मेज़ पर भी लगा दिये हैं। खाने का वक्त हो गया!"

सुलेमान ने कोई जवाब नहीं दिया, सिर तक नहीं घुमाया।

कुछ देर बाद ऐना ने दूसरी बार पति को पुकारा—

"खीनकाल ठण्डे हुए जा रहे हैं। थोड़ी देर बाद खाने लायक नहीं रहेंगे!"

सुलेमान हिला डुला तक नहीं।

तब उसकी बीवी यह सोचकर कि पति नीचे नहीं आना चाहता, छत पर ही खाना ले आई। उसने यह कहते हुए उसकी तरफ़ तश्तरी बढ़ायी—

"तुमने सुबह से कुछ नहीं खाया। देखो तो, मैंने तुम्हारे लिये कैसे मज़ेदार खीनकाल तैयार किये हैं।"

सुलेमान आपे से बाहर हो गया। वह अपनी जगह से उठा और चिंताशील पत्नी पर बरस पड़ा—

"तुम तो हमेशा मेरे काम में खलल डालती रहती हो!"

"मगर तुम तो योंही बेकार लेटे हुए थे। मैंने सोचा..."

"नहीं, म काम कर रहा हू। फिर कभी मेरे काम मे खलल नहीं डालना।"

हा, इसी दिन सुलेमान ने अपनी नयी कविता रची थी।

तो कवि जब लेटा हुआ आकाश को ताकता है, तब भी काम करता होता है।

पत्नी के प्रति कवि ने ऐसे भाव जताय–
'तुम प्रकाश मेरे जीवन का, तुम प्रभात, तुम तारा
जब तुम निकट, पास म मेरे, सुखद, मधुरतम जीवन
जब तुम दूर तभी बनता वह, कटुमय, सागर खारा!

पर प्रकाश वह तारा जिस क्षण, कवि के सम्मुख आया,
उसे देख वह चौंका, चमका घबराकर चिल्लाया।
फिर से तुम आ गयी यहा पर हाय राम जी
मुझे काम करने दो कुछ तो, म तुमसे भर पाया!'

पिता जी ने यह बात सुनायी। प्रेम का महान गायक महमूद किसी सम्मानित व्यक्ति के यहा आमंत्रित था। दूसरे कई मेहमान भी थे। आधी रात तक कवि ने एकत्रित लोगों को अपनी कविताओं का रस-पान कराया। इसके बाद सभी सोने चले गये। महमूद को सबसे अच्छा कमरा सोने के लिये दिया गया। गृह-स्वामी ने वहा हाथ मुह धोने के लिये चिलमची और गागर रख दी, शुभरात्रि की कामना की और चला गया।

सुबह को इस डर से कि महमूद सुबह की नमाज के वक्त कहीं सोया ही न रह जाये, गृह-स्वामी ने दबे पाव महमूद के कमरे मे झाका। उसने देखा कि कवि ने तो सोने की बात ही नहीं सोची। कालीन पर उकड़ू बैठा हुआ वह तो बोल-बोलकर यह कविता लिख रहा था–

नही चाहिये जन्नत का वह चमन मुझ
सच कहता हू उससे मुझे बचाओ
बडी खुशी स ले लो तुम जन्नत सारी
मेरे दिल का प्यार मगर देते जाओ।

"महमूद, सुबह की नमाज का वक्त हो गया, कविता छोडकर अल्लाह की बन्दगी करो।'

'मेरी तो यही बन्दगी है, महमूद ने जवाब दिया।

तो इस तरह कवि पूजा पाठ में समय भी काम करता रहता है।

नोटबुक से। अब मैं ख़ुद एक ग्रवार कवि का क़िस्सा सुनाता हूँ। मैं उसका नाम नहीं बताऊंगा। मैं नहीं चाहता कि बाद में आप उसपर उंगलियां उठायें और उसका मज़ाक उड़ायें। कारण कि मज़ाक उड़ाने की बात भी है।

इस कवि ने शादी की, ख़ूब धूमधाम रही। आख़िर मेहमान नव दम्पति को उनके लिये विशेष रूप से तैयार किये गये कमरे में छोड़कर चले गये। दुलहन सुहाग रात के अरमान लिये पलंग पर जा लेटी और दूल्हे का इंतज़ार करने लगी। मगर दूल्हा अपनी दुलहन के पास जाने के बजाय मेज़ पर बैठकर कविता लिखने लगा। रात भर वह कविता लिखता रहा और सुबह होने पर ही उसने प्यार, दुलहन और सुहाग रात के बारे में अपनी कविता ख़त्म की।

तो क्या हम यह नतीजा निकालें कि कवि प्यार की रात में भी काम करता रहता है? अगर मैं भी इस प्रकार कवि की तरह काम करता, तो जितनी अब मेरी किताबें हैं, उससे पचास गुना ज़्यादा होतीं। मगर मेरे ख़्याल से उनमें बनावट ही बनावट होती।

दुलहन जब अपने दूल्हे को बाहों में भरने को बेक़रार हो, तो उस वक़्त जो मेज़ पर लिखने बैठ जाता है, रूप रानी की उपस्थिति में जो काग़ज़ और लेखनी को उठाकर एक तरफ़ नहीं रख देता, वह सिर्फ़ ढोंगी है। बेशक वह दस या बीस गुना ज़्यादा लिख ले, मगर उसके शब्दों में ईमानदारी नहीं होगी।

हां, मेहनत करना ज़रूरी है! कहते हैं कि कोई अक़्लमन्द आदमी इस उम्मीद में पेड़ के नीचे जाकर लेट रहा कि कब सेब उसके मुंह में आकर गिरता है। सेब नहीं गिरा।

पर काम और शायद प्रतिभा से भी ज़्यादा कवि के लिये दूसरों के और ख़ुद अपने सामने भी ईमानदार होना ज़रूरी है।

कहते हैं कि बहादुर या तो ज़ीन पर होता है या ज़मीन में।

कहते हैं—

"दुनिया में सबसे बुरा और घृणित क्या है?"

"डर से कांपनेवाला मर्द।"

"इससे भी बढ़कर बुरा और घृणित क्या है?"

"डर से कांपनेवाला मर्द।"

सचाई । साहस

मजलिस म यह कहा एक नायव न उठकर
'वह ही बन इमाम कि जो हो सबसे चतुर सुजान'
मगर दूसरे नायब न कुछ कहा और ही–
"वह ही बन इमाम कि जो सबसे ज्यादा बलवान'
कविता पर अधिकार कि जिसका उस गायक, कवि की तुलना म
शायद है आसान कि सारी दुनिया पर करना शासन,
उक्त गुणो के साथ-साथ ही उसे चाहिये
कितना कुछ ही और जानना और समझ पाना जीवन।

अवार सुनाते है। युग-युगा से सच और झूठ एक दूसरे के साथ-साथ चल रहे ह। युग-युगो से उनके बीच यह बहस चल रही है कि उनम से किसकी अधिक जरूरत है, कौन अधिक उपयोगी और शक्तिशाली है। झूठ कहता है कि म और सच कहता है कि म। इस बहस का कभी अन्त नहीं होता।

एक दिन उन्होने दुनिया मे जाकर लोगा से पूछने का फसला किया। झूठ तग और टेढी मेढ़ी पगडडियो पर आगे आगे भाग चला, वह हर सेंध मे झाकता, हर सूराख मे सूधा-साधी करता और हर गली मे मुडता। मगर सच गव से गदन ऊची उठाये सिफ सीधे, चौडे रास्ता पर ही जाता। झूठ लगातार हसता था, पर सच सोच म डूबा हुआ और उदास-उदास था।

उन दोनो ने बहुत-से रास्ते, नगर और गाव तय किये, वे बादशाहों, कवियो, खानो, न्यायाधीशों, व्यापारिया, ज्योतिषियो और साधारण लोगों के पास भी गये। जहां झूठ पहुचता वहा लोग इतमीनान और आजादी महसूस करते। वे हसते हुए एक-दूसरे की आंखो मे देखते, यद्यपि इसी

वेन एक-दूसरे को धोखा देते होंगे और उन्हें यह भी मालूम होता कि वे ऐसा कर रहे हैं। मगर फिर भी वे अड़ियल और मस्त थे तथा उन्हें एक दूसरे को धोखा देने और झूठ बोलते हुए जरा भी शर्म नहीं आती थी।

जब सब सामने आया, तो लोग उदास हो गये, उन्हें एक-दूसरे से नज़रें मिलाते हुए झेंप होने लगी, उनकी नज़रें झुक गयीं। लोगों ने (सच के नाम पर) खंजर निकाल लिये, पीड़ित पीड़कों के विरुद्ध उठ खड़े हुए, ग्राहक व्यापारियों पर, साधारण लोग धनियों पर और धनी शाहों पर झपटे, पति ने पत्नी और उसके प्रेमी की हत्या कर डाली। खून बहने लगा। इसलिये अधिकतर लोगों ने झूठ से कहा—

"तुम हमें छोड़कर न जाओ! तुम हमारे सबसे अच्छे दोस्त हो। तुम्हारे साथ जाना बड़ा सीधा-सादा और आसान मामला है! और सच, तुम तो हमारे लिये सिर्फ़ परेशानी ही लाते हो। तुम्हारे आने पर हमें सोचना पड़ता है, हर चीज़ को दिल से महसूस करना, चुनना और संघर्ष करना होता है। तुम्हारी वजह से क्या कम जवान योद्धा, कवि और सूरमा मर चुके हैं?"

"अब बोलो," झूठ ने मच से कहा, "देख लिया न कि मेरी अधिक आवश्यकता है और मैं ही अधिक उपयोगी हूं। जितने घरों का हमने चक्कर लगाया है और सभी जगह तुम्हारा नहीं, मेरा स्वागत हुआ है।"

"हां, हम बहुत-सी आबाद जगहों पर तो हो आये। आओ, अब चोटियों पर चलें! चलकर निर्मल जल के ठण्डे चश्मों, ऊंची चरागाहों में खिलनेवाले फूलों, सदा चमकनेवाली बेदाग सफ़ेद बर्फ़ों से पूछें।

"शिखरों पर हजारों बरसों का जीवन है। वहां नायकों वीरों, कवियों, बुद्धिमानों और सन्त-साधुओं के अमर और न्यायपूर्ण कृत्य, उनके विचार, गीत और अनुदेश जीवित रहते हैं। चोटियों पर वह रहता है जो अमर है और पृथ्वी की तुच्छ चिन्ताओं से मुक्त है।"

"नहीं, मैं वहां नहीं जाऊंगा," झूठ ने जवाब दिया।

"तो तुम क्या ऊंचाई से डरते हो। सिर्फ़ कौवे ही निचाई पर घोंसले बनाते हैं और उकाब तो सबसे ऊंचे पहाड़ों के ऊपर उड़ान भरते हैं। क्या तुम उकाब के बजाय कौवा होना ज्यादा बेहतर समझते हो? हां, मुझे मालूम है कि तुम डरते हो। तुम तो हो ही बुज़दिल! तुम तो शादी की मेज़ पर, जहां शराब की नदी बहती होती है, बहसना पसन्द करते हो,

मगर बाहर अहाते में जाते हुए डरते हो, जहां जामों की नहीं, खंजरों की खनक होती है।"

"नहीं, मैं तुम्हारी ऊंचाइयों से नहीं डरता। मगर मैं वहां करूंगा ही क्या, क्योंकि वहां लोग नहीं हैं। मेरा तो वहीं बोलबाला है, जहां लोग रहते हैं। मैं तो उन्हीं पर राज करता हूं। ये सब मेरी प्रजा हैं। केवल कुछ साहसी ही मेरा विरोध करने की हिम्मत करते हैं और तुम्हारे पथ पर, सचाई के पथ पर चलते हैं, मगर ऐसे लोग तो इने गिने हैं।"

"हां, इने गिने हैं। मगर इसीलिये इन लोगों को युग-नायक माना जाता है और कवि अपने सर्वश्रेष्ठ गीतों में उनका स्तुति-गान करते हैं।"

अकेले कवि का किस्सा। यह किस्सा मुझे अबूतालिब ने सुनाया। किसी खान की रियासत में बहुत-से कवि रहते थे। वे गांव-गांव घूमते और अपने गीत गाते। उनमें से कोई चांगूर बजाता, कोई खजड़ी, कोई चोगूर और कोई ज़ुरना। खान को जब अपने काम-काजों और बीवियों से फुरसत मिलती, तो वह शौक से उनके गीत सुनता।

एक दिन उसने एक ऐसा गीत सुना, जिसमें खान की क्रूरता, अन्याय और लालच का बखान किया गया था। खान आग-बबूला हो उठा। उसने हुक्म दिया कि ऐसा विद्रोह भरा गीत रचनेवाले कवि को पकड़कर उसके महल में लाया जाये।

गीतकार का पता नहीं लग सका। तब वज़ीरों और नौकरों चाकरों को सभी कवि पकड़ लाने का आदेश दिया गया। खान के टुकड़खोर शिकारी कुत्तों की तरह सभी गांवों, रास्तों, पहाड़ी पगडंडियों और सुनसान दर्रों में जा पहुंचे। उन्होंने सभी गीत रचने और गानेवालों को पकड़ लिया और महल की काल-कोठरियों में लाकर बन्द कर दिया। सुबह को खान सभी बन्दी कवियों के पास जाकर बोला—

"अब तुममें से हरेक मुझे एक गीत गाकर सुनाये।"

सभी कवि बारी बारी से खान की समझदारी, उसके उदार दिल, उसकी सुन्दर बीवियों, उसकी ताकत, उसकी बड़ाई और ख्याति के गीत गाने लगे। उन्होंने यह गाया कि पृथ्वी पर ऐसा महान और न्यायपूर्ण खान कभी पैदा ही नहीं हुआ था।

खान एक के बाद एक कवि को छोड़ने का आदेश देता गया। आखिर तीन कवि रह गये, जिन्होंने कुछ भी नहीं गाया। उन तीनों को फिर

से कोठरिया म बद कर दिया गया और सभी ने यह सोचा कि खान उनके बारे मे भूल गया है।

मगर तान महान बाद खान फिर से इन बन्दी कवियो के पास आया।

"तो अब तुममें से हरेक मुझे कोई गीत सुनाये।"

उन तीना कविया म से एक फौरन खान, उसकी समझदारी, उदार दिल, सुन्दर बीवियों, उसकी बडाई और ख्याति के बारे मे गाने लगा। उसने यह भी गाया कि पृथ्वी पर कभी कोई ऐसा महान खान नहीं हुआ।

इस कवि को भी छोड दिया गया। उन दो को जो कुछ भी गाने को तयार नहीं हुए, मदान मे पहले से तयार किये गये अलाव के पास ले जाया गया।

"अभी तुम्हे आग की नजर कर दिया जायेगा," खान ने कहा। "आखिरी बार तुमसे यह कहता हू कि अपना कोई गीत सुनाओ।"

उन दो मे से एक की हिम्मत टूट गई और उसने खान, उसकी अक्लमन्दी, उदार दिल, सुदर बीविया, उसकी ताक़त, बडाई और ख्याति क बार म गीत गाना शुरू कर दिया। उसने गाया कि दुनिया मे ऐसा महान और न्यायपूर्ण खान कभी नहीं हुआ।

इस कवि का भी छोड दिया गया। बस, एक वही जिद्दी बाकी रह गया, जो कुछ भी गाना नहा चाहता था।

'उसे खम्भे के साथ बाधकर आग जला दो!" खान ने हुक्म दिया।

खम्भ क साथ बधा हुआ कवि अचानक खान की क्रूरता, अन्याय और लालच के बारे मे वही गीत गाने लगा, जिससे यह सारा मामला शुरू हुआ था।

"जल्दी से इसे खोलकर आग मे नीचे उतारो!" खान चिल्ला उठा! "म अपने मुल्क के अकेले असली शायर से हाथ नहीं धोना चाहता।'

'एसे समझदार और नेकदिल खान तो शायद ही कहीं होगे," अबूतालिब ने यह किस्सा खत्म करते हुए कहा, "मगर ऐसे कवि भी बहुत नहीं होग।'

पिता जी ने यह बात सुनायी। एक बार महान शामिल से घनिष्ठता रखनेवालो ने पूछा—

"इमाम, यह बताइये कि आपने कवितायें रचने और उन्हे गाने की क्यो मनाही कर दी?"

इमाम ने जवाब दिया—

"मै चाहता हू कि केवल असली कवि ही कवि रह जायें। असली शायर तो फिर भी शायरी करेंगे ही। मगर ढागी, पाखडी, तुकबन्द और हठमठ अपने को कवि कहनेवाले मेरे हुक्म से डर जायेंगे, उनकी हिम्मत टट जायेगी और वे खामोश हो जायेंगे। इस तरह वे लोगो को और खद अपने को धोखा नहीं दे सकेंगे।"

"इमाम, इतना और बताइये कि आपने सईद हारकास्की की कविताये नदी मे क्या फेंक दीं?"

"असली कविताओ को नदी मे डुबोया नहीं जा सकता, वे लोगो के दिलो मे सास लेती है। पर यदि कवितायें उन कागज़ो जितनी ही कीमत रखती है, जिनपर वे लिखी गयी है, तो नदी मे ही उनकी जगह है। ऐसी घटिया कवितायें रचने के बजाय, जो नदी मे डूब जायें, सईद के लिये कोई और फायदेमन्द काम करना ज्यादा बेहतर होगा।"

कहते है कि जब महान कवि महमूद की मृत्यु हो गयी, तो दुख सागर मे बुरी तरह डूबे हुए उनके पिता ने महमूद की पाण्डुलिपियों से भरा सूटकेस उठाकर आग मे डाल दिया।

"लानत के मारे कागजो, जल जाओ। तुम्हारे कारण ही मेरे बेटे की वक्त से पहले मौत हो गयी।"

सभी कागज जल गये, मगर महमूद की कवितायें फिर भी जिन्दा रह गयीं। उनके रचे हुए गीतो की एक भी पक्ति नहीं भुलायी गयी। वे गीत लोगो के दिलो मे जी रहे है। उन्हे न तो आग जला सकती है, न पानी गला सकता है, क्योकि उनमे कवि की आत्मा की आवाज है।

मेरे पिता जी उन लोगो पर हसा करते थे, जो इस डर से कि उन्हे किसी की बुरी नजर न लग जाये, रात को चोरी छिपे सफर पर निकलते थे

उनपर भी, जो खुरजी मे इसलिये पत्थर भर लिया करते थे कि दूसरे यह समझें कि उसमे रोटी भरी है,

उन शिकारियो पर भी, जो तीतर की जगह कौवा लेकर घर लौटते थे।

अबूतालिब ने यह बात सुनायी। कहीं कोई गरीब आदमी रहता था, जिसे अपने को अमीर दिखाने का चाव चढ़ा। हर दिन वह बहुत खु़श

छरा और मुस्कराता हुआ चौपाल में आता और उसकी मूछें चिकनाई से चमकती होतीं मानो वह अभी अभी जवान और बढ़िया भेड़ खाकर आया हो। गरीब आदमी सबको सुनाकर डींग मारता –

"अहा, कैसा मोटा मेमना मैंने आज खाने के लिये काटा! कितना नर्म और मजेदार था उसका मांस।"

"हर दिन उसके पास मेमना कहां से आ जाता है?" गांव के लोग हैरान होते। "मामले की जांच करनी चाहिये।"

चन्द नौजवान उसके घर की छत पर चढ़ गये और चौड़े धुआंदान में से उन्होंने नीचे नज़र दौड़ाई। उन्होंने ग़रीब आदमी को पुरानी, फेंकी हुई हड्डी उबालते देखा। उसने ऊपर आ जानेवाली थोड़ी-सी चर्बी इकट्ठी की और उससे मूछें चिकनी कर लीं। इसके बाद उसने थोड़ा-सा सफ़ेद चारा खा लिया। उसके घर में खाने के लिये बस यही था।

नौजवान झटपट छत पर से नीचे उतरे और ग़रीब आदमी के घर में गये।

"सलाम अलेकुम! हम लोग इधर से गुज़र रहे थे। सोचा कि अमीर आदमी के यहां चलें।"

"ज़रा देर से आये, मैंने अभी अभी मोटी भेड़ ख़त्म की है। अब घर से बाहर जाने ही वाला था।"

"तो तुम यही बताओ कि ऐसा ख़ुशबूदार और मज़ेदार शोरा कहां से लाते हो?"

ग़रीब समझ गया कि नौजवानों को सब कुछ मालूम है और उसका सिर झुक गया। इसके बाद उसकी मूछों पर कभी चिकनाई नज़र नहीं आई।

संस्मरण। बचपन में पिता जी ने एक बार मुझे बहुत ही कड़ी सज़ा दी थी। पिटाई तो मैं भूल गया, मगर पिटाई का कारण मुझे अभी तक बहुत अच्छी तरह याद है।

एक दिन सुबह को मैं स्कूल जाने के लिये घर से निकला, मगर स्कूल गया नहीं। एक गली से दूसरी गली में मुड़ गया और शाम तक आवारा लड़कों के साथ जुआ खेलता रहा। पिता जी ने किताबें ख़रीदने के लिये मुझे कुछ पैसे दिये थे और उन्हीं के साथ मैं दुनिया की सुध-बुध भूलकर दांव लगाता रहा। पैसे जल्द ही ख़त्म हो गये। अब मुझे यह फ़िक्र हुई कि

ग्रौर पसे कहा से हासिल किये जायें। हम जब जुग्रा खेलते ह ग्रौर ग्राखिरी कौडी तक हार जाते ह, तो हमे ऐसा लगता है कि ग्रगर कहीं से पाच कोपेक का एक सिक्का ग्रौर हाथ लग जाये, तो न सिफ हारे हुए पसे ही वापस ग्रा जायेंगे, बल्कि कुछ ग्रौर भी जीत लेंगे। मुझे भी ऐसा ही लगा कि ग्रगर कहीं से कुछ पसे ग्रौर मिल जायें, तो हारे हुए पसे वापस ग्रा जायेंगे।

म जिन लडकों के साथ खेल रहा था, उनसे उधार मागने लगा। मगर कोई भी ऐसा करने को राजी नहीं हुग्रा। बात यह है कि जग्रारियो म ऐसा माना जाता है कि जो कोई हारनेवाले को उधार देता है, वह खुद हार जाता है।

तब मने एक तरकीब निकाली। म गाव मे घर घर जाने ग्रौर यह कहने लगा कि कल यहा पहलवान ग्रायेंगे ग्रौर मुझे उनके लिये पसे जमा करने का काम सौंपा गया है।

दर दर जानेवाले भूखे कुत्ते को क्या मिलता है? या तो हड्डी या डडे की मार। मेरे साथ भी ऐसा ही हुग्रा – कुछ ने इनकार कर दिया, कुछ ने कुछ दे दिया। हा, जिन्होने कुछ दिया, वह भी शायद मेरे पिता के नाम की इज्जत करते हुए।

गाव का चक्कर लगाने के बाद मने पसे गिने, तो इस नतीज पर पहुचा कि जुग्रा जारी रखा जा सकता है। मगर किस्मत के मारे य पसे भी जल्दी ही खत्म हो गये। यह खेल जमीन पर घुटनों के बल रेंगकर खेला जाता था। दिन भर म मेरा पतलून बिल्कुल फट गया ग्रौर घटनो पर खराचे ग्रा गयीं।

इसी बीच घर पर मेरी फिक्र हुई। बडे भाई मुझे सारे गाव मे ढूढने लगे।

गाववाले, जिन्हे मने पहलवानो के ग्राने की मनगढ़त बात कही थी, उनके ग्रागमन के बारे मे विस्तारपूवक जानने के लिये हमारे घर पहुचने लगे। मतलब यह कि जब कान से पकडकर मुझे घर लाया गया, तो मेरी करतूतो का पूरा पता चल चुका था।

तो म पिता जी की ग्रदालत मे खडा था। उनकी इस ग्रदालत से ही म दुनिया मे सबसे ज्यादा डरता था। पिता जी ने सिर से पाव तक मुझे बहुत गौर से देखा। मेरे नगे, सूजे हुए लाल घुटने सूराखों मे से ऐसे

झाक रहे थे जैसे पर्खा से भरे हुए तकिये, जिन्हें पहाड़ी घरों की खिड़कियों में खोंस दिया जाता है, झांकते दिखाई देते हैं।

"यह क्या है?" पिता जी ने मानो शान्ति से पूछा।

"घुटने हैं," फटे पतलून के सूराखों को हाथों से छिपाने की कोशिश करते हुए मैंने जवाब दिया।

"घुटने हैं, यह मैं भी जानता हूं, मगर ये उघाड़े क्यों हैं? यह बताओ कि पतलून कहां फाड़ा?"

मैं अपने पतलून को ऐसे देखने लगा मानो अभी मैंने उनमें सूराख देखे हों। अजाब मनोदशा होती है झूठे और कायर की। वह समझता है कि बड़ों को सब कुछ मालूम है और हकीकत से इनकार करना महज़ अपना मज़ाक़ उड़वाना है और इससे कोई फायदा नहीं होगा, मगर फिर भी वह साफ-साफ और सच्चे जवाब देने से कतराता है और अपने मन से तरह तरह की बातें बनाता है।

पिता जी की आवाज में गुस्सा झलकने लगा। परिवार के लोग घर के मुखिया का मिज़ाज समझते थे और इसलिये मेरी रक्षा को मेरे आस-पास आ गये। मगर पिता जी ने उन सब को दूर हटने के लिये हाथ का इशारा किया और फिर मुझसे पूछा—

"तो तुमने पतलून कैसे फाड़ा?"

"स्कूल में फट गया ... कील में उलझकर ..."

"कैसे, कैसे, ज़रा दोहराओ तो ..."

"कील में उलझकर।"

"किस जगह?"

"स्कूल में।"

"कब?"

"आज।"

पिता जी का तमाचा ज़ोर से मेरे गाल पर पड़ा।

"अब बताओ कि पतलून कैसे फटा?"

मैं चुप रहा। पिता जी ने दूसरे गाल पर एक और तमाचा मारा।

"अब बताओ।"

मैं रो पड़ा।

"रोना बन्द करो!" पिता जी ने आदेश दिया और कोड़ा उठा लिया।

मैने रोना बंद कर दिया। पिता जी ने कोड़ा सटकारा।

"अगर अभी सब कुछ सच सच नहीं बता दोगे, तो कोड़े से पिटाई करूंगा।"

मै जानता था कि सिरे पर सख्त गांठवाला यह कोड़ा क्या मुसीबत है। कोड़े के डर ने सच के डर पर बाजी मार ली और मैने अपनी दिन भर की सारी हरकते सिलसिलेवार कह सुनायीं।

मुकदमे की कारवाई खत्म हो गयी। तीन दिन तक मै बहुत परेशान रहा। घर और स्कूल का जीवन तो जैसे अपने आम ढंग से ही चलता रहा, मगर मेरे मन को चैन नहीं था। मै जानता था कि अभी पिता जी से एक बार फिर बातचीत होगी। इतना ही नहीं, अब मै खुद इस बातचीत के लिये बड़ा उत्सुक था, इसकी प्रतीक्षा मे था। इन दिनो मे मेरे लिये सबसे अधिक यातना की बात तो यह थी कि पिता जी मेरे साथ बातचीत नहीं करना चाहते।

तीसरे दिन मुझसे कहा गया कि पिता जी ने बुलाया है। उन्होंने मुझे अपने पास बैठाया, सिर पर हाथ फेरा, यह पूछा कि स्कूल मे हम आजकल क्या पढ़ रहे है, कि मुझे कैसे अंक मिल रहे है। इसके बाद अचानक यह सवाल किया –

"जानते हो कि मैने किसलिये तुम्हारी पिटाई की थी?"

"हां, जानता हूं।"

"जरा सुनूं तो कि तुम क्या समझते हो?"

"इसलिये कि मैने जुआ खेला था।"

"नहीं, इसके लिये नहीं। बचपन मे कौन जुआ नहीं खेलता? मैने भी खेला और तुम्हारे बड़े भाइयो ने भी।"

"इसलिये कि पतलून फाड़ डाला।"

"नहीं, इसके लिये भी नहीं। बचपन मे हममे से किसने पतलून या कमीजें नहीं फाड़ीं? इतनी ही गनीमत है कि सिर सलामत है। तुम कोई लड़की तो हो नहीं कि नाक की सीध मे आओ जाओ।"

"इसलिये कि स्कूल नहीं गया।"

"हां, यह तुम्हारी बहुत बड़ी ग़लती थी। इसी से उस दिन तुम्हारी सारी मुसीबतें शुरू हुईं। इसके लिये और इसी तरह पतलून फाड़ने तथा जुआ खेलने के लिये तुम्हारी डांट डपट होनी चाहिये थी। ज्यादा से ज्यादा

मने तुम्हारे कान ऐंठ होते। मेरे बट, मने तुम्हारे झूठ के लिये ही तुम्हारी पिटाई की। झूठ – यह भूल नहीं, सयोग से होनेवाली बात नहीं, यह हमारे चरित्र का एक लक्षण है, जो जड जमा सकता है। यह तुम्हारी आत्मा के खेत मे भयानक जगली घास है। अगर उसे वक्त पर न उखाड फेंका जाये, तो वह सारे खेत मे फल जायेगी और अच्छे बीज के फूट निकलने की कहीं भी जगह नहीं बचेगी। झूठ से ज्यादा खतरनाक और कोई चीज इस दुनिया मे नहीं है। इससे पिड छुडाना मुमकिन नहीं होता। अगर तुम एक बार फिर मुझसे झूठ बोलोगे, तो म तुम्हे मार डालूगा। इस घडी से तुम हमेशा सिफ सच ही बोलोगे। टेढ़े नाल को तुम टेढा नाल, घडे के टेढे हत्थे को टेढ़ा हत्था और टेढ़े खम्भ को टेढ़ा खम्भ ही कहोगे। समझ गये?"

"समझ गया।"

"तो जाओ।"

म वहा से चल दिया और मन मन ही मन कभी भी झूठ न बोलने की कसम खाई। इसके अलावा म यह भी तो जानता था कि अगर मने फिर से झूठ बोला, तो पिता जी अपने कहे हुए शब्दों को सच कर दिखायेंगे और चाहे मुझे कितना ही अधिक प्यार क्यो न करते हो, वे मुझे मार डालेंगे।

बहुत सालो बाद मने अपने एक दोस्त को यह घटना सुनायी।

"अरे?" मेरे दोस्त ने हैरान होकर कहा, "तुम अभी तक अपने उस छोटे-से, उस तुच्छ झूठ को नहीं भूले?!"

मने जवाब दिया –

"झूठ, झूठ है और सच, सच। ये छोटे-बडे नहीं हो सकते। जीवन, जीवन है, मौत, मौत। जब मौत आती है, तो जिन्दगी खत्म हो जाती है। इसके उलट, जब तक जिन्दगी की गर्मी बनी रहती है, तब तक मौत नहीं आती। ये साथ-साथ नहीं रह सकतीं। एक दूसरी का अन्त कर देती है। सच और झूठ के बारे मे भी ऐसा ही है।

झूठ – यह है शम की बात, यह है गन्दगी और कूडा-करकट। सच – यह है सुन्दरता, स्वच्छता और निमल आकाश। झूठ – कायरता है, सच – साहस है। या तो सच है या झूठ और इन दोनो के बीच की कोई चीज नहीं हो सकती।

अब जिस वक्त मुझे झूठे लेखको की झूठी रचनायें पढ़नी पडती ह, तो मुझे पिता जी के कोडे की बहुत याद आती है। कितनी सख्त जरूरत है उसको! कितनी सख्त जरूरत है कठोर और न्यायपूण पिता की, जो सही वक्त पर यह धमकी दे सके–"अगर झूट बोलोगे–तो मार डालूगा।" मगर हे अल्लाह, कितना झूठ बोला जाता है आजकल और उसकी सजा भी कोई नहीं।

काश झूठ ही सजा पाये बिना रहता! क्या सच के लिये लोगो को दण्ड नहीं मिलता? क्या इतिहास मे ऐसे उदाहरणो की कमी है, जब *लोगो को सच के लिए सजा दी गयी, जब सच के लिये उनपर कोडे* बरसाये गये?!

बचपन मे मुझे सच से इनकार करने के लिये बहुत साहस की जरूरत महसूस होती थी। कारण कि उससे इनकार करने पर राहत मिलने के बजाय सबसे भयानक यातना यानी आत्मा की भत्सना का सामना करना पडता है।

साहसी लोग अपनी आस्थाओ को कभी नहीं बदलते। उन्हे मालूम है कि पथ्वी घूमती है। उन्हें मालूम है कि सूरज पथ्वी के गिद नहीं, बल्कि पथ्वी सूय के गिद घूमती है। उन्हे मालूम है कि रात के बाद जरूर सुबह होती है, फिर दिन निकलता है और दिन के बाद रात आती है जाडे के बाद वसन्त आता है और वसन्त के बाद प्यारी गर्मी

और कुछ ऐसा ही होता है कि आखिर आत्मा का कोडा, प्रतिष्ठा का कोडा, सच का कोडा झूठो और ढोगियो को चित कर देता है और झूठ कभी भी सच पर विजयी नहीं हो पाता।

गाव के चौपाल मे हुई बातचीत से।

"सच और झूठ के बीच कितना फासला है?"

"दो इच का।"

"वह क्यो?"

क्योंकि कान से आख तक भी दो इच का ही फासला है। जो कुछ अपनी आखो से देखा गया है, वह सच है, और जो कुछ कानो से सुना गया है, झूठ है।"

खर, ऐसा ही सही। इसमे कोई सन्देह नहीं कि सौ बार सुनने के बजाय एक बार देख लेना ज्यादा अच्छा होता है। मगर लेखक को तो

हर चीज से सचाई ग्रहण करनी चाहिये – उससे भी जो देखे, उससे भी जो सुने, जो पढ़े और जो स्वयं लिखे।

क्या लेखक के लिए सिर्फ आंखों पर भरोसा करना ही काफी होगा? जिन्दगी को देखता है वह अपनी आंखों से, मगर सगीत सुनता है कानों से और अपने देश के इतिहास को पढ़ता है। कुछ लेखक तो न आंखों और न कानों को, बल्कि अपनी सूझ को शक्ति को ही प्रथम स्थान प्रदान करते हैं।

लेखक को सभी तरह के काम करने लायक मजबूत हाथों मजबूत टांगों और मजबूत दांतों की जरूरत होती है। इसलिए कि वह जो कुछ देखता है, सुनता और पढ़ता है, उस सब में हमेशा झूठ-सच, सोने और दूसरी चमकीली सस्ती धातुओं, अनाज और भूसे का अन्तर कर सके, उसे अक्ल और ज्ञान की भी जरूरत होती है। अक्ल और ज्ञान के बिना आदमी अपनी आंखों पर भी भरोसा नहीं कर सकता।

किसी पहाड़ी गांव के अबोध लोगों को जिन्होंने सोने को कभी देखा नहीं था, मगर उसके बारे में सुना बहुत था, एक भारी सन्दूक कहीं पड़ा मिल गया। उन्होंने सोचा – "चूंकि भारी है, इसलिए जरूर सोने का है।" हाथ आये इस माल के लिए वे आपस में भिड़ गये और उन्होंने एक दूसरे की जान ले ली। मगर सन्दूक तो तांबे का था।

प्रतिमा – आग है। मगर किसी मूढ़ के हाथ में आग सब कुछ जलाकर राख कर सकती है। अक्ल ही उसे रास्ता दिखाती है। अक्ल तो खूबसूरती को भी उसी तरह काबू में करती है जैसे अनुभवी घुड़सवार तेज घोड़े को।

दो पहाड़ी आदमियों से पूछा गया तुम क्या चाहते हो – जवान आदमी का खूबसूरत चेहरा या बूढ़े की समझदारी?

बद्धू ने खूबसूरत चेहरा चुना मगर बेवकूफ ही बना रहा। खूबसूरत बेवकूफ को उसकी बीवी छोड़कर चली गयी। अक्लमन्द ने समझ चुनी और समझदारी की बदौलत उसकी बीवी उसके पास ही बनी रही। एक लोक कथा में भी यही बताया गया है कि समुद्री घोड़े के जीन पर सुन्दरी को वही सवार कर पाया था, जिसने अपने लिये अक्ल को चुना था। एक अन्य लोक कथा में तीन भाइयों, तीन राहों और तीन बुद्धिमत्तापूर्ण नसीहतों का जिक्र आता है। जिसने इन नसीहतों पर कान दिया, वह तो अपने घर

लौट आया और जिसने इतनी पुकार की थी, वह परायी धरती पर ही दूर होकर रह गया।

ओ मेरी वरदायिनी सुनहरी मस्ती, मुझे प्रतिभा दो, लगन दो, जवान का सच्चा और उत्साही दिल दो और बुजुर्ग की सुलझी हुई अक्ल दो! सही रास्ता चुनने में मेरी मदद करो!

यह रास्ता बेशक कंकड़ों पत्थरोंवाला हो, मुश्किल और खतरनाक हो। मगर मैं उसपर साँप की भाँति दायें-बायें बल नहीं खाना चाहता। "साँप टेढ़े-मेढ़े क्यों होते हैं?" पहाड़ी लोग यह सवाल करते हैं और खुद ही जवाब देते हैं – "क्योंकि वे सूराख और खड्ड टेढ़े मेढ़े होते हैं, जिनमें से उन्हें रेंगना पड़ता है।" मगर मैं तो साँप नहीं, आदमी हूँ। मुझे ऊँचाई, स्वच्छ हवा और सीधे रास्ते पसन्द हैं।

मुझे बीमारी और भय, बाज़िल ख्याति और हल्के-सतही विचारों से बचाओ!

मुझे नशे से बचाओ, क्योंकि नशे में आदमी को हर अच्छी चीज सौ गुना ज्यादा अच्छी लगती है!

मुझे सूफ़ी होने से भी बचाओ, क्योंकि सूफ़ी को हर बुरी चीज सौ गुना ज्यादा बुरी लगती है!

सच्चाई के लिये मुझमें ऐसी भावना पैदा करो कि मैं टेढ़े को टेढ़ा और सीधे को सीधा कह सकूँ!

बड़ी बुरी है, बड़ी बतुकी है यह दुनिया
इतना कहकर ऊबे कवि ने छोड़ा जग संसार
बड़ी सुहानी, बेहद सुन्दर है यह दुनिया
कहा दूसरे कवि ने इतना जग में गया सिधार।

मगर तीसरे कवि ने दुनिया ऐसे छोड़ी
मौत न जिस पर विजयी होती समय न करता वार,
बुरा बुरे को, सुन्दर को सुन्दर कहता था
इसीलिये तो मरा अमर वह यही अमरता सार।

किसी पहाड़ी आदमी ने अपनी गाय के कानों में झुमके डाल दिये ताकि परायी गउओं से उसका भेद हो सके। किसी पहाड़ी आदमी ने

अपने घोड़ों की गर्दन में घण्टियां डाल दीं ताकि पड़ोसी के घोड़ों के साथ अपने घोड़े को न गड़बड़ाये। मगर यह जुगत तो किसी भी काम का नहीं, जो रात के वक्त भी अपने प्यारे घोड़े को दूर से ही न पहचान ले।

मेरी किताब आपके सामने है। मैं इसे न तो झुमके पहनाना चाहता हूं, न घण्टियां और न कोई दूसरे गहने ही। अपनी या परायी अन्य किताबों के साथ मैं इसे नहीं गड़बड़ाऊंगा। ऐसे ही लोग भी न गड़बड़ायें। चाहे इस किताब का मुखावरण फटा हुआ हो, फिर भी जो कोई इसे पढ़े, फौरन यह कह दे कि इसे त्सादा गांव के हमज़ात के बेटे रसूल ने लिखा है।

कहते हैं कि साहस यह नहीं पूछता कि चट्टान कितनी ऊंची है।

सशय

मेरी सभी किताबें मेरी राहें हैं
जिन पर कभी चला सहमा सा, कभी निडर
कभी गिरा जाकर खड्डा में, गड्ढा में
कभी चढ़ा ऊंचे ऊंचे, छू लिया शिखर।

मेरी सभी किताबें खूनी जीना सी
क्या हमको मालूम कि जब चढ़ते ऊपर,
नाम हमारा चमकेगा इस दुनिया में
या कि व्यर्थ ही रक्त बहेगा धरती पर।

दागिस्तान मे बहुत-सी भाषायें है, बहुत से स्थानीय रग ढग है! यहा के लोग बहुत-से विभिन्न रस्म रिवाजो को सुरक्षित रखे हुए है। तात लेखक हिज़ग़ील अवशालूमोव ने ऐसे ही एक रिवाज की मुझसे चर्चा की।

किसी पहाडी के यहा अगर बच्चे नहीं होते थे, तो पति ऊन की पेटी बाध लेता था ताकि अल्लाह दूसरे पहाडी लोगो मे उसे अलग से पहचान ले। साथ ही वह अल्लाह से यह दुआ भी करता था—

"ओ अल्लाह, अपने इस बेचारे गुलाम पर रहम करो। उसे बेटा दे दो।"

ऐसी ही पेटिया वे भी बाधते थे, जिनके सिर्फ बेटिया ही पैदा होती थीं और वे भी, जिनके बच्चे दुबले पतले, अधे, बहरे, लगडे लूले, टेढे मेढे अगोवाले, गूगे, कुबडे या कुछ कुछ पागल होते थे। ऐसी पेटी पहननेवाला पहाडी यह यकीन करता था कि अगली बार अल्लाह उसे स्वस्थ और तगडा बेटा देगा, जो सचमुच ही असली बहादुर जोगित बनेगा।

मेरे मन में भी ऐसे ही संशय पैदा होते हैं। क्या मैं भी वैसी ही पेटी न बांधना शुरू कर दूं जैसी कि यह संशय करनेवाले तात लोग पहनते हैं कि उनका भावी बच्चा स्वस्थ होगा या नहीं स्वस्थ होगा? मेरी नई किताब बेटा और जीवित होगी या वह विकलांग, कुबड़ और गूंगे-बहरे बच्चे का रूप लेगी?

हां, हर मां को अपना बच्चा बहुत प्यारा लगता है। मातायें अपने बच्चों की त्रुटियां को देखती भी हैं और फिर भी अनदेखा कर देती हैं। मेरी किताब के सिलसिले में भी कहीं ऐसा ही न हो जाये।

मेरा दिल डरता है। मेरी लेखनी कांपती है। सन्देह मुझपर हावी होते हैं। मैं बिल्ली को उकाब समझकर तो कहीं निशाना नहीं साध रहा हूं? गधे को घोड़ा समझकर कहीं मैं उसी पर तो सवारी नहीं कर रहा हूं? क्या मैं उस आखालचाखावासियों की भांति शहतीर को लम्बाई के रुख रखने की बेकार कोशिश तो नहीं कर रहा हूं, जबकि उसे चौड़ाई के रुख रखना चाहिये था और इसीलिये वह छोटा पड़ रहा था? क्या मैं हारीकुलीवासी की तरह अपने चूल्हे के पास बैठा-बैठा ही आनदी के किले पर तो धावा नहीं बोल रहा हूं?

पुस्तक की समाप्ति के पहले मैं अपने को उस कसाई की तरह महसूस कर रहा हूं, जो भेड़ का कूल्हा काटते-काटते दुम तक जा पहुंचे और तभी उसका छुरा टूट जाये। मैं अलम तक पहुंच सकूंगा? क्या फल सामने आयेगा? सागर की गहराई से मैं खाली सीपी लेकर आ रहा हूं या उसमें से बढ़िया मोती निकलेगा?

तेज आंधी वृक्ष की टहनी या उसका तना भी तोड़ सकती है। मगर वसन्त में जड़ों से पुनः नयी शाखायें निकल आयेंगी और नया वृक्ष बढ़ने लगेगा। पर यदि वृक्ष को फफूंद लग जाये, वह उसे भीतर से खा जाये, अगर वह वृक्ष की जड़ों को ही खोखला कर डाले, तब कुछ भी नहीं हो सकेगा। इन्सान के बारे में भी ऐसी ही बात है। अगर उसे कोई बाहरी चोट आ जाये, घाव हो जाये, यहां तक कि अगर उसकी हड्डी भी टूट जाये, तो वह भी जल्दी से ठीक हो सकती है। पर शरीर के अन्दर, कहीं गहराई में पैदा हो जानेवाली बीमारी तो जरूर ही जान लेकर जाती है। मेरी किताब स्वस्थ है या नहीं, उसकी जड़ें काफी मजबूत और भरोसे के लायक हैं या नहीं?

मेरी किताब जवान हो गये बेटे के समान है। पहाड़ी घर उसे तंग महसूस होता है। अब उसे लोगों में भेजने, अपनी राह पकड़ने, बड़ी दुनिया में रवाना करने का वक्त आ गया है। कैसा बर्ताव होगा उसके साथ वहां—उसे प्यार मिलेगा या डांट फटकार? खिला पिलाकर सुलाया जायेगा या दहलीज से दुतकार दिया जायेगा? अब मेरे बस में कुछ नहीं है।

कविता हुई समाप्त तुम्हारा बुना गया कालीन
किन्तु रुको कुछ देर, अभी मत इतराओ,
कोने गांठो इधर उधर धागे काटो
नजर नमूनों पर तुम फिर से दौड़ाओ।

कविता हुई समाप्त कि पूरा [illegible] बुना
पर मन [illegible] है [illegible] जाओ
फिर से जाकर देखो हर रेखाओं को
सम्भव है तुम दोष [illegible] रही, [illegible] पाओ।

मेरी किताब तो समाप्त हो चुके ऐसे कालीन के समान है, जिसे बिछा दिया गया है ताकि पहली बार उसे पूरी तरह एकबारगी देखा जा सके। मुझे उसमें अनेक गलत रेखायें, दोषपूर्ण नमूने और अस्पष्ट बेल-बूटे दिखाई दे रहे हैं, सजावट कहीं-कहीं कच्ची और टेढ़ी मेढ़ी है। मगर इन गलतियों को अब ठीक करना मुमकिन नहीं, क्योंकि कालीन बुना जा चुका है। उसका छोटे से छोटा दोष दूर करने के लिये भी सारे कालीन को उधेड़ना होगा।

मेरी किताब तो बहुत लम्बे और कठिन रास्ते के बाद घर लौटने के समान है। दो साल तक मैं घर पर नहीं रहा। गांववाले, पड़ोसी, यार दोस्त और बूढ़े जवान दो साल तक मेरे बारे में कुछ नहीं सुन पाये। तो मैं गांव के छोरवाले घर के पास ही घोड़े से नीचे उतर जाता हूं और लगाम थामकर धीरे धीरे घोड़े के साथ चल पड़ता हूं। पहाड़ी औरत ने अपनी खिड़की में जो दीपक जलाकर रख दिया था, ताकि मेरा रास्ता रोशन रहे, उसे अब बुझाया जा सकता है। मैं घर लौट रहा हूं। सलाम, मेरे गांववालो! मैं दो साल की यात्रा के बाद घर लौट रहा हूं। इन दो सालों के दौरान मेरा घोड़ा बूढ़ा गया है। मेरे बाल भी कुछ और ज्यादा पक गये हैं। घोड़े की लगाम थामे हुए मैं धीरे धीरे गांव की सड़क पर जा रहा हूं और हर मिलनेवाले से कहता हूं—

"अस्सलामालेकुम!"

"वालेकुम सलाम, हमज़ात के बेटे रसूल! तुम्हारा सफ़र कैसा रहा? थक तो नहीं गये? क्या लेकर आये हो? तुम्हारी बगलियों में क्या भरा हुआ है?"

मैं लोगों से कहना चाहता हूं कि उनके लिये एक नयी किताब लाया हूं। मगर किताब तो ऐसी चीज़ है, जो न तो गांववालों और न ही किसी अन्य व्यक्ति के हाथों में दी जा सकती है। सबसे पहले तो उसे प्रकाशक के हाथ में जाना होगा और वही उसकी क़िस्मत का फ़ैसला करेगा।

प्रकाशक ने मुझसे पाण्डुलिपि लेकर उसे हाथों में तौला, इधर उधर घुमाया, उसके पृष्ठ उलटे-पलटे—सबसे पहला, फिर एक बार ही सरसरी और फिर आख़िरी पृष्ठ और पाण्डुलिपि को सुरक्षित जगह पर एक तरफ़ को रख दिया।

"मुमकिन है कि तुम्हारी किताब अच्छी ही हो, मगर हमारी तो इस साल और अगले साल की प्रकाशन योजनायें बन चुकी हैं, उनकी पुष्टि भी हो चुकी है। तुम्हारी किताब तो हमारी योजनाओं में नहीं है।"

"यह तो मेरी अपनी योजना में भी नहीं थी। बिल्कुल अचानक ही आ गयी है। अब क्या किया जाये इसका?"

"अपनी तरफ़ से अर्ज़ी लिख दो। इसे देख लेंगे, सोच विचार कर लेंगे, किसी नतीजे पर पहुंच जायेंगे। सम्पादकमण्डल की विशेष योजना में स्थान दे देंगे। एक साल बाद इसी वक़्त या तो आ जाना या टेलीफ़ोन कर लेना।"

प्रकाशनगृह के नाम अबूतालिब का पत्र।

"दाग़िस्तान के आदरणीय प्रकाशनगृह! मैं आपका जन-कवि हूं, दाग़िस्तान की सर्वोच्च सोवियत के अध्यक्षमण्डल का सदस्य हूं, विशेष पेंशन पाता हूं। इस साल मैं पचासी बरस का हो जाऊंगा। मैं जानता हूं कि अगर क़िस्मत की मुझपर टेढ़ी नज़र हो जाये और मैं इस दुनिया से कूच कर जाऊं, तो आप मेरी कविताओं के दो बड़े ग्रन्थ निकालने का निर्णय करेंगे। मेरी आपसे यह प्रार्थना है कि उन दो ग्रन्थों के बजाय, जो आप मेरी मौत के बाद छापने का इरादा रखते हैं, अभी, जबकि मैं ज़िन्दा हूं, मेरी एक किताब छाप दें। सादर, आपका अबूतालिब।"

ऐसी अर्जी लिखते हैं शांत और भले लोग। मगर ऐसी भी अर्जियां होती हैं, जिनमें शिकायत भरी रहती है, खूब कोसा जाता है। ऐसी भी अर्जियां होती हैं, जिनमें अपनी तारीफों के पुल बांधे जाते हैं। चापलूसी से भरी अर्जियां भी होती हैं। खीझ गुस्से और चीख चिल्लाहट वाली अर्जियां भी लिखी जाती हैं।

प्रकाशनगृहों को लिखी जानेवाली नहीं, बल्कि उनके विरुद्ध लिखी जानेवाली अर्जियां ही सबसे ज्यादा खतरनाक होती हैं। प्रकाशकों की कठिनाइयों को भी समझना चाहिये। अगर कुर्सी पर एक ही आदमी के बैठने की जगह है, तो उसपर तीन या चार आदमी तो नहीं बैठ सकते। अगर दो भी देर तक बैठे रहें, तो उन्हें भी तक्लीफ होगी। कोई कहता है– "आप अहमद की किताब क्यों छाप रहे हैं और मेरी किताब क्यों नहीं छापना चाहते? क्या मैं उससे बुरा हूं?" दूसरा चिल्लाता है–"मेरी किताब उन सभी किताबों से अच्छी है, जो तुमने पिछले सालों में छापी हैं? इस बार भी मुझे योजना में क्यों नहीं रखा गया?"

नहीं, मैं प्रकाशक से झगड़ा नहीं करना चाहता। मैं इन्तज़ार करने को तैयार हूं। मुझे मालूम है कि प्रकाशकों के पास हमेशा कागज़ की कमी रहती है। कागज़ चला कहां गया? उसे लेखक, जिनमें मैं भी शामिल हूं, खराब करते हैं। इसलिये मैं क्यों उन्हें भला-बुरा कहूंगा! हां, कभी कभी कागज़ खराब होने के बजाय उसपर कुछ ऐसा रचा जाता है कि वह लेखक और प्रकाशक के इस दुनिया से चल जाने पर भी ज़िन्दा रहता है। ओह, मेरी यह बहुत ही बड़ी अभिलाषा है कि कागज़ के किसी टुकड़े पर ऐसे शब्द लिखे जायें, जो अमृत की भांति उसका उस हरे भरे और सजीव वृक्ष में कायाकल्प कर दें, जिससे कभी वह कागज़ बनाया गया था।

नहीं, मैं प्रकाशक से झगड़ा नहीं करना चाहता। मैं तो शान्तिपूर्वक उससे यह कहता हूं–

"आप मेरे और मेरे गांववालों के बीच, मास्को और अन्य नगरों के मेरे पाठकों और मेरे बीच खड़े हैं। आप तो हमारी बीच की, हमें जोड़नेवाली कड़ी हैं। कृपया, मेरा अनुरोध मानते हुए कुछ ऐसा कीजिये कि हमारे हाथ दोस्ताना ढंग से मिल जायें। मैं आपकी मिन्नत करता हूं।"

प्रकाशक मेरे इस शान्तिपूर्ण अनुरोध के सामने झुक जाता है और मेरी पाण्डुलिपि फौरन सम्पादक के हाथ में पहुंच जाती है।

सम्पादक।

"संक्षिप्त करो!" उसके दरवाज़े पर यह लिखा है।

प्रकाशक ने कहा था—"एक साल बाद आना।" सम्पादक ने तीन हफ्ते बाद आने को कहा। इस अवधि से तो मुझे खुशी भी हुई, क्योंकि इसी बीच आपको छोटे छोटे तीन क़िस्से भी सुना लूगा।

एक मम्पादक को कैसे खिडकी से बाहर फेंक दिया गया। एक अवार कवि मववप के अक मे प्रकाशित कराने क लिये अपनी कवितायें लेकर एक अखबार के दफ्तर मे पहुचा। कवितायें पसन्द आइ और छाप दी गयीं।

कवि बहुत खुश हुआ और उसी दिन उसके घर पर यार दोस्तो की महफ़िल जमी। कवि ने बडी शान से अखबार खोला और ऊचे ऊचे अपनी कवितायें सुनाने लगा। अचानक उसके चेहरे का रग उड गया, उसने बायें हाथ से ऐसे दिल थाम लिया मानो उसमे तीर जा लगा हो। अखबार उसके हाथ से नीचे गिर गया। दोस्त लपक्कर उसके पास आये, उन्होने उसे सम्भाला, पानी पिलाया कवि के होश ठिकाने होने पर उसकी ऐसी हालत हो जाने का कारण पता चला। हुआ यह था कि उसकी कविताओं में से चार पक्तिया गायब थीं। कवि अखबार के दफ्तर मे भागा गया।

"आपकी अखबार रूपी चरागाह मे मने जो अपनी भेड़ें चरने के लिये छोडी थीं, उनमे से चार सबसे अच्छा भेडो को किसने जिबह किया है?"

समाचारपत्र के सम्पादक ने बडी शान्ति से जवाब दिया—

"मने   क्या बात है?"

"तुमने ऐसा क्यो किया?"

"इसलिये कि कुछ बहुत जरूरी सामग्री आ गया थी, जगह की कमी थी।"

"पर यदि तुम कवि की अनुमति के बिना उसकी कविता को पक्तिया निकाल फेंक सकते हो, तो म खुद तुम्हे ही अभी खिडकी से बाहर फेंके देता हू।'

कवि की रगो मे गम अवार खून था। उसने सम्पादक को गदन और टागो से पकडकर सचमुच ही खिडकी से बाहर फेंक दिया। इतनी ही

गरियत कहिये कि यह घटना दूसरी मजिल पर घटी और खिडकी के नीचे नम क्यारी थी। अदालत मे कवि ने कहा – "खून का बदला खून! दात का बदला दात! उसने मेरा सम्पादन किया और मने उसका सम्पादन कर डाला।"

कहते ह कि यह "सम्पादित" सम्पादक अभी भी कविताओं की काट छाट करता रहता है (इसके बिना तो वह शायद सम्पादक ही नहीं हो सकता), मगर अब वह कवियो की पहले से अनुमति ले लेता है।

नोटबुक से। मेरे पिता जी ने 'मोची' और 'कोदोलाव की शादी' नामक दो नाटक लिखे। शुरु मे वे थियेटर मे गये, फिर सस्कृति विभाग मे और उसके बाद दागिस्तान के कला-सचालन-कार्यालय मे जा पहुचे। पिता जी को पक्की तरह यह मालूम था कि वे वहा गये ह और वहा से किसी दूसरी जगह नहीं गये ह। मगर वहा भी उनका कोई अता पता नहीं था।

बुरे मौसम के बावजूद जिस तरह चरवाहा चरागाह मे रह गयी भेडो की खोज मे निकल पडता है, वसे ही पिता जी भी अपने नाटकों को तलाश मे निकल पडे।

सचालन-कार्यालय मे केवल नाटको से सम्बन्ध रखनेवाला एक आदमी बठा था। उसे भी सम्पादक ही कहा जाता था। पिता जी कोई एक घण्टे से ज्यादा वक्त उससे बातचीत करते रहे और अचानक उन्हे यह महसूस हुआ कि जब तक मौसम, चरागाहो, भेडो और गउओ तथा घोडो का जिक्र होता रहता है, तो बातचीत मे रगीनी रहती है, मगर जसे ही साहित्य और नाटक-कला की चर्चा होने लगती थी, वसे ही उनके पल्ले कुछ भी नहीं पडता था। इसपर तुर्रा यह कि सम्पादक लगातार नाटक-कला की ही चर्चा करने की कोशिश करता था, पिता जी को अच्छे नाटक लिखने के बारे मे उपदेश और नसीहते देता था। आखिर पिता जी से बर्दाश्त न हुआ और उन्होने साफ-साफ ही पूछ लिया कि वह आदमी है कौन, उसने क्या शिक्षा पाई है और कला-सचालन-कार्यालय मे आने से पहले कहा काम कर चुका है।

म उच्च शिक्षा प्राप्त हू,' सम्पादक ने शान से जवाब दिया। "पेशे से पशु चिकित्सक हू। अब इस काम पर लगा दिया गया हू।"

"तो क्या मेरे नाटक गजल हैं कि तुम उनका इलाज करने की कोशिश कर रहे हो! कवि भला पशु चिकित्सकों को कभी सलाह क्यों नहीं देते? मगर कवियों को जिसका भी जो चाहता है, सीख देने लगता है।'

कहीं मेरी किताब भी तो किसी ऐसे ही सम्पादक के हाथों में नहीं पड़ रही है, जो पहले पशु चिकित्सक था?

ग़ालिब और सम्पादक। ग़ालिब की पाण्डुलिपि को सम्पादक ने बस ही नोच खसोट डाला जैसे रणक्षेत्र में खेत रहे सैनिक की लाश को कौवा नोच डालता है। इसी नुची हालत में उसके प्रूफ ग़ालिब के पास आये। ग़ालिब ने उन्हें पढ़ा और हैरान होकर कहा—

"मेरे हरे भरे मैदान को घास ने रौंद डाला है। जहाँ पहले फूल थे, वहाँ अब दलदल है। अगर कोई छात्र इमले में कुछ गलतियाँ करता है, तो अध्यापक उन्हें सुधारता है। मगर यह कौन-सा अध्यापक है, जो यह जानता है कि मेरे जीवन में क्या सही और क्या गलत था?'

ग़ालिब ने बहुत ध्यान से प्रूफ पढ़े और अचानक कह उठे—

"मैं जानता हूँ कि मेरा सम्पादक किस गाँव का रहनेवाला है। वह मेरी किताब को अपने गाँव की बोली के मुताबिक सुधारना चाहता है। बेशक बोलियाँ अनेक हैं, पर भाषा एक, जनता एक है! अगर हर सम्पादक अपने गाँव की बोली की तरफ ही खींचने की कोशिश करेगा, तो हम अपनी कविता का गाँव कभी नहीं बसा पायेंगे।'

मेरे सम्पादक, यह याद रखना कि तुम्हारे गाँव के अलावा दुनिया में और स्थान भी हैं, तुम्हारे अलावा और लोग भी हैं। वैसे तो हमारे बीच मतभेद नहीं हो सकता। तुम्हारी टिप्पणियों से अगर कोई लाभ हो सकेगा, तो मैं जरूर उनका उपयोग करूँगा। मगर तुम्हें यह याद रखना चाहिये कि अपने गीत के प्रति मैं कुल बरस की सी गहरी भावना रखता हूँ। ऐसी भावना मुझमें अभी नहीं आई है। जवानी के दिनों में लिखी गयी मेरी एक कविता ऐसे ही शुरू हुई थी—

> अपने दिल में रहा सहेजे मैं वांछित प्रतिशोध सा
> अपनी कविताओं का स्पन्दन औ' सिहरन
> गुप्त प्यार सा रहा बचाता अपने प्यारे गीतों को
> जग की बुरी बुरी नजरों से, मैं हर क्षण।

बडे प्यार से पाला पोसा उ हें कि जय वे थे नहे
उनकी हर आवाज सुनी कातर रान्न
ऐसे बाधा मन उनका, छन्दा बन्दा म, तुक भ
घडीसाज जडता है जस पुर्जे चुन।

मिलत जुलते एक तरह के ढेरा शब्दा म स म
चन लेता था कुछ का ऐसे काशिश कर
जस वढिया म भी वढिया हम चुन लेते ह मदिरा
प्यारे किसी अतिथि के घर आ जाने पर।

अपनी कविता की यात्रा पर गात हुए चल दता था
और सुवह तक चुनता रहता छवि माला
जस सुदर, मनमाहक गा प्रिय कालीन वनान को
रग सुहाने चुनती ह पवतवाला।

औरा न ता गाया वह जो गाया ह मुझस वहतर
दुख ह, किन्तु नहा मन ऐसा गाया
सफल ढग स व्यक्त किया है या कि नहा मनभावा का?
शब्दा को सुदर-सा चाला पहनाया!

वेशक य कविताय मरा इतना अच्छी नहा वनी
पर शब्दा म मरा कुल जीवन उभरा
मुझ वताआ, मर प्यार, समझदार सम्पादकगण
क्या तुम करत हा उनका कुछ और बुरा?

म हू इनका वाप कि इनको म हा सिफ समझ सकता
किसी और के लिय काम है यह मुश्किल
मुझे वताओ तुमको इन म क्या-क्या दोष अखरता ह
कान एठ म खुद कर दूगा ठाक अकल।

उन दिना मन 'पहाडिन' नाम का एक नाटक लिखा था। वह दागिस्तान के कई थियेटरा मे खेला गया और उसका जा हाल हुआ, वह यह था।

नाटक के अन्त मे घटनाचक्र ऐसा रूप लेता है कि नायक नायिका की हत्या कर डालता है। अपनी पहाडिन के लिये मुझे बहुत अफसोस था और

जब मने हत्या का दृश्य लिखा, तो मेरा हाथ काप रहा था और दिल खून के आसू रो रहा था। मगर म कुछ भी परिवतन नहीं कर सकता था। घटनाचक्र ही पहाडिन की मौत की माग करता था। अवार थियेटर ने उसे इसी रूप मे प्रस्तुत किया। दशकों को नायिका के लिये चाहे दुख और मुझसे भी ज्यादा अफसोस हुआ, मगर वे समझ गये कि इसके सिवा और कुछ हो ही नहीं सकता था।

दागिन थियेटर मे नाटक का सम्पादन कर दिया गया। लडकी की हत्या के बजाय उन्होने उसकी चोटी कटवा दी। बेशक यह सही है कि किसी पहाडिन की चोटी काट देना उसके लिये बहुत ही शम की बात होती है। शायद ऐसा करना मौत से भी बुरा होता है, फिर भी यह मौत तो नहीं होती।

कुमीक थियेटर वालो ने न तो उसकी हत्या करायी और न ही चोटी काटी, बल्कि उसे अधा कर दिया। यह तो बहुत भयानक बात है। शायद यह हत्या करने या चोटी काटने से ज्यादा भयानक बात है। मगर फिर भी पहाडी लडकी चोटी सहित जिन्दा रह गयी, क्योंकि कुमीक थियेटर वालो ने ऐसा चाहा।

चेचेनों न अपने थियेटर मे सबसे ज्यादा आसान रास्ता अपनाया। "किसलिये हत्या करायी जाये," उन्होंने तय किया, "चोटी काटने या अधा करने की भी क्या जरूरत है? पहाडिन को जीने और मौज करने दो।"

तो इस तरह हर निर्देशक ने अपनी इच्छा और विचार के अनुसार नाटक को बदल दिया। मगर किसी न भी उन्हें यह नहीं समझाया कि मेरी नायिका पर तरस खाते और उसकी जान बचाते हुए वे नाटक की हत्या कर रहे ह और नाटककार की बात तो एक तरफ रही, दशकों के साथ भी अन्याय कर रहे ह।

पिता जी ने एक बार वह अखबार मिलने पर जिसमे उनकी कविता छपी थी, हमसे कहा—

"लगता है कि मेरी कविता किन्हीं कसाइयो के हाथो मे हो आयी है। उसका कोई हिस्सा भी तो सही सलामत नहीं बचा।"

महमूद महमूद ने कुछ भी नहीं कहा, क्योंकि उसके जीवनकाल मे उसकी एक भी किताब नहीं छपी थी। पर यदि वह यह देख पाता कि

इसी तरह के किसी सम्पादक ने उसकी कविताओं को कैसे बदल डाला है, तो वह दूसरी बार मर जाता।

आधुनिक कार मे पहाडी पगडंडी पर जाना मुमकिन नहीं। अगर सम्पादकगण परलोक सिधार गये लेखको को भी नहीं छोडते, तो भला म उनसे यह कसे कह सकता हू कि वे मेरी रचना को न छुए?

मगर, मेरे सम्पादक, मने जो कुछ कहा है, उस सबको अपने ऊपर ही लागू नहीं कर लेना। म ऐसे सम्पादको को भी जानता हू जो बडे समझदार और सुलझे हुए सलाहकारो के रूप मे लेखक के पास आते ह। म जानता हू कि तुम भी ऐसे ही हो। लगता है कि तुम्हारे साथ काम करने मे बडा सुख और चन मिलता हे। तुम निश्चित रह सकते हो कि म अपनी पाण्डलिपि के हाशिये मे तुम्हारी खशी व्यक्त करनेवाले विस्मय चिह्नो, तुम्हारी परेशानी जाहिर करनेवाले प्रश्न चिह्नो और उन "तीरो" की तरफ पूरा ध्यान दूगा, जो यह जाहिर करेंगे कि पुस्तक को बेहतर बनाने के लिये तुम इगित पक्तियो को बदल देना चाहते हो।

मेरी किताब मे सम्भवत ऐसी पक्तिया ह, जो ढग से कसी हुई नहीं ह और पुराने सडे हुए दात की तरह हिलती डुलती ह। सम्भवत मने अपने को दोहराया भी है। तुमसे अनुरोध करता हू कि ऐसे स्थल खोज निकालो, उनके नीचे निशान लगा दो, उन्ह मुझे दिखाओ। एक सिर अच्छा होता है और डेढ बेहतर! मुझ आशा है कि हमारे तो एक जसे अच्छे दो सिर और चार हाथ होंगे और हमारा काम खूब बढिया ढग से चलेगा! कल झगडा करने के बजाय आज झडप हो जाने तो ज्यादा अच्छा है। उम्र भर झगडते रहने के बजाय एक बार लड लेना बेहतर है। और सबसे बडी बात तो यह है कि मेरी बहुत ज्यादा तारीफ नहीं करना।

किसी शिकारी ने इसलिये एक खरगोश की तारीफ की कि वह डरा नहीं और उछलकर खुले टीले पर सामने आ गया। शिकारी ने तो उसपर गोली भी नहीं चलाई। खरगोश को घमड हो गया और वह किसी दूसरे शिकारी के सामने भी उसी तरह कूदकर टीले पर आ गया। मगर यह शिकारी दूसरे ढग का था। आप आसानी से हो यह समझ सकते ह कि इसका क्या नतीजा निकला होगा।

म जानता हू कि कुल मिलाकर तो तुम्हारा काम एसा है, जिसके लिये कोई भी तुम्हे धन्यवाद नहीं देता। पाठक जब किताब हाथ मे लेता

है, तो यह देखता है कि किसने उसे लिखा है, किसने उसके चित्र बनाये हैं, मगर वह यह कभी नहीं देखता कि उसका सम्पादक कौन है। बस, कुछ ऐसा ही ढंग है लोगों का!

आम तौर पर ऐसा माना जाता है कि कवि जनता का प्रवक्ता होता है। मगर पता चलता है कि कभी-कभी सम्पादक भी जनता की ओर से बोलता है। एक बार मैं सम्पादक के पास अपने दिल की रानी के बारे में एक प्रेम-गीत लेकर गया। सम्पादक ने उसे एक तरफ को रखते हुए कहा कि वह उसे नहीं छाप सकता।

"क्यों?"

"जनता इसे नहीं पढ़ेगी। जनता को तुम्हारी पत्नी से सम्बंधित कविता से क्या लेना देना है!"

उसी वक्त मैंने यह चतुष्पदी लिखी—

तुझे समर्पित थी जो कविता, सम्पादक ने फिर ठुकरायी
कहा तुम्हारी इस कविता को जनता नहीं पढ़ेगी भाई
लेकिन हां मेरी यह कविता, नहीं मुझे उसने लौटाया
कहा सुनाऊंगा पत्नी को इतनी उसके मन पर छायी।

पिता जी कहा करते थे कि लेखक और कवि मोटर ड्राइवरों के समान होते हैं, जो कुल मिलाकर ढंग से मोटर चलाते रहते हैं, मगर कभी कभी उनसे गलती भी हो जाती है और वे यातायात के नियमों का उल्लंघन कर जाते हैं। इस सिलसिले में सम्पादक मिलीशियामनों के समान होते हैं। पिता जी ने कुछ देर सोचकर एक बार यह पूछा—

"तुम्हारा क्या ख्याल है, एक ड्राइवर के लिये तीन मिलीशियामन कुछ ज्यादा नहीं हैं?"

मगर मिलीशियामनों के बिना भी काम नहीं चल सकता। एक दावत में उपस्थित हर व्यक्ति के लिये बारी बारी से जाम उठाया जाता था। वहां एक मिलीशियामन भी था। दावत के तामादा (चौधरी) ने मिलीशियामन के नाम का जाम उठाया। मगर तभी उपभोक्ता सहकारी समिति के अध्यक्ष ने जो वहां हाजिर था, अपना जाम नीचे रखकर कहा—

"कम्युनिज्म में मिलीशियामन नहीं होंगे। उनका कोई भविष्य नहीं है। किसलिये उसका जाम पिया जाये?"

मिलीशियामन ने इसका यह जवाब दिया—

"कम्युनिज्म में मिलीशियामन होंगे या नहीं यह इस बात पर निर्भर करता है कि वहां उपभोक्ता सहकारी समिति होगा या नहीं।"

खैर, मजाक तो मजाक रहे, मेरे सम्पादक, आओ में तुम्हें यह बताऊं कि कौन-से क्षण मुझे सबसे ज्यादा अच्छे लगते हैं? वे, जब हम-तुम कागजों के ढेर के बीच काम की मेज पर नहीं, बल्कि ढंग से सजी हुई खाने की मेज पर बैठे होते हैं। हां, और वे सुखद क्षण भी बीत चुके होते हैं, जब तुम मेरी पाण्डुलिपि पर "कम्पोजिंग के लिये!" इसके बाद 'प्रेस के लिये!" और बाद में 'प्रकाशन के लिये!" लिखते हो। तुम्हारे इशारे के मुताबिक ही किताब की कम्पोजिंग होती है, वह छपती है और पाठकों के हाथ में पहुंचती है। जरा ख्याल तो करो कि तुम कैसे शब्द लिखते हो— "प्रकाशन के लिये!" केवल इसी के लिये तुम्हारे सारे गुनाह माफ किये जा सकते हैं। सिर्फ इसी के लिये जाम उठाया जा सकता है। जल्दी से ये शब्द लिख दो और मैं तुम्हें अपने हस्ताक्षर सहित पहली प्रति भेंट कर दूंगा।

निश्चय ही मैं यह चाहता हूं कि वह वक्त जल्दी से आ जाये, जब दुनिया में कोई भी रहस्य न रहे। मगर क्या हम उसे कवि कह सकते हैं, जो दुनिया के सामने किसी भी रहस्य का उद्घाटन नहीं करता यानी वह नहीं बताता, जो उसे उसके पहले मालूम नहीं होता? मैं कवि हूं और दुनिया में आकर दिक और काल पर से ठीक वैसे ही पर्दा हटाता हूं, जैसे दूल्हा दुलहन के मुंह पर से घूंघट हटाता है। शादी के वक्त केवल दूल्हे को ही ऐसा करने का अधिकार होता है और इसके बाद दुलहन का चेहरा सभी देख पाते हैं। केवल कवि ही जीवन में ऐसा करने में समर्थ है और लोगों का वास्तविकता से साक्षात्कार होता है, वे उसे देखकर आश्चर्यचकित होते हैं, उन्हें उन चीजों के बारे में हैरानी होती है, जिन्हें वे पहले नहीं देख पाये थे—संसार का सौन्दर्य या मानवीय आत्मा का सौंदर्य, जो बुराई की शक्तियों का विरोध करते हैं।

सम्पादक, मैं तुमसे अनुरोध करता हूं कि बातूनियों को वह सब नहीं कहने दो, जो अनकहा ही रहना चाहिये, मगर उसे भी नहीं छिपाओ, जो मैं कवि के रूप में सामने ला रहा हूं। मेरे बेल-बूटों, मेरी सजावट और मेरे नमूनों को सन्देह की दृष्टि से नहीं देखो। अगर मेरे कालीन

के बेल-बूटों मे कहीं कोई गलती भी रह गयी है, तो ऐसा न करना कि उस जगह पर स्याही फेर दो या उसे काट डालो। ऐसा करने से या तो वहा धब्बा पड जायेगा या सूराख हो जायेगा।

इसके अलावा, किसी विचार को इसलिये ग़लत नहीं कहना, कि वह तुम्हारे विचार जैसा नहीं है!

इसके अलावा, रोटी, चीनी, मक्खन और कोला को तुला पर तोला जाता है, मगर प्यार को नहीं!

इसके अलावा, छींट, कमरे की ऊचाई, कब्र की बाड को मीटरो मे मापा जाता है, मगर सौन्दर्य को नहीं!

इसके अलावा, जो सबसे ज्यादा समझदार बनने की कोशिश करता है, वह वास्तव मे जितना मूर्ख होता है, उससे भी ज्यादा मूर्ख सिद्ध होता है!

इसके अलावा, मैं भी वयस्क हू और मुझपर किसी बात के लिये थोडा-सा विश्वास तो करो!

मै यह समझता हू कि एक आदमी के पास अधिक और दूसरे के पास कम रहस्य होते है, क्योकि

अबूतालिब ने कहा है कि अगर पानी सड जाये, तो चाहे वह घुटनो तक ही ऊचा हो, तल दिखाई नहीं देगा।

नोटबुक से। जब मै छोटा था, तो मुझे घर मे सबसे ज्यादा बातूनी माना जाता था। बाहर गली मे जो कुछ सुनता, वह जरूर ही घर पर कह सुनाता और जो कुछ घर पर सुनता, जरूर ही गली मे जा सुनाता।

जब-तब एक बुजुर्ग मेरे पिता जी के पास आते। वे इधर उधर नजर दौडाते और बडे महत्त्वपूर्ण ढग से फुसफुसाकर कहते–

"हमजात, तुमसे दूसरे कमरे मे दो चार बातें कर सकता हू?"

वे दूसरे कमरे मे चले जाते और वहा कुछ खुसुर फुसुर करते। कई बार ऐसा ही हुआ। बुजुर्ग एक बार फिर आये।

"हमजात, दूसरे कमरे में तुमसे दो चार बात कर लू?"

"बस काफी हो चुका यह छल!" पिता जी ने जवाब दिया। "तुम छिपा छिपाकर जो कुछ फुसफुसाते हो, उसे तो हमारे रसूल के सामने भी कहा जा सकता है। इसलिये जो कहना है, कहो और बिल्कुल नहीं डरो।"

हा, मुझे तो बचपन से ही रहस्य पसन्द नहीं थे।

गीतो को खुलकर, ऊची आवाज मे और ऊची जगह पर चढ़कर गाया जाता है ताकि ज्यादा से ज्यादा लोग उन्हें सुन सकें।

इसके अलावा, अपने हर शब्द के लिये म ही जिम्मेदार नहीं हू। मेरा अनुवादक भी तो है।

अनुवादक।

म अवार हू, अवार ही पदा हुआ था और दूसरा कुछ नहीं बन सकता। आख खोलते ही जिन लोगो को मने सबसे पहले देखा, वे भी अवार थे। पहले शब्द भी मने अवार भाषा ही के सुने। मेरे पालने पर झुककर मेरी मा ने जो पहली लोरी गायी, वह भी अवार भाषा मे ही थी। अवार भाषा मेरी मातभाषा बन गयी। मेरी ही क्या, सभी अवार लोगो की यही सबसे मूल्यवान चीज है।

अवार लोगो की सख्या कुछ ज्यादा नहीं है, वे सिफ तीन लाख ह। मगर यह सख्या कुछ कम भी नहीं है। दागिस्तान मे उस भाषा के कवि भी ह, जो सिफ दो हजार लोगो की भाषा है।

राज्य सीमा लोगो को अलग करती हैं, मगर उनकी भाषायें उ हे और भी अधिक अलग करती ह। सीमायें तो बदल जाती ह और कभी-कभी तो बिल्कुल खत्म हो जाती ह या केवल औपचारिक्ता हो बनकर रह जाती ह। मगर भाषा तो किसी जाति के लोगो को सदा-सदा के लिये मिलती है और उसे बदलना या मिटा देना मुमकिन नहीं।

उस जमाने की कल्पना करना भी मुश्किल है, जब अवार लोग पुश्किन से अनभिज्ञ थे, लेर्मोन्तोव को नहीं पढते थे, तोलस्तोय को नहीं जानते थे और चेखोव की रचनाओ का रस-पान नहीं करते थे।

पिता जी कहा करते थे कि यह हमारा बडा सौभाग्य है कि पहाडो मे भी पुश्किन का पेड लग गया है। इस पेड को चाहे कितना ही क्यो न झाडो, उसके मीठे और रसीले फला का कभी अन्त ही नहीं होता।

अबूतालिब कहा करते थे कि उन्हें धन्यवाद देता हू, जिनकी बदौलत मेरे अधेरे तलघर मे प्यारे चेखोव पहुचे! उनका भी शुक्रिया अदा करता हू, जो तलघर से मेरे गीतों को मास्को क क्रेम्लिन की दीवारों तक ले गये!

और मैं कहता हूं कि काबेशिया ने जनरल के सामने नहीं, जवान लेफ्टीनेंट* की कविताओं के सामने सिर झुकाया।

मेरे साथ एक बार एक अनोखी घटना घटी। दागिस्तान में मेरी कविताओं और खण्ड-काव्यों के रूसी अनुवाद का संकलन निकलनेवाला था। सम्पादक ने पाण्डुलिपि के पृष्ठ उलटे-पलटे और बोला –

"तुमने इसमें 'पोल्तावा' खण्ड-काव्य क्यों नहीं शामिल किया?"

"मगर यह तो मेरी रचना नहीं, पुश्किन की रचना है। मैंने तो अवार भाषा में उसका केवल अनुवाद किया है। पुश्किन के खण्ड-काव्य को रूसी भाषा के अपने संकलन में कैसे शामिल कर सकता हूं!"

पर खैर, हम सम्पादक के प्रति कठोरता से काम नहीं लेंगे। वास्तव में दूसरी भाषाओं से अवार भाषा में अनूदित अच्छी रचनाओं के अवार लोग अपनी अवार रचनाओं की तरह ही अभ्यस्त हो गये हैं और उनके बिना हम अपने अवार साहित्य की कल्पना ही नहीं कर सकते।

मुझे मालूम है कि कभी-कभी मेरी पीठ-पीछे ऐसा कहा जाता है – "अरे हां, रसूल है तो लायक आदमी, मगर बहुत नहीं। मास्कोवासी अनुवादकों ने उसके लिये बहुत कुछ किया है।"

मैं इससे इनकार नहीं करूंगा। सच तो यह है कि अगर अनुवादक न होते, तो मैं भी न होता।

पहली बात तो यह है कि उन्होंने मुझे हाइने, बर्न्स, शेक्सपीयर, शेख सादी, सेर्वांतेस, गेटे, डिकन्स, लांगफेलो, ह्विटमन और उन सभी से परिचित होने की सम्भावना दी, जिन्हें मैंने अपने जीवन में पढ़ा और जिनके बिना मैं लेखक ही न बन सकता।

दूसरे, इन अनुवादकों ने ही मेरी कविताओं के लिये मार्ग प्रशस्त किये। वे उन्हें तूफानी नदियों, ऊंचे पर्वतों, मोटी दीवारों, सीमा चौकियों और सबसे मजबूत हदों – दूसरी भाषा की हदों, बहरेपन, अंधेपन और गूंगेपन की हदों के पार ले गये।

कभी-कभी मैं अपने से यह सवाल करता हूं कि क्या चीज अधिक महत्त्वपूर्ण है – अनुवादक का मेरी भाषा जानना (चाहे मेरी कविता उसके

---

*लेर्मोन्तोव से अभिप्राय है। – अनु०।

लिये परायी हो) या यह कि वह मेरी काव्य को अपनी आत्मा, अपने हृदय से जाने समझे और उसे अपना ही माने?

१९३७ मे मास्को मे पुश्किन की कविता 'गाव' के सर्वश्रेष्ठ अनुवाद की प्रतियोगिता आयोजित की गयी। चालीस कवियों ने अवार भाषा मे उसका अनुवाद किया। उनमे से अधिकांश रूसी भाषा जानते थे। फिर भी प्रथम पुरस्कार हमज़ात त्सादासा को मिला, जो उस समय तक रूसी भाषा बिल्कुल नहीं जानते थे।

यह ज़रूरी है कि अनुवादक भी कवि, लेखक, कलाकार हो। यह भी ज़रूरी है कि वह अपने को उसी तरह अपनी जनता का बेटा अनुभव करे, जैसे मै अपने को अनुभव करता हू।

ऐसे रूसी है, जो अवार भाषा पढ़ सकते है, मगर हाय, वे कवि नहीं है। रूसी कवि तो है, मगर हाय, वे अवार भाषा नहीं जानते। तो क्या किया जाये? शब्दश: पक्ति अनुवाद का सहारा लेना पड़ता है।

रूसी गावों मे लट्ठो के घर को एक गाव से दूसरे गांव मे कैसे ले *जाया जाता है, मैने यह देखा है। पूरे का पूरा झोंपड़ा ले जाना तो मुमकिन* नहीं। उसके लट्ठे-कुन्दे और तख्ते अलग करके दूसरी जगह ले जाये जाते है और फिर उन्हें वहां जोड़ा जाता है।

शब्दश: पक्ति अनुवाद भी झोंपड़ा ही है, जिसे दूसरे *स्थान* पर ले जाने के लिये खण्ड खण्ड किया जाता है। यह लट्ठो, तख्तों, छत की लोहे की चादरो और ईटो का ढेर है। अनुवादक इस आकृतिहीन ढेर से नया झोंपड़ा बनाता है। अगर कोई लट्ठा गल-सड़ गया है, तो वह उसे बदल डालता है, अगर कोई तख्ता रास्ते मे खो गया है, तो वह नया तख्ता लगा देता है। अगर खिड़की की नक्काशी वाली तख्ती का कोई बेल-बूटा खराब हो गया है, तो वह उसे ठीक-ठाक कर देता है।

खिड़कियो के शीशे साफ कर दिये जाते है, चूल्हे मे आग जला दी जाती है ताकि चिमनियों मे से धुआ निकलने लगा, दरवाज़े के पास बच्चे खेलने-कूदने लगते है और छत के नीचे अबाबीले घोसले बना लेती है।

शब्दश: पक्ति अनुवाद क्या है? *वह व्यक्ति जिसकी आखों की ज्योति* जाती रही है और जिसके हृदय की धड़कन बन्द हो गयी है। मगर डाक्टर आता है, सूई लगाता है, खून देता है, हृदय की मासपेशियों की मालिश करता है और मानवीय शरीर मे फिर से जीवन आ जाता है।

शब्दश पवित्र अनुवाद क्या है? एक नाई ने मेरे बाल काटे, दाढ़ी बनाई, बालों को सवारा और यह कहकर विदा किया—

"शब्दश पवित्र अनुवाद के रूप मे मेरे पास आये थे और अनुवाद बनकर जा रहे हो।"

चूंकि नाई का ज़िक्र आ ही गया है, तो लगे हाथो आपको एक घटना भी सुना देता हू।

यह घटना क्यूबा के सातियागो शहर मे घटी। म वहा पहुचा ही था कि मने बाल कटवाने तथा दाढ़ी बनवाने का फसला किया। म नाई के पास गया और सकेतों से उसे अपनी बात समझाई।

क्यूबा मे दाढ़ी बनाते समय आरामकुर्सी मे वसे ही लिटा दिया जाता है जसे कि पलग पर। मुझे भी लिटा दिया गया। साबुन लगाया जाने लगा। जब तक क्यूबाई नाई के उस्तरे ने मेरे गालो को नहीं छुआ, सब कुछ ठीक-ठाक रहा। या तो उस्तरा बिल्कुल कुद था या नाई निकम्मा था, कारण कुछ भी हो, मगर म तो दद के मारे बडी मुश्किल से ही अपनी चीख को रोक पा रहा था। कुछ देर तक तो मने दद बर्दाश्त किया और आखिर यह समझ गया कि पूरी दाढी बनने तक मैं यह सहन नहीं कर सकूगा। रूसी और अवार भाषा बोलते हुए म अपने गालों की ओर सकेत करने लगा। नाई घबरा गया, भागकर बाहर गया और थोडी ही देर बाद सफेद लबादा पहने एक व्यक्ति को साथ लिये हुए लौटा। इस व्यक्ति ने अपना बक्स खोला और दात निकालनेवाले औज़ार निकाल निकालकर बाहर रखने लगा। दाढ़ी बनाने की आरामकुर्सी से म अचानक दातों के डाक्टर की कुर्सी मे बठा नज़र आया। तो यह नतीजा निकला मेरे और नाई के एक-दूसरे को न समझ पाने का। बस, अगर ज़रा-सी देर और हो जाती, तो म अपने अच्छे भले दातो से हाथ धो बठता।

अनुवादक अक्सर कविताओं के सारे दात निकाल डालते ह और उन्हें सिसकारते-फुसकारते हुए पोपले मुह के साथ दुनिया मे घूमने के लिये भेज देते ह।

नोटबुक से। जब हम विदेश जाते ह, तो जातीय कारीगरी की कुछ चीज़ें भी इसलिये अपने साथ ले जाते ह कि आतिथ्य-सत्कार के लिये किसी को उन्ह उपहारस्वरूप दे सकें। चुनाचे जब म जापान गया, तो बालख़ारी के कारीगरों के कलापूण हाथो की बनी हुई कुछ सुराहियां अपने साथ ले

गया। हिरोशिमा मे एक चित्रकार-दम्पति मेरे यहां मेहमान आये। हम बहुत देर तक बातें करते रहे और मानो दोस्त-से बन गये। "अगर चित्रकारों को नहीं, तो और किसे म बालखारी की कलात्मक वस्तुए भेंट करूगा," मने मन ही मन सोचा। बडे उत्साह से मने अपना सूटकेस खोला और तभी मेरा कलेजा धक से रह गया – मेरी सुराहिया के तो बस टुकड़े ही बाकी रह गये थे। ऐसा लगता था मानो उनपर हथौडा चलाया गया हो – ऐसे चकनाचूर हो गयी थीं वे। बहुत मुमकिन है कि मास्को, भारत या टोकियो के हवाई अड्डे पर कुलियों ने मेरे सूटकेस को बहुत लापरवाही से फेंका हो। मुझे यह मालूम नहीं। मगर उस वक्त तो म यह चाहता था कि जमीन फट जाये और म उसमे समा जाऊ। कारण कि म उपहार देने का बात कह चुका था और जापानी चित्रकार-दम्पति मेज के गिद उसका प्रतीक्षा की मुद्रा मे बठे थे। वे भी परेशानी से मेरी ओर देखने लगे, क्योंकि में तो सूटकेस के ऊपर बुत बना खडा रह गया था। न हिला डुला और न मेरे मुह से कोई शब्द ही फूटा।

आखिर मेरे जापानी मेहमान भी समझ गये कि कहीं कुछ गडबड हो गयी है। वे मेरे करीब आये और उन्होंने सुराहियो के टुकड़े देखे। उन्होंने दु खी होकर सिर हिलाये और कधा थपथपाते हुए मुझे तसल्ली देने लगे। किसी दूसरे वक्त ये कभी कधा न थपथपाते, क्योंकि वे बहुत ही सलीकेदार लोग ह और घनिष्ठता जताना पसन्द नहीं करते। इसका मतलब तो यही है कि म बहुत ही दु खी, बहुत ही परेशान हो उठा था।

मने अखबार मे टुकडे समेटे और उन्हें कूडादान मे डाल देना चाहा। मगर चित्रकारो ने मुझे ऐसा नहीं करने दिया। उन्होंने बडी सावधानी से एक-एक टुकडा लपेटा और अपने घर ले गये।

कुछ दिनो बाद इन्हीं चित्रकार दम्पति ने मुझे अपने घर आमन्त्रित किया। अपनी उन सुराहियो को मने जब सही सलामत और ऐसी अच्छी हालत मे पाया मानो वे अभी अभी कुम्हार के चक्के से उतरी हों, तो मेरी हैरानी का कोई ठिकाना न रहा। म अब तक यह नहीं समझ पाता कि ऐसे चूरे को इतनी होशियारी से जोडना कसे सम्भव था।

कहते ह कि तडक जानेवाली सुराही कभी साबूत नहीं हो पाती, हर हालत मे उससे पानी रिसेगा। जापानी चित्रकारो द्वारा जोडी गयी

सुराहियों मे हमने दागिस्तानी श्राडी भी डाली श्रौर जापानी साके भी डाली, मगर एक बूद भी नहीं रिसी।

जापानी चित्रकारों को देखते हुए मुझे श्रपने श्रेष्ठ श्रनुवादकों का ध्यान हो श्राया। मेरी कविताश्रो के शब्दश पवित्र श्रनुवाद टूटी सुराही के टुकडा जसे लगते थे। बाद मे उन्हें जोडा गया श्रौर वे नयी सी हो गयीं श्रौर उनके श्रवार बेल-बूटे भी ज्यो की त्यो उनकी शोभा बढ़ाते रहे।

जाहिर है कि श्रगर सुराही का हत्या नहीं है, तो श्रनुवादक को उसे लगाना नहीं चाहिये या एक की जगह दो तल नहीं बनाने चाहिये।

कुछ ही समय पहले दागिस्तान के प्रकाशनगृह ने 'हाजी मुराद' का श्रवार भाषा मे नया श्रनुवाद प्रकाशित किया। म उसे पढने लगा तो क्या देखा कि 'हाजी-मुराद' के दो परिच्छेद बढ गये ह। मने श्रनुवादक से पूछा –

"ये दो परिच्छेद कहा से श्रा गये?"

"बात यह है कि तोलस्तोय ने तो यह लघु उपन्यास श्रक्तूबर क्रान्ति से पहले लिखा था। इसलिये उसमे कुछ गलत दृष्टिकोण ह। इसके श्रलावा, पाठकों को हाजी-मुराद के सिर श्रौर वशजो के भविष्य के बारे मे बताना भी जरूरी था।"

नोटबुक से। पिता जी की एक कविता का रूसी मे श्रनुवाद किया गया। श्रनुवादक सम्भवत कच्चा था। पिता जी ने रूसी श्रौर श्रवार भाषा जाननेवाले एक श्रादमी से श्रनुवाद का फिर से श्रनुवाद करके उसका सार बताने को कहा। जब ऐसा किया गया, तो पिता जी ने हैरानी से कहा –

"मेरा बेटा लम्बे सफर से लौटा है श्रौर म उसे पहचान नहीं पाया। नहीं, ऐसे कायाकल्प से तो यह कहीं ज्यादा श्रच्छा होगा कि मेरे बच्चे यहीं पहाडों मे बठे रहें।"

हा, कविताश्रो के श्रनुवाद उन बेटों के समान होते ह, जिन्ह मा बाप पढ़ने या काम करने के लिये गाव से भेजते ह। बेशक हर हालत मे ही बेटे उसी रूप मे गाव नहीं लौटते, जिस रूप मे वे घर छोडकर जाते ह।

बेटा कुछ पाकर या गवाकर, डिप्लोमा लेकर या श्रदालत मे पेशी भुगतकर, तगडा या कमजोर श्रौर बीमार होकर, विद्वान या श्रौरतबाज का नाम पदा करके, सभी रिश्तेदारो के लिये कीमती तोहफे लेकर या श्रपने कपडे तक खोकर घर लौट सकता है।

मैं भी अपनी किताब को बड़े शहरों और लोगों में भेज रहा हूं। अजनबी जगहों पर उसका कैसा रंग-ढंग रहेगा? क्या वह अपनी जनता, अपने तौर-तरीक़ों को भूल जायेगी?

मैं यह अच्छी तरह समझता हूं कि पहाड़ पर बैठा बुरा आदमी ("यामान") केवल इसलिये अच्छा ("याक़शी") आदमी नहीं बन जायेगा कि वह घाटी में उतर आया है। इसलिये मैं अपनी पुस्तक के अनुवादक से अनुरोध करता हूं कि अगर वह "यामान" है, तो उसे वैसा ही रहने दीजिये। अगर मैं लंगड़ा और अंधा हूं, तो मेरी बांह पकड़कर मुझे मेरे घर से बाहर नहीं ले जाइये, मुझे अपने चूल्हे के पास, अपनी दहलीज़ पर ही बैठा रहने दीजिये। मेरे तांबे के बर्तनों पर कलई नहीं कीजिये, मेरी चांदी पर सोने का मुलम्मा नहीं चढ़ाइये।

अबूतालिब ने यह बात सुनायी।

"मेरा एक बेटा और एक बेटी है। बेटी बहुत अच्छी है, बड़ी अनुशासित है और दूसरों के लिये मिसाल मानी जाती है। मगर बेटा शरारती और नटखट है। बेटी की रेडियो पर चर्चा होती है, अख़बारों में उसके बारे में बहुत कुछ लिखा जाता है, क्योंकि वह अग्रणी कामगारिन है। बेटे के बारे में कभी स्कूल से तो कभी मिलीशिया के दफ़्तर से शिकायतें आती हैं। बेटी के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि स्कूल, पायनियर संगठन, युवा कम्युनिस्ट संघ और देश ने उसका शिक्षण किया, उसे इतना अच्छा बनाया। मगर बेटे के बारे में यह कहा जाता है कि जन-कवि अबूतालिब ने उसे बड़े बुरे ढंग से पाला पोसा है।"

यह क़िस्सा सुनकर मैंने सोचा कि कविताओं के अनुवाद के सम्बन्ध में भी ऐसी ही बात होती है। अनुवाद अच्छे होने पर मूल रचयिता की प्रशंसा की जाती है और यह भुला दिया जाता है कि अनुवादक कौन है। अगर अनुवाद बुरे होते हैं, तो अनुवादक को कोसा जाता है और मूल रचयिता का नाम बचा जाने की कोशिश की जाती है।

नहीं, मेरे अनुवादक मित्र, भले-बुरे की ज़िम्मेदारी हम दोनों एकसाथ अपने ऊपर लेंगे। हम दोनों का एक ही छकड़ा है। आओ, मिल-जुलकर उसे पहाड़ पर चढ़ायें और अपनी अपनी दिशा में न खींचें। नहीं तो छकड़ा और उसके साथ-साथ हम दोनों भी जहां के तहां ही बने रहेंगे।

हमारे इलाक़े में एक अदभुत घटना घटी। एक बड़ा पहाड़ अचानक

अपनी जगह से हिला और नीचे की तरफ खिसक चला। वह मोचोख गाव से थोडी दूर इधर की पहाडी नदी को रोककर रुक गया। भेडो के रेवड, चरवाहे, चरवाहा के अलाव और उनके झोंपडे किसी भी तरह की हानि के बिना बडे शात ढग से पहाड के साथ-साथ नीचे आ गये। अब यह ज्यों का त्या खडा है, मगर उसके दामन मे झील बन गयी है। और झील मे ट्राउट मछलिया पाली जाती ह। जब तक यह पहाड अपनी पुरानी जगह पर खडा था, कोई उसपर नहीं चढता था। पर अब उसके इद गिद हमेशा यात्रियों, अभियान-दलो, मछुआ और सर सपाटे के लिये आये स्कूली बालकों को देखा जा सकता है।

म चाहता हू कि मेरी किताब भी किसी तरह की हानि के बिना नई भाषा मे पहुच जाये। वह भी बाद मे उसी तरह लोगा को अपनी तरफ खींचे जैसे मोचोख गाव के पासवाला पहाड। मुसलमानो मे यह कहा जाता है कि जन्म के वक्त जसी लकीरें पड जाती हें, वसा ही होकर रहता है। यह सम्भवत इस रूसी कहावत–मेरे मन कुछ और है, साईं के मन कुछ और–के अनुरूप ही है। या और भी अधिक सक्षिप्त रूप मे या कहा जा सकता है–किस्मत का लिखा होकर रहेगा।

आलोचक। उसके बारे मे लिखना सबसे ज्यादा मुश्किल काम है। अगर उसे भला-बुरा कहा जाये, तो यह समझा जायेगा कि हजरत उसकी आलोचनात्मक टिप्पणियों से तिलमिला उठे ह और बदला ले रहे ह। अगर तारीफ करें, तो यह सोचा जायेगा कि भविष्य को ध्यान मे रखते हुए चापलूसी हो रही है।

पिता जी कहा करते थे कि वे और आलोचक दोनो ही कवि ह। म कवितायें लिखता हू और वह मेरी कविताओ के बारे मे लिखता है।

अबूतालिब ने कहा है एक दागिस्तानी आलोचक से–

"म अगूरो की शराब बनाता हू और तुम उसका जायका चखते हो।"

आलोचक के बारे मे अपने विचार प्रकट नहीं करूगा, मगर उसे कुछ सलाहें देना चाहता हू।

१ बुरे को हमेशा बुरा और अच्छे को अच्छा कहो।

२ जिस चीज की तारीफ करते हो, बाद मे उसी को बुरा नहीं कहो। अगर बुरा कहते हो, तो बाद मे तारीफ नहीं करो।

३ राई को पहाड नहीं बनाम्रो ग्रौर पहाड़ को राई बनाने की तो ग्रौर भी कम कोशिश करो।

४ किताब मे जो कुछ है, उसकी चर्चा करो, न कि उसकी, जो नहीं है।

५ अपने विचारो की पुष्टि के लिये बेलीन्स्की से शुरू करके सभी विद्वानो को उद्धत नहीं करो। अगर ये विचार वास्तव मे तुम्हारे ही ह, तो अपनी ही अक्ल से उन्हें पुष्ट करने की कोशिश करो।

६ स्पष्ट विचारो को स्पष्ट ग्रौर समझ मे ग्रानेवाली भाषा मे व्यक्त करो। अस्पष्ट विचारो को व्यक्त ही नहीं करो।

७ हवा के रुख के साथ बदलनेवाले बादनुमा नहीं बनो।

८ जो कुछ अभी खुद नहीं समझते, उसके बारे मे दूसरों को उपदेश देने की कोशिश नहीं करो।

९ अगर तुम्हारी जेब मे सौ रूबल नहीं ह, तो ऐसा ढोग नहीं करो कि मानो वे तुम्हारे पास ह।

१० अगर तुम बहुत अर्से से अपने गाव नहीं गये ग्रौर तुम्हें यह मालूम नहीं कि वहा क्या हाल चाल है, तो यह दावा नहीं करो कि तुम अभी अभी अपने गाव से लौटे हो।

मेरी इन अभिलाषाग्रो मे कुछ नयी बात नहीं है। वे गुना की तालिका की पहली पक्ति के समान ह। फिर भी अगर हमारा हर ग्रालोचक इनपर ईमानदारी से अमल करे, तो हमारी ग्रालोचना कहीं अधिक अच्छी हो सकती है।

पाठक। मैने सम्पादक, प्रकाशक, अनुवादक ग्रौर ग्रालोचक से तो बातचीत कर ली। अब सबसे महत्त्वपूर्ण व्यक्ति, जिसके लिये सभी किताबें लिखी जाती ह, उस पाठक से कुछ शब्द कहना चाहता हू।

पाठक, मेरे मित्र! निश्चय ही तुम्हारी अपनी मनपसन्द किताबें ह। हम लेखको की भी ऐसी किताबें ह। कहा जाता है कि लेखक की प्रमुखतम पुस्तक वह है, जो वह अभी लिख नहीं पाया, मगर लिखेगा जरूर। मालूम नहीं कि बाकी लेखकों के बारे मे यह कहा तक ठीक है, मगर मेरे सम्बन्ध मे तो सोलह ग्राने सही है।

हा म एक जमाने से अपनी मातभूमि के बारे मे एक किताब लिखने का सपना देख रहा हू। बहुत अर्से से यह विचार मेरे दिमाग म घूम रहा

है, मगर उसे किसी तरह भी ग्रमली शक्ल नहीं दे पाया। सम्भव है कि प्रतिभा की कमी है, मुमकिन है कि हर दिन की दौड धूप इसमे रुकावट डालती है, या सब्र की कमी है या फिर हिम्मत साथ नहीं देती।

जसे-जसे वक्त गुजरता है, वसे-वसे खुद ग्रपने ग्रौर पाठक के सामने जिम्मेदारी का एहसास बढ़ता जाता है। हर विचार को लिख डालने के लिये हाथ लेखनी की तरफ़ बेधडक नहीं बढ पाता। मातृभूमि के बारे मे किताब, सभी किताबो से ज्यादा जिम्मेदारी का काम है।

यह किताब मने ग्रभी तक लिखी तो नहीं, मगर मैंने उसके बारे मे सोचा बहुत है ग्रौर ग्रब म ग्रच्छी तरह से जानता हू कि यह कसी होनी चाहिये। इस किताब – ग्रपने जीवन की सबसे महत्त्वपूण किताब – क बारे में ग्रपने विचारो को ही लिख डालने का ग्राखिर मने निणय किया।

यह कोट नहीं, कोट का कपडा है। यह कालीन नहीं, कालीन के लिये धागे ही ह। यह गीत नहीं, केवल हृदय की धडकन है, जिससे गीत का जन्म होगा।

कहते हैं कि ग्रगर तुमने प्राथना नहीं की, पर इतना सोच ही लिया कि प्राथना करना बुरा नहीं, तो इसी की बदौलत नरक मे जाने से बच जाग्रोगे।

कहते हैं कि दोस्त के पास जो कुछ है, दोस्त को उसी से खुशी होती है। ग्रगर दोस्त के घर मे सिफ बूजा ही है, तो क्या मेहमान दोस्त इसलिये नाराज हो जायेगा कि विदेशी शराबो से, जो न तो घर में ग्रौर न ग्रासपास ही कहीं पर ह, उसकी खातिरदारी नहीं की गयी?

कहते हैं कि ग्रगर तुमने कोई नेकी नहीं की, तो इसके लिये भी शक्रिया कि ऐसा करने का इरादा रखते थे।

पाठक, मेरे मित्र, हर पुस्तक तुम्हारे लिये ही लिखी जाती है। मै प्रकाशक को ग्रपनी बात का यक़ीन दिला सकता हू, सम्पादको ग्रौर ग्रालोचकों से बहस कर सकता हू। मगर तुम्हारा फसला ही ग्रसली ग्रौर ग्राखिरी होना है। जजो की भाषा मे, उसके खिलाफ ग्रपील नहीं हो सकती।

लेखक तो तुमसे भेंट करने के लिये ही जीता है। मेरे समूचे जीवन मं तीन तरह की परेशानियां लगातार बनी रही ह। तुमसे भेंट होने के पहले म प्रतीक्षा में ग्रौर यह ग्रनुमान लगाते हुए परेशान होता रहता हू कि

हमारी यह भेंट कैसी रहेगी। फिर भेंट के समय मुझे परेशानी होती रहती है, जो कि स्वाभाविक है और समझ में आ सकती है। अंत मे मैं भेंट की हर तफ़सील को याद करते और यह अन्दाज लगाते हुए परेशान होता रहता हूं कि मैंने कैसा प्रभाव छोड़ा।

अपने पाठकों के तरह-तरह के चेहरे मुझे दिखाई देते हैं। कुछ के माथे पर बल पड़ गये हैं। भला मैं ऐसे शब्द कहां से लाऊं कि उनके ये बल दूर हो जायें? दूसरों ने ऐसा मुंह बना लिया है मानो कोई बदज़ायका और अटपटी चीज़ उसके मुंह मे चली गयी हो। तीसरों के चेहरे पर ऊब का भाव है, जो सबसे अधिक भयानक और निराशाजनक चीज़ है।

पहाड़ी लोगों से पूछा गया—किसलिये आप इतनी दूर और दुर्गम पहाड़ों मे अपने गांव बसाते हैं? आप तक पहुंचना लगभग असम्भव और साथ ही खतरनाक भी है—पगडंडियां खड्डों के सिरों पर हैं, ऊपर से पत्थर और चट्टानें टूटकर गिर सकती हैं। पहाड़ी लोगों ने जवाब दिया—"अच्छे दोस्त तो सभी तरह के खतरों का सामना करते हुए मुश्किल रास्तों से भी हमतक पहुंच जायेंगे और बुरे दोस्तों की हमें जरूरत नहीं।"

पाठक, मेरे मित्र, मेरी उम्र चवालीस साल है। इस उम्र मे आदमी को हर तरह की जिम्मेदारी के काम सौंपे जा सकते हैं। इस उम्र मे लेखक को अपने हर शब्द के लिये जवाबदेह होना चाहिये।

अगर मेरी किताब मे तुम्हें कोई ऐसा विचार मिले, जो किसी दूसरी किताब मे रैन-बसेरा कर चुका है, तो उसे अपने दिमाग़ से ऐसे ही निकाल फेंकना, जैसे कभी पहाड़ों मे सुहाग रात के बाद उस दुलहन को निकाल दिया जाता था, जिसने उस रात तक अपनी इज्जत को बचाकर नहीं रखा होता था।

अगर मेरी पुस्तक मे तुम्हें कोई सही विचार मिले, तो उसके नीचे रेखा खींच देना। अगर कोई ग़लत विचार मिले, तो दो रेखायें खींच देना।

अगर तुम्हें इसमे रत्ती भर भी झूठ मिले, तो किताब को ही फ़ौरन दूर फेंक देना—यह कौड़ी काम की नहीं।

विदा लेने से पहले एक क़िस्सा और सुनाये देता हूं।

अमीर खान, उसके बेटे और भेड की मोटी दुम के लहसुन-वाले खीनकालों का क़िस्सा। कहते हैं कि अवारिस्तान मे कभी एक बहुत ही अमीर रहता था। बेटे की तमन्ना मे उसने तीन बार शादी की, मगर एक

भी बीवी ने न सिर्फ वारिस ही पैदा किया, बल्कि खान को बेटी तक का मुह देखना न नसीब हुआ। चुनाचे उसे चौथी बार शादी करनी पड़ी।

आखिर खान के यहा बेटा हुआ। उसकी खुशी का कोई ठिकाना न रहा। ढोल-नगाड़े और तुरहियां-नफीरियां बजायी गयीं, खूब नाच गाना हुआ। तीन दिन और तीन रातों तक दावतें उड़ती रहीं।

मगर खान के आलीशान महल मे बहुत अर्से तक यह खुशी न बनी रह सकी। बेटा बीमार हो गया और उसकी बीमारी किसी की भी समझ मे न आई। कैसी भी लोरियां क्यो न गाई जातीं, मगर उसकी आख न लगती। कितनी भी बढ़िया खुराक उसे क्यो न दी जाती, वह कुछ भी न खाता-पीता। सब समझने लगे कि अब यह कुछ ही दिनो का मेहमान है। न तो विदेशो से बुलाये गये हकीम-वैद्य, न हिंदुस्तानी गडे-तावीज और न तिब्बती जड़ी-बूटियां ही खान के इकलौते बेटे को तंदुरुस्त कर सकीं। बेटे की मौत शायद खान की मौत भी होती।

पड़ोस के गाव से एक मामूली गरीब आदमी खान के पास आया। उसे तो कोई आदमी भी मानने को तैयार न था। उसने कहा कि वह वारिस को बचा सकता है। खान के अमीर उमरा ने उसे भगा देना चाहा, मगर खान ने उन्हें ऐसा करने से रोका। "बेटा तो यो भी मर ही जायेगा," उसने मन मे सोचा, "इसका इलाज भी आजमाकर देख लेने मे क्या हर्ज है?"

"मेरे बेटे की जान बचाने के लिये तुम्हे किस चीज की जरूरत है?"

"मुझे तुम्हारी बीवी से एकात मे कुछ बात करनी होगी।"

"क्या कहा? मेरी बीवी के साथ एकात मे?! तुम्हारा दिमाग चल निकला है! दफा हो जाओ मेरी आखो के सामने से!"

गरीब आदमी मुड़ा और चल दिया। खान ने सोचा – "बेटा तो यों भी मर ही जायेगा। अगर वह मेरी बीवी से एकात मे बात कर लेगा, तो मेरा इससे क्या बिगड़ जायेगा?"

"ए गरीब आदमी, लौट आओ, हमने अपना ख्याल बदल लिया है। हम तुम्हें अपनी बीवी से बात करने की इजाजत देते है।"

गरीब आदमी और खान की बीवी जब अकेले रह गये, तो गरीब आदमी ने पूछा –

"तुम यह चाहती हो कि तुम्हारा बेटा जिंदा और तंदुरुस्त रहे?"

खान की बीबी ने कोई जवाब देने के बजाय उसके सामने घुटने टेक दिये और मिन्नत-समाजत लगी।

"तो मुझे यह बता दो कि इसका असली बाप कौन है?"

खान की बीबी ने घबराकर इधर-उधर नजर दौडायी।

"डरो नहीं। हमारी बातचीत हमारे साथ ही कब्र में जायेगी। नहीं तो तुम्हारा बेटा जिन्दा नहीं रहेगा।"

"खान को बेटे की बडी चाह थी। म जानती थी कि अगर बेटा पदा नहीं करुगी, तो मुझे भी उसकी पहली बीवियो की तरह निकाल दिया जायेगा। इसलिये म पहाड पर गयी और वहा एक मामूली नौजवान चरवाहे के साथ मने रात बितायी। उसके बाद ही खान के वारिस का जन्म हुआ

"ओ ऊचे नामवाले खान," इस बातचीत के बाद तथाकथित हकीम ने कहा, "म जानता हू कि तुम्हारा बेटा कसे बच सकता है। इसी घडी से उसका पालना एसे अलाव के पास रखवा देना चाहिये जसे कि चरवाहे पहाडो मे जलाते ह। उसके पालने मे भड की खाल बिछायी जाये और उसे ऐसी खुराक दी जाये जसी कि तुम्हारे चरवाहे खाते ह।"

"मगर मगर वे तो भेड की मोटी दुम के लहसुनवाले खीनकाल खाते ह। मेरा यह नन्हा-सा वारिस भला उन्हे कसे खायेगा "

गरीब आदमी मुडा और चल दिया। "बेटा तो यो भी मर जायेगा," खान ने सोचा और तश्तरी मे खीनकाल लाने का हुक्म दिया।

खान की बीबी अपने हाथो से उन्हे तयार करने लगी। उसने उसी तरह खीनकाल तयार किये जसे पहाडों मे बितायी गयी रात के पहले, जो उसके जीवन की सबसे प्यारी रात थी, नौजवान चरवाहे के लिये तयार किये थे। उसने बेटे के सामने वसे ही लकडी की तश्तरी रखी जसे तब नौजवान चरवाहे के सामने रखी थी।

खीनकाल बडे-बडे पत्थरो जसे बडे और गोल-गोल थे। भेडों की उबली हुई मोटी दुमों से चर्बी चू रही थी। नजदीक ही गागर मे पहाडी चश्मे का पानी रख दिया गया।

जसे ही लहसुन और उबली चर्बी की गन्ध वारिस की नाक मे पहुची, उसने आखें खोल दीं, उठकर बठ गया और अचानक दोनों हाथो से सबसे बडा खीनकाल उठा लिया। इसी क्षण से पिता की ताकत बेटे की रगों में दौडने लगी। वह भूखे बबर की तरह खीनकालो को हडपने लगा। वह

दिनो के बजाय घण्टों मे बढ़ने लगा और जल्द ही गठा हुआ ख़ूबसूरत जवान बन गया। उसकी बीमारी का तो नाम निशान ही बाक़ी न रहा।

शायद ऐसी घटना कभी न घटी हो, मगर म एक बात जानता हू कि साहित्य जब अपने बाप-दादो की ख़ुराक छोडकर पराये, बढ़िया विदेशी भोजनो के फेर मे पड जाता है, जब वह अपनी जनता की परम्पराओं और रीति रिवाजो, भाषा और मिजाज से नाता तोड लेता है, उसके साथ विश्वासघात करता है, तो यह बीमार हो जाता है, उसका दम निकलने लगता है और कोई भी दवाई उसे बचा नहीं पाती।

मेरे ख्याल मे बस, इन शब्दों के साथ ही म अपनी इस किताब को खत्म करूगा। गर्मी के एक गम दिन मने इसे शुरू किया था और अब ठिठुरी हुई पतझर है। इसे शुरू किया था एक पहाडी गांव मे और खत्म कर रहा हू एक बडे, भीड भडक्केवाले नगर मे। पहली पक्ति तडके ही लिखी थी, मगर अब आधी रात होनेवाली है और शहर मे भी सब बत्तिया बुझती जा रही ह।

म लम्बे सफर से लौटा हू। गाव के छोर पर म घोड़े से नीचे उतर गया हू। उसकी लगाम थामकर म उसे लम्बी और टेढ़ी मेढ़ी गली मे से ले गया हू। अब तो यही ठीक होगा कि घोडे का जीन उतारा जाये, उसकी गदन थपथपायी जाये और उसे चरने के लिये खुले मदान मे छोड दिया जाये।

मेरे ख्याल मे म ख़ुद तो आग के पास बठकर सिगरेट जलाऊगा और उसके कश लगाऊगा। कहते ह कि ख़ुद अल्लाह भी अपनी कोई नसीहत भरी कहानी सुनाने के बाद तम्बाकूनोशी करता है। वह सिगरेट जलाता है, कश खींचता है और सोच मे डूब जाता है।

आइये हम भी सोचे। हर मंजिल ख़ुशी बनकर नहीं आती। हर किताब कामयाब नहीं रहती। नयी सुबह होने पर नयी किताब शुरू करूगा, नये सफर पर निकलूगा।

फिलहाल तो म सफर करता-करता थक गया हू। अपना बडा, नमदे का लबादा ओढ़कर म सोने जा रहा हू। शुभरात्रि, भले लोगो! सलाम दुआ से ही मने इसे शुरू किया था और सलाम-दुआ के साथ ही खत्म करता हू। वासलाम, वाक्लाम, अमीन!

पाठकों से

रादुगा प्रकाशन इस पुस्तक की विषय-वस्तु, अनुवाद और डिजाइन के बारे म आपके विचार जानकर आपका अनुगृहीत होगा। आपके अन्य सुझाव प्राप्त करके भी हमें बडी प्रसन्नता होगी। कृपया हमे इस पते पर लिखिये

रादुगा प्रकाशन,
१७ जूबाव्स्की बुलवार
मास्को, सोवियत सघ।